आग़ा 'हश्र'

व्यक्ति और कृति

डॉ. अज्ञात

आग़ा 'हश्र' : व्यक्ति और कृति

(रंग-नाटककार 'हश्र' के जीवन और कृतित्व पर प्रामाणिक बहुकोणीय अध्ययन)

सम्पादक

डॉ० अज्ञात
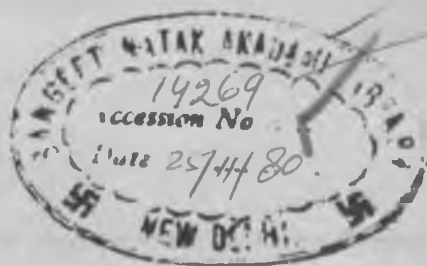
समीर प्रकाशन
छायालोक
१११-ए/१८३, अशोकनगर,
कानपुर-२०८०१२

हिन्दी रंगमंच के स्वर्ण युग के
विधाताओं में अग्रणी
पारसी-हिन्दी रंगमंच के कालिदास
स्वर्गीय आग़ा मुहम्मद शाह 'हश्र' काश्मीरी
को
उनकी जन्म-शताब्दी पर
उनको पुण्य स्मृति में अर्पित

—डॉ० अज्ञात

आग़ा 'हश्र' : व्यक्ति और कृति

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन १ से १९

१ – व्यक्ति

१ . आग़ा 'हश्र' : जीवनी और व्यक्ति –परिपूर्णानन्द वर्मा १

२ . आग़ा 'हश्र' काश्मीरी : संक्षिप्त जीवन-परिचय–सिकन्दर रज़ा ६

३ . बाबा आग़ा 'हश्र' : बहुमुखी व्यक्तित्व–फ़िदा हुसैन 'नरसी' १५

४ . 'हश्र' स्मृतियों के झरोखे से–भागमे १९

५ . भारतीय शेक्सपियर : कुछ संस्मरण–डॉ० विद्यावती ल० नम्र २६

६ . आग़ा 'हश्र' : भ्रांतिया ही भ्रांतियाँ –रामचन्द्र श्रीवास्तव ३१

७ . कुछ वैयक्तिक भ्रांतियों का निराकरण–'नैरंग' ३८

८ . कलकत्ते से चरखारी तक–गनपतलाल डाँगी ४१

९ . चरखारी में आग़ा 'हश्र' : व्यक्तित्व एवं रचना-प्रक्रिया-राजेन्द्र कुमार दवे ४६

२ – कृति

१ . आग़ा 'हश्र' : एक नाट्य-यात्रा–डॉ० पवन कुमार मिश्र ४९

२ . भूले-बिसरे दस्तावेज : पारसी रंगमंच और हिन्दी नाटक–जनार्दन भट्ट ५४

३ . 'हश्र'-युगीन नाटकों की मंचन-प्रक्रिया–डॉ० चन्दूलाल दुबे ६६

४ . 'हश्र' के प्रथम नाटक 'आफ़ताबे मोहब्बत' पर एक नज़र–अ०कु० 'नैरंग' ७०

५ . 'हश्र' के कुछ लोकप्रिय हिन्दी-उर्दू नाटक-डॉ० विद्यावती ल० नम्र ७७

६ . आग़ा 'हश्र' की नाट्य-भाषा और संवाद-योजना–डॉ० कृष्णमोहन सक्सेना ८८

७ . आग़ा 'हश्र' और भारतीय नारी–डॉ० भानुशंकर मेहता ९९

८ . समाज-सुधारक के रूप में आग़ा 'हश्र' १०६

* अछूतोद्धार के पुरस्कर्ता–वत्सराज १०६

* दहेज-प्रथा का घोर विरोध–आग़ा जमील ११०

* जन-कल्याण के पक्षधर–रा० कु० दवे ११५

पृष्ठ संख्या

३. साहित्य-सन्दर्भ
  १. 'हश्र'-समालोचन युगे-युगे ११९
    * हिन्दी - उर्दू ग्रंथ ११९
    * लेख पत्र-पत्रिकाओं में १२०
  २. आग़ा 'हश्र' के नाटक तथा उनका मंचन १२१

४. परिशिष्ट
  १. 'सीता वनवास' १२३
  २. आग़ा 'हश्र' के नाम 'नैरंगे खयाल' के सम्पादक का पत्र १२९
  ३. 'इश्क व फर्ज़' १३०

५. शुद्धि-पत्र १४०

प्राक्कथन

किसी भी लेखक का मूल्यांकन उसके जीवन-काल में पूरी तरह से नहीं हो पाता, जिसके दो कारण हैं : कतिपय विश्वविद्यालयों द्वारा जीवित लेखकों के व्यक्तित्व पर शोध-कार्य करने पर प्रतिबन्ध तथा युगीन एवं प्रतिस्पर्धी लेखकों-समीक्षकों द्वारा खंडन-मंडन की प्रक्रिया अपनाये जाने के कारण अतिवादी समीक्षा का बाहुल्य । लेखक द्वारा अपने मंतव्य के स्पष्टीकरण तथा आत्म-प्रतिष्ठा की रक्षा अथवा आत्म-स्थापना के लिए किये गये प्रयासों में उसकी प्रतिभा उलझ कर रह जाती है और कभी-कभी बड़ी मायूसी उसके हाथ लगती है । किन्तु दूसरे प्रकार के वे लेखक भी होते हैं, जो कटिबद्ध होकर अपने ऊपर किये गये प्रहारों को आड़ हाथों लेते हैं और विजय-गर्व का अनुभव करते हैं, जिससे उनका अन्तस् एवं अहम् तुष्ट हो जाता है । प्रथम कोटि के लेखकों में नाटककार भवभूति सर्वोपरि हैं, जिन्हें अपने नाटक **उत्तर रामचरित्** में यह कह कर सन्तोष करना पड़ा कि पृथ्वी और काल विपुल है और एक दिन उनको सही ढंग से समझा या मूल्यांकित किया जा सकेगा । द्वितीय प्रकार के नाटककारों में आग़ा 'हश्र' प्रमुख हैं, जिन्होंने अपने तथाकथित समीक्षक को उत्तर देते हुए प्रो० अब्दुल लतीफ़ 'तपिश' के माध्यम से यह गर्वोक्ति कही थी :

"शेक्सपियर मौऊद (अर्थात् अवतारी शेक्सपियर यानी समालोचक) गुल-फ़िशानी फरमाते हैं कि 'हश्र' ड्रामा लिखना नहीं जानता । आमन्ना व सद्दकना, लेकिन यह भी इर्शाद हो कि फिर कौन जानता है, किसके क़लम ने मालिकाने कम्पनी की अलमारियाँ रुपयों से भर दीं ? किसके ड्रामों पर आम और खास की तालियों से स्टेज-हाल गूँज उठता है ? किसकी नज्म और नस्र नाज़िरीन (श्रोता) के होठों से वाह, दिलों से आह और आँखों से आँसू जारी कर देती है ? किसके जोहे-तखइयुल (कल्पना-शक्ति) के सामने मौजूदा ड्रामानवीसों की कलमी जिद-ओ-जहद (लिखने का प्रयास) करते हुए इन्सान की उखड़ी साँस मालूम होती है.........."

लेखक के इस प्रकार के उद्गारों से उसके हृदय-मन्थन और मानसिक आलोडन को कुछ हद तक समझा जा सकता है, किन्तु तटस्थ मूल्यांकन के लिए यह आवश्यक है कि उसकी कृतियों का निस्पृह भाव से अध्ययन-मनन किया जाय

और कृति के मानदण्डों को आधार बना कर उसके विश्लेषण, वर्गीकरण तथा मूल्य-निर्धारण द्वारा उसके प्रदेय को आंकने की चेष्टा की जाय। निश्चय ही, यह अंकन सदैव नये चश्मे द्वारा या समीक्षक की अपनी निजी अलोचशील कसौटी द्वारा सम्भव नहीं है। पारसी-हिन्दी रङ्गमञ्च और उसके कीर्तिध्वज नाटककारों के कृतित्व के मूल्यांकन के लिए हिन्दी में अभी तक उस कसौटी का विकास नहीं हुआ है, जिसके अन्तर्गत युग-सापेक्ष्य रचनाओं के तत्कालीन प्रतिमानों को आधार बनाया गया हो। पूर्वाग्रह और बेताब युग की कृतियों के लिए आधुनिकतम प्रतिमानों के उपयोग द्वारा हमने अपने साहित्य के एक विशाल अङ्ग को नकार कर कृती रङ्ग-नाटककारों के प्रति बहुत बड़ा अन्याय किया है। अत: इस ग्रंथ के माध्यम से हम इस अन्याय का प्रतिकार कर इन कृतिकारों को हिन्दी-साहित्यकारों की बिरादरी में शामिल करके गौरव का अनुभव कर रहे हैं।

कभी-कभी किसी कृतिकार के उर्दू या अन्य किसी भाषा में नाटक लिखने के कारण भी उसे हम जाति-बाह्य समझने लगते हैं। अनेक विद्वान आज भी इस भ्रम में हैं कि आग़ा 'हश्र' उर्दू के नाटककार थे और यही कारण है कि हिन्दी में आज तक 'हश्र' पर कोई शोध-कार्य नहीं हुआ, जबकि उर्दू में इस प्रकार के कई शोध-कार्य हो चुके हैं या हो रहे हैं। 'हश्र' जितने उर्दू के, उतने ही हिन्दी के नाटककार भी हैं। यह सत्य इस बात से उद्भासित हो जायगा कि उन्होने जितने उर्दू के नाटकों (१४) की रचना की, उतने ही हिन्दी नाटकों (१४) का सृजन/पुनर्लेखन भी किया। 'हश्र' की नाट्य-भाषा एक ओर अरबी-फारसी शब्दों से संपृक्त, पात्रानुसार तथा इस्लामी-यहूदी संस्कृति के अनुरूप है, तो दूसरी ओर संस्कृत शब्दों से गुम्फित, पात्र की मर्यादा की अनुगामिनी तथा भारतीय, विशेषकर हिन्दू संस्कृति की पूर्ण व्यञ्जक है। भाषा पर ऐसा आधिपत्य कोई समर्थ नाटककार ही प्राप्त कर सकता है।

साहित्य में जिन कृतिकारों का व्यक्तित्व सर्वाधिक विवादास्पद रहा है, आग़ा 'हश्र' उनमें शिरमौर हैं। यह विवाद उनके जन्म, विवाह तथा मृत्यु से लेकर उनके कृतित्व तक फैला हुआ है। इसके एकाधिक कारण हो सकते हैं। 'हश्र' पारसी-हिन्दी रङ्गमञ्च के पुराण-पुरुष थे, और उन्होंने अपने कृतित्व से अप्रतिम ख्याति और लोकप्रियता अर्जित की थी, अत: एक ओर उनके प्रशंसकों ने चारों ओर उनके प्रताप—'ग्लोरी'—का आभामण्डल खड़ा कर दिया, तो दूसरी ओर उनके प्रति-द्वन्द्वियों विरोधियों ने उनके विरुद्ध अनेक सही-ग़लत बातों को गढ़ कर या अनजाने में प्रचारित कर दिया।

'हश्र' के जन्म के सम्बन्ध में दो मत हैं: श्रीराम देहलवी, रामबाबू सक्सेना, सिकन्दर रज़ा प्रभृति विद्वानों का कहना है कि उनका जन्म अमृतसर में हुआ,

जबकि उनके भाञ्जे अब्दुल कुद्दूस 'नैरंग' ज़ोरदारी के साथ यह दावा करते हैं कि 'हश्र' बनारस में जन्मे। उनके पास 'हश्र' का जन्म-पत्र मौजूद है। अतः यही मानना अधिक प्रामाणिक है कि उनका जन्म-स्थान अमृतसर नहीं, बनारस है। जन्म-तिथि के सम्बन्ध में भी विवाद है। डॉ० विद्यावती नम्र के अनुसार यह तिथि १ अप्रैल, १८७९ तथा रामचन्द्र श्रीवास्तव के अनुसार यह ३ अप्रैल, १८७९ है, जबकि 'नैरंग', सिकन्दर रजा आदि ४ अप्रैल, १८७९ को उनका जन्म मानते हैं, जो अधिक विश्वसनीय है।

विवाह के सम्बन्ध में भी उनके समकालीनों, सम्बन्धियों तथा विद्वानों की अलग-अलग रायें हैं। उनके समकालीन नाटककार पं० राधेश्याम कथावाचक का कहना है कि 'हश्र' बड़े मनमौजी और खर्चीले थे, अतः उन्होंने आजीवन विवाह नहीं किया। 'नैरंग' साहब ने आग़ा 'हश्र' और नाटक में लिखा है कि उन्होंने सन् १९१३ में लाहौर में विवाह किया और उनसे उनके वाराणसी में एकमात्र पुत्र नादिरशाह का जन्म २ सितम्बर, १९१४ को हुआ, जिसका तीन मास बाद लखनऊ में देहान्त हो गया। सन् १९१८ में उनकी पत्नी का भी निधन हो गया और दूसरा विवाह नहीं किया। सिकन्दर रजा ने कुछ उर्दू विद्वानों के हवाले से यह बताया है कि अमृतसर की प्रसिद्ध गायिका मुख़्तार बेगम ने 'हश्र' के नाट्यगीतों, व्यक्तित्व और नवाबी शान से प्रभावित होकर उनसे शादी कर ली और 'हश्र' की मृत्यु तक उनके प्रति वफ़ादार बनी रहीं। 'हश्र' के धर्म-भाञ्जे नाटककार परिपूर्णानन्द वर्मा का कथन है कि बम्बई की यूरेशियन महिला 'हश्र' की "पहली स्त्री" थी, जिससे उन्होंने अँग्रेजी सीखी थी ; डॉ० विद्यावती नम्र के अनुसार उसने 'हश्र' को नाटकों के लिए कई कथानक भी दिये। वर्मा जी ने नादिरशाह की माँ से भी शादी करने की पुष्टि की है। 'हश्र' की कथित पत्नियों के अतिरिक्त कुछ उपपत्नियाँ (या प्रेमिकाएँ ?) भी रही हैं, जिनमें गुलनार का नाम प्रमुख है। ये सारी बातें परस्पर-विरोधी हैं। यह ठीक है कि 'हश्र' की विवाहिता पत्नी/पत्नियाँ भी थीं और कई अन्य स्त्रियों से भी उनका सम्बन्ध रहा है। इस्लाम में एक पुरुष द्वारा बहुपत्नीत्व अनुमन्य है। पुनश्च, 'हश्र' जैसे रसिक, सहृदय, उदार और लोकप्रिय नाटककार-गीतकार के चारों ओर अनेक महिलाओं का मँडराना / सम्बद्ध होना कोई अविश्वसनीय बात प्रतीत नहीं होती।

मृत्यु के प्रश्न पर भी विद्वान एकमत नहीं हैं। सिकन्दर रजा का कथन है कि 'हश्र' का, दीर्घ बीमारी के बाद, २८ अप्रैल, १९३४ को निधन हो गया, किन्तु अधिकाश विद्वानों ने सन् १९३५ में इसी तिथि को उनकी मृत्यु होने की बात की पुष्टि की है। इन विद्वानों में परिपूर्णानन्द वर्मा, डॉ० विद्यावती नम्र, अब्दुल कुद्दूस

'नैरंग' प्रभृति प्रमुख हैं। अतः मृत्यु की तिथि के सम्बन्ध में भी एक ही विकल्प है और वह है–२८ अप्रैल, १९३५, जो प्रामाणिक है।

'हश्र' के व्यक्तित्व के तीन ऐसे पहलू हैं, जिन पर सभी विद्वान एकमत नहीं हैं और ये हैं : भाषा-ज्ञान, मद्य-पान और नारी।

यह बात सही है कि 'हश्र' ने अरबी, फारसी तथा अँग्रेजी की साधारण शिक्षा प्राप्त की, किन्तु उन्होंने इन भाषाओं के अतिरिक्त हिन्दी, बँगला, मराठी तथा गुजराती भाषाएँ भी सत्संग, व्यवहार तथा अध्यवसाय से सीख लीं। एक मुहावरे में यह कहा जा सकता है कि वे पढ़े नहीं, कढ़े अधिक थे।

'आजकल', दिल्ली में प्रकाशित 'हश्र'-सम्बन्धी अपने लेख में जागेश्वरनाथ 'बेताब' बरेलवी ने 'हश्र' के भाषा-ज्ञान का उपहास करते हुए कहा हैं : (१) वे अँग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ थे तथा किसी से शेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद करा कर अपने नाम के साथ जोड़ लेते थे, तथा (२) वे हिन्दी बिल्कुल नहीं जानते थे और कोई हिन्दू मुन्शी उनके ड्रामे लिखा करता था।

परिपूर्णानन्द वर्मा कहते हैं : 'हश्र' ने अपनी प्रथम यूरेशियन पत्नी से अँग्रेजी और अपने मामा अम्बिकाप्रसाद 'वासिल' से हिन्दी सीखी। डॉ॰ विद्यावती नम्र के मतानुसार 'हश्र' को "हिन्दी की ओर मोड़ने का श्रेय 'बेताब' जी को है।" 'हश्र' ने मुं॰ मेंहदीहसन 'अहसन' की चुनौती स्वीकार कर शाइस्त उर्दू में तथा पं॰ नारायण-प्रसाद 'बेताब' की चुनौती स्वीकार कर शुद्ध एवं प्रांजल हिन्दी में नाटक लिखे।

बकील राधेश्याम कथावाचक 'हश्र' ने पूरा नाटक कभी नहीं लिखा। कुछ खास सीन खुद लिखते थे और बाकी का उनके शिष्य। उनके वे मास्टरपीस सीन रंगमंच और लेखनी, दोनों दृष्टियों से लाजवाब होते थे। यादगारे 'हश्र' में जमील अहमद ने लिखा है कि 'हश्र' एक नक़्क़ाल थे, यद्यपि आगे चल कर स्वयं उन्हीं के इस वक्तव्य से इस मत का खण्डन हो जाता हैं कि उनके 'आलोचक यह ('हश्र' नक़्क़ाल हैं) कह कर उनके नाटकों के मूल्य पर पानी फेरना चाहते हैं कि आगा में उद्भावना ही नहीं और उनके नाटक किसी पश्चिमी नाटक से लिये गये हैं।' 'नैरंग' ने इस मत का खण्डन किया है कि 'हश्र' शेक्सपियर के नाटकों का तर्जुमा किया करते थे और नाम बदल कर खेलने को दे देते थे। इस बात को स्वीकार करते हुए कि पिज़ारो (असीरे हिर्स) तथा किंगलियर (सफ़ेद ख़ून) के प्लाटों को 'काफी अपना' कर 'उनके कुछ संवाद भी लिये', यह स्थापना की है कि वे अंग्रेजी ड्रामों के कुछ सीन लेकर उन पर अपने 'प्लाट' बनाते और 'अपने संवाद' लिखते थे।

कथावाचक जी के कथन में एक कमी यह है कि नाटक के बाकी सीन लिखने वाले शिष्यों के नाम नहीं लिखे। वस्तुतः 'हश्र' कभी स्वयं और कभी

बोल कर लिखाते थे, जिसके लिए उनके पास हिन्दू मुंशी रहते थे। अतः कथित शिष्यों द्वारा लिखे जाने की बात प्रमाणित नहीं होती। 'हश्र' के पास सम्भवतः ऐसा कोई प्रतिभाशाली शागिर्द नहीं था, जो उनकी प्रतिभा और लेखनी की टक्कर ले पाता। एक ही नाटककार के सभी सीन एक-से ही 'लाजवाब' नहीं हो सकते, वैसे ही जैसे एक हाथ की सभी उंगलियाँ बराबर नहीं होती।

'हश्र' के प्रारम्भिक नाटकों में से ही कुछ नाटक शेरिडन, शेक्सपियर या अन्य नाटककारों के नाटकों के प्लाट लेकर लिखे गए, किन्तु 'हश्र' ने अपने कथानकों को जो मोड़ दिया और संवादों को 'शान' पर रख कर पैना और चोटीला बनाया, वह उनकी उद्भावना-शक्ति और सर्जनात्मक क्षमता का द्योतक है। किसी के प्लाट को लेकर या उसमें नये प्रसंग जोड़ या उसमें नये मोड़ देकर नाटक या साहित्य की अन्य विधाओं में भी सृजन की प्रक्रिया सदैव से अपनाई जाती रही है और उसे उस समय नक़ल नहीं कहा जायगा, यदि कथा-विन्यास, संवाद-योजना, चरित्र-विकास, शब्द-योजना आदि में नवीनता एवं मौलिकता के दर्शन हों। 'हश्र' के प्रारम्भिक नाटक इस तथ्य के स्वयं दृष्टान्त हैं।

'हश्र' विरोधाभासों के मरकज (केन्द्रबिन्दु) थे। वे जबर्दस्त पियक्कड़ थे, किन्तु शराब के विरुद्ध उतनी ही जबर्दस्त नसीहतें भी उन्होंने अपने नाटकों में दी हैं।

बकौल पं० नारायण प्रसाद 'बेताब', जैसाकि उनकी बेटी डॉ० विद्यावती नम्र लिखती हैं, 'हश्र' जब लिखते थे, तो कमरे में लाल पानी यानी अंगूर की बेटी हमेशा मौजूद रहती थी, जिसके अभाव में वे न अपना 'मूड' बना पाते थे और न उनकी लेखनी ही जोरदारी से चल पाती थी। उर्दू में आगा 'हश्र' पर शोधकर्ता शफ़ी महोबवी का कथन है कि चरखारी की लेक व्यू कोठी में **सीता बनवास** लिखाते समय कोठी के बरामदे के दोनों छोरों पर एक-एक मेज रखी होती थी, जिन पर व्हिस्की की बोतलें तथा गिलास रखे रहते थे। नशा कम होने पर व्हिस्की पी लेते और 'धारा-प्रवाह' नाटक इस तरह बोलने लगते, जैसे स्टेज पर अभिनय कर रहे हों। राजेन्द्रकुमार दवे ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है कि 'हश्र' शराब पीते जाते और नशे में बैठे या झूमते हुए धारा-प्रवाह नाटक बोलने लगते थे। परिपूर्णानन्द वर्मा इस बात की ताईद करते हैं कि ''हश्र' से बढ़ कर शराबी मिलना मुश्किल है, पर उन्होंने शराब को बदचलनी के लिए कभी नहीं पिया।'

इसके विपरीत 'नैरंग' ने शराब पीकर 'हश्र' द्वारा नाटक लिखाये जाने की भ्रान्ति का खण्डन करते हुए यह तथ्य प्रस्तुत किया है कि वे आरामकुर्सी पर बैठ कर, सम्भवतः हुक्का पीते हुए, नाटक लिखाते थे। उन्होंने नाटक लिखाते समय

'हश्र' को शराब पीते नहीं देखा। 'हश्र' – परिवार के अन्य सदस्य शायर आगा जमील ने इसी तथ्य की दूसरे शब्दों में व्यजना की है : 'उन्होंने कभी भी नशे की हालत में क़लम नहीं छुई। जब नशा उतर जाता था, तो लिखते।' परन्तु इन दोनों वक्तव्यों से कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं और वे यह हैं कि क्या 'हश्र' नाटक बोल कर, श्रुतिलेख देकर, लिखाते थे या स्वयं लिखते थे ? लिखाते समय क्या शराब का नशा रहता था, जिसे बनाये रखने के लिए हुक्के का सहारा भी लेना पड़ता था ? और जब स्वयं लिखते थे, तो क्या नशा उतर चुका होता था ?

मैं ऐसे लेखकों/कवियों के बारे में जानता हूँ जो बिना कोई नशा किये, चाहे वह भाँग हो या शराब, एक सतर नहीं लिख सकते। मेरे-जैसों की बात और है, जिनके ऊपर लिखते समय बिना किसी नशे के ही घड़ों नशा चढ़ा रहता है और सृजन-समाधि लगी रहती है। यदि 'हश्र' पीते थे, जैसा कि तमाम सबूतों से सिद्ध भी होता है, तो कौन-सा गुनाह करते थे, उसे छिपाने या दबी जबान से स्वीकारने में भी आना-कानी की क्या आवश्यकता है ? इस ग्रन्थ का चरित-नायक जैसा भी है, खूब है, अमोल है, बेजोड़ है।

नारी पुरुष की कमजोरी है। नारी आग़ा साहब की कमजोरी और वासना भी थी, शक्ति भी ; साध्य भी थी, साधना भी ; उपास्य थी, उपासना भी। माँ के रूप में नारी उनकी श्रद्धास्पद और उपास्य थी। माँ से वे कुछ छिपाते न थे और माँ भी सौ जान से उन पर निछावर रहती थीं। वे माँ को बहुत प्यार करते थे, इसीलिए बकौल पं० सुदर्शन, जैसा कि डॉ० नम्र ने उन्हें उद्धृत किया है, उन्होंने माँ के लिए चालीस हजार रुपये बैंक में जमा कर रखे थे। माँ से वे डरते भी थे और परिपूर्णानन्द वर्मा के कथनानुसार माँ के नाम से ही उनका 'नशा हिरन हो जाता था।'

नारी से 'हश्र' ने प्रेरणा ग्रहण की, नये कथानक प्राप्त किये और उसके प्रेम के कमरे में बन्द रह कर नाटक भी लिखे। इस नारी के बाद पुनः एक नारी–निकाह-पढ़ी नारी, जिसे वह इतना प्यार करते थे कि मरने के बाद सम्राट् शाहजहाँ की भाँति वे अपनी मुमताज के बगल में ही लाहौर जाकर सोये। कदाचित् इसी नारी के निधन के बाद 'हश्र' को ग़म ग़लत करने के लिए प्यालों की संख्या बढ़ानी पड़ी और नई-नई नारियों की पलकों की छाँह ढूँढनी पड़ी। अनेक नारियों का संग-सोहबत उनकी कमज़ोरी बन गई, जिससे उनके लिए बचना संभव नहीं था। रंगमंच का एक कोना उन दिनों 'काजल की कोठरी' था, जिसमें सयाने से सयाना आदमी कालिख से बच कर नहीं निकल सकता था, फिर 'हश्र' अपने व्यक्तित्व, गुणों एवं लोकप्रियता के कारण नारी के घेरों से कैसे निकल पाते ! नारी को दूर रखने के लिए अनेक

नाटक-मंडलियों में लड़कियों/स्त्रियों को नौकरी में रखने का नियम नहीं था और स्त्री-भूमिकाएँ प्रायः सुरीली एवं सुदर्शन बाल-अभिनेत्रियों (किशोर बालकों) द्वारा की जाती थीं। न्यू अल्फ्रेड में अन्त तक इस नियम का कड़ाई के साथ पालन किया गया।

अपने इन बहुरंगी अनुभवों के आधार पर ही वेश्या-जीवन और वृत्ति के अत्यन्त जीवन्त, अकृत्रिम, यथार्थ एवं रंगीन बहुविध चित्र प्रस्तुत किये हैं, परन्तु सुन्दरी और कलावन्त होने के बावजूद वेश्या को कुलवधू की अपेक्षा कहीं भी ऊँचा स्थान नहीं दिया है 'हश्र' ने। नारी के रूप में भारतीय नारी के सतीत्व, शील-संकोच और उत्सर्ग-भावना को ही उन्होंने काम्य और आदर्श माना है। यही नारी 'हश्र' की प्रेरणा-स्रोत, उनकी शक्ति और साध्य रही है, जिसका गुणगान करते हुए 'हश्र' की क़लम ने कहीं विराम नहीं जाना। नारी के प्रति आसक्ति और भक्ति, इन दोनों विरोधाभासों का 'हश्र' में गंगा-यमुनी समन्वय हुआ है।

'हश्र' के व्यक्तित्व का अंकन उस समय तक पूर्ण नहीं हो सकता, जब तक हम यह न कहें कि वे पूर्ण मानवतावादी थे और अपने देश भारत से अगाध भक्तिपूर्ण, निष्ठायुक्त प्रेम करते थे। चरखारी में उन्हें बहुत मान-सम्मान और ऊँचा वेतन प्राप्त हुआ, किन्तु जब वे चरखारी से चले, तो उनके पास सिवा उन आठ हजार रुपये के, जो उन्हें सीता वनवास के मंचन-अधिकार के महाराजा द्वारा क्रय किये जाने से उन्हें मिले थे, उनके पास कुछ भी न था, क्योंकि सारी वेतन-राशि दीन-हीनों के बीच बँट जाती थी। संभवतः इसीलिए वे सभी के 'बाबा,' जगत बाबा के रूप में प्रसिद्ध हो गये थे। वे छोटे-बड़े सभी के लिए आदर और विश्वास के पात्र थे। ऐसी उदारता, दानशीलता बहुत कम कृतिकारों में देखने को मिलती है। भले ही वे 'निराला' की औघड़ दान-शीलता और महाकवि माघ की ऊँचाई को न छू सके हों, किन्तु वे पूर्ण इन्सान थे। उनकी इन्सानियत हिन्दू-मुसलमान के कठघरे से मुक्त एक विशुद्ध इन्सान की रूह से उत्पन्न हुई थी। यही कारण है कि वे सभी हिन्दू-मुस्लिम कलाकारों को एक साथ बाँध कर रख सके। हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू नारी के आदर्श का उन्होंने भारतीयकरण करने, उसे विश्वजनीन बनाने में अद्भुत सफलता प्राप्त की।

'हश्र' सन् १९२१ में कांग्रेसी हो गये और तब से बराबर वे देशोद्बोधन के गीत गाते रहे। कांग्रेस में आकर उन्होंने अंग्रेजी वेश-भूषा और फरदार टोपी त्याग दी और इसके बदले चूड़ीदार पायजामा, खद्दर का कुरता और गांधी टोपी पहनने लगे। एक बार एक नाटक का राष्ट्रीय गीत लिखने के बाद देश की स्वतंत्रता की हूक उठते ही एकांत में बड़ी देर तक वे रोते रहे।

'हश्र' कवि और नाटककार थे। शुक्रिया-ए-यूरप नामक लम्बी कविता लिख कर 'हश्र' ने विश्व की हर गुलाम क़ौम की दयनीय स्थिति, उत्पीड़न और स्वतंत्रता

आन्दोलन को वाणी दी । **यहूदी की लड़की** में उत्पीड़ित यहूदी-जाति द्वारा विद्रोह का झंडा खड़ा किया । जाति या राष्ट्र कोई भी हो, वे उसकी आज़ादी के फ़रमाँबरदार वकील थे ।

'हश्र' पारसी-हिन्दी रंगमंच के सशक्त एवं ओजस्वी नाटककार थे । उन्होंने कुल अट्ठाइस नाटक लिखे–चौदह उर्दू में और चौदह हिन्दी में । इन नाटकों की प्रामाणिक सूची साहित्य-संदर्भ के अन्तर्गत दी हुई है । 'हश्र' के व्यक्तित्व की भाँति उनके नाटकों की संख्या के सम्बन्ध में मतभेद है । यह संख्या सत्ताइस से लेकर सैंतीस या अधिक तक बताई जाती है । अब्दुल कुद्दुस 'नैरंग' ने यह संख्या सत्ताइस निर्धारित की है, किन्तु **भारत रमणी** को **वनदेवी** का पुनर्लिखित रूप मान लेने से वह संख्या घट कर छब्बीस ही रह जाती है । शफी महोबवी ने 'हश्र' के एक अन्य नाटक **राम अवतार** की खोज की है, जिसको जोड़ कर उनके प्रामाणिक नाटकों की संख्या अट्ठाइस (**भारत रमणी** भी इसमें सम्मिलित है) ही ठहरती है । किन्तु महोबवी ने मुज़फ्फर हुसैन शमीम के कथन के सहारे से 'हश्र' के कुल नाटकों की संख्या तैंतीस ठहराई है । डॉ० विद्यावती नम्र के मतानुसार 'हश्र' ने 'लगभग तीन दर्जन नाटक' लिखे । कुछेक विद्वानों ने इन नाटकों की संख्या चालीस तक भी बताई है । परन्तु ये संख्यायें संदिग्ध हैं, क्योंकि ऐसा लगता है कि तत्कालीन या परवर्ती प्रकाशकों ने दूसरों के भी कुछ नाटक 'हश्र' के नाम से छाप कर प्रचलित कर दिये, जिनमें 'हश्र' की क़लम का जादू, उसकी छाप नहीं है । उनके प्रामाणिक मुद्रित नाटक भी पाठ और कथा-विन्यास की दृष्टि से शुद्ध और प्रामाणिक नहीं हैं । यह एक विडम्बना है, जिसको इस शताब्दी वर्ष में दूर करना आवश्यक है ।

'हश्र' के नाटकों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है :—

१–युवावस्था के नाटक (१८९७ से १९१३ ई० तक)–इस युग के अन्तर्गत 'हश्र'-कृत **आफ़ताबे मोहब्बत** से लेकर **यहूदी की लड़की** तक के अधिकांश (बारह) उर्दू नाटक आते हैं । इनमें **आफ़ताबे मोहब्बत**, **मारे आस्तीं**, **दोरंगी दुनिया उर्फ़ मीठी छुरी**, तथा **यहूदी की लड़की** मौलिक नाटक प्रतीत होते हैं । इनमें **आफ़ताबे मोहब्बत अहसन-चन्द्रावली** के समानान्तर प्लाट पर आधारित मौलिक नाटक है ।

शेष नाटकों में **मुरीदे शक**, **दामे हुस्न उर्फ़ शहीदे नाज**, **सुफ़ेद खून**, **सैदे हवस** तथा **ख्वाबे हस्ती** शेक्सपियर के क्रमशः **ए विन्टर्स टेल**, **मेजर फार मेजर किंग लियर**, **किंग जॉन** तथा **मैकबेथ** के छायानुवाद, रूपान्तर या उनके कुछ दृश्य लेकर गठित नाटक हैं । **असीरे हिर्स** शेरिडन-कृत **पिज़ारो** का उर्दू-रूपान्तर है । **खूबसूरत बला** महशर अंबालवी-कृत **सुनहरी खंजर** का परिवर्तित रूप है, जो अपने समय में मंच पर अत्यन्त लोकप्रिय हुआ । इसी नाटक को देख कर राधेश्याम कथावाचक को

नाटक लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई थी। **सिल्वर किंग उर्फ़ जुर्मे वफ़ा** लेखक-द्वय हेनरी जेम्स तथा हेनरी हरमन-कृत **सिल्वर किंग** का उर्दू छायानुवाद है। यह इस वर्ग के नाटकों की राजसी/राजनैतिक पृष्ठभूमि से पृथक् सामाजिक पृष्ठभूमि पर रचित है। इसी नाटक को काट-छाँट कर बाद में **नेक परवीन उर्फ़ अछूता दामन** के रूप में प्रस्तुत किया गया। नाट्य-कला और संवाद-योजना, कथानक और भारतीय सती नारी के आदर्श, सामाजिक मर्यादा और मानवीय पक्ष तथा शृंगार रस की दृष्टि से 'हश्र' का यह प्रतिनिधि नाटक है। **अछूता दामन** में परवीन अनवरी के रूप में आई है। डॉ० विद्यावती नम्र ने इस नाटक के कथानक और नायिका अनवरी (परवीन) पर 'बेताब'-कृत **ज़हरी साँप** के कथानक और नायिका खुरशीद के चरित्र का प्रभाव सिद्ध किया है।

यहूदी की लड़की (राजसी एवं धार्मिक पृष्ठभूमि पर रचित नाटक) का कथानक यहूदियों पर रोमन शासन एवं धार्मिक पेशवा के अत्याचार तथा यहूदी और रोमन जातियों की परस्पर घृणा, विद्वेष और संघर्ष पर आधारित है। रोमन सत्ताधारी है, अतः सत्ता द्वारा उत्पीड़ित-शोषित यहूदी पूरी तरह जिस विद्रोह को हवा देते हैं वह तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों में अंग्रेजों के विरुद्ध भारत के विद्रोह और संघर्ष को मुखरित करता है, जो आगे के उत्तरकालीन नाटकों में भी अन्तर्धारा के रूप में प्रकट हुआ है। इस नाटक में 'हश्र' ने अपनी प्रतिभा और मौलिक चिन्तन का प्रथम बार परिचय दिया। नाटक की नायिका हन्ना 'हश्र' की उस हैदराबादी प्रेमिका का प्रतिनिधित्व करती है, जो खानदानी प्रतिष्ठा और विशाल संपत्ति के रहते 'हश्र' से विवाह न कर सकी, परन्तु हन्ना अन्ततः, रहस्योद्घाटन हो जाने पर, अपने प्रेमी-शाहजादे मार्कस को प्राप्त कर लेती है। 'हश्र' उसकी आकांक्षाओं की अपूर्ति नहीं देख सकते थे।

२— **मध्यावस्था के नाटक (१९१५ से १९२३ ई० तक)**— इस वर्ग के अन्तर्गत 'हश्र' के सात हिन्दी तथा एक उर्दू नाटक आता है — **बिल्वमंगल उर्फ़ भक्त सूरदास** से **पहला प्यार उर्फ़ संसार-चक्र** तक। इनमें **तुर्की हूर** उर्दू का नाटक है।

हिन्दी नाटकों में **बिल्वमंगल उर्फ़ भक्त सूरदास** तथा **अकबर** (**हिन्दुस्तान कदीम व जदीद** का दूसरा अंक) ऐतिहासिक जीवनीपरक नाटक है, **मधुर मुरली, भगीरथ गंगा** तथा **श्रवण कुमार** (**हिन्दुस्तान** का प्रथम अंक) पौराणिक नाटक हैं, **वनदेवी उर्फ़ भारत रमणी** एक स्वच्छन्दताधर्मी तथा **आज** (**हिन्दुस्तान** का तीसरा अंक) तथा **पहला प्यार उर्फ़ संसार-चक्र** सामाजिक नाटक हैं।

बिल्वमंगल उर्फ़ भक्त सूरदास गुजराती नाटककार नथुराम सुन्दर जी शुक्ल के इसी नाम के गुजराती नाटक के हिन्दी अनुवाद **सूरदास** के अनुकरण पर लिखा

गया है, किन्तु इसमें अपने संवाद-कौशल की मोहर लगा और लोकगीतों का प्रयोग कर 'हश्र' ने अपनी निजी छाप छोड़ी है।

श्रवणकुमार मूलत: राधेश्याम कथावाचक-कृत **श्रवणकुमार** नाटक का एक अंश है, जिसे 'हश्र' ने **हिन्दुस्तान** में एक अंक के रूप में ले लिया है। इस नाटक के शेष दो अंक – **अकबर** और **आज** मौलिक हैं। आज में अंग्रेजी शिक्षा और विलायती संस्कृति–नाच-रंग, मद्यपान और स्त्री-स्वातन्त्र्य के फलस्वरूप महिलाओं की बेग़ैरती, वेश्या-व्यवसाय, भारतीय समाज और संस्कृति से घृणा, ग़रीबों की उपेक्षा और अन्त में विलायती संस्कृति में पले प्रभाशंकर के संस्कार और परिधान में परिवर्तन, प्रवासी भारतीय श्रमिकों के दर्द आदि का मार्मिक चित्रण किया गया है। धन का सदुपयोग, देशभक्ति और खद्दर के प्रति आस्था इस नाटक के मूल मंत्र हैं।

सामाजिक नाटकों में **पहला प्यार उर्फ़ संसार-चक्र** सामान्य कोटि का नाटक है, यद्यपि इसमें भी डगमगाती नारी अपने सतीत्व से नीचे नहीं गिर पाती।

तुर्की हूर भी **सिल्वर किंग** की भाँति सशक्त सामाजिक नाटक है, जिसकी नायिका रशीदा एक रईस की पुत्री, किन्तु एक आदर्श पत्नी है, जो त्याग-परिश्रम करके भी अपने शराबी पति का साथ नहीं छोड़ती। उसे दो बार रईस जियाद पाशा या उसके आदमी अपहृत करके ले जाते हैं, किन्तु किसी-न-किसी प्रकार उसके बचाव का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। दूसरी बार उसका भाई अनवर अपहरणकर्ताओं से युद्ध कर रशीदा को बचाता है।

नाटक की भाषा सलीस उर्दू है, जिसे स्वयं 'हश्र' ने 'कौसरो-तसनीम से धुली ज़बान' (स्वर्गीय नदी से धुली भाषा) कहा है। संवाद की प्रहारक-शक्ति ने गंभीरता का दामन थाम लिया है, जो सामाजिक के मन-मस्तिष्क को झिझोंड़ती भी है, किन्तु दुखती रगों पर मरहम का काम भी करती है। इसमें भी शराब और शराबियों की अच्छी लानत-मलामत की गई है।

तुर्की हूर 'हश्र' के निर्देशन में कोरंथियन थियेटर में खेला गया था, जिसमें मा० नर्वदाशंकर ने रशीदा, दादाभाई सरकारी ने आरिफ (रशीदा का पति), मा० मनीलाल ने अनवर तथा मुहम्मद हुसैन ने जियाद पाशा की सफल भूमिकायें की थीं।

यह नाटक एक विदेशी फिल्म के कथानक और चरित्रों पर आधारित है, अत: मौलिक कृति नहीं कही जा सकती।

३– उत्तरावस्था के नाटक (**१९२४ से १९३२ ई० तक**) — इस वर्ग के अन्तर्गत भी सात हिन्दी के तथा एक उर्दू का नाटक है – **आंख का नशा** से लेकर **दिल की प्यास** तक। इस युग के नाटकों के मध्य 'हश्र' ने **रुस्तम-सोहराब** (१९२९

ई०) लिख कर उर्दू भाषा और कथ्य-संयोजन का एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। भाषा अरबी-फारसी के शब्दों से बोझिल है, जिसके लिए प्रत्येक हिन्दी वाले को उर्दू लुगत (शब्द-कोश) देखना होगा, किन्तु सशक्त और ओजस्वी संवाद, प्रत्येक संवाद में पहाड़ी झरने का-सा वेग, जो मस्तिष्क-रूपी चट्टान पर गिर उसे धुन डालता है। प्रेम, कर्तव्य, वीरता और वतन-परस्ती के ताने-बानों से पूरा नाटक बुना गया है। इसी नाटक के अन्तर्गत **इश्क व फर्ज** एक स्वतंत्र, किन्तु इसी का अंगभूत नाटक है, जिसमें भी इस बुनावट को देखा जा सकता है।

इस युग के हिन्दी नाटकों में तीन पौराणिक – **भीष्म, सीता वनवास** तथा **राम अवतार** तथा चार सामाजिक – **आँख का नशा, धर्मी बालक उर्फ गरीब की दुनिया, भारतीय बालक उर्फ समाज का शिकार** तथा **दिल की प्यास** हैं। इनमें सभी मौलिक है।

आँख का नशा 'हश्र' के सामाजिक नाटकों में सर्वाधिक सरस किन्तु सशक्त और शिक्षाप्रद नाटक है। इसमें एक ओर वेश्याओं के हथकण्डों, रीति-नीति, छल-कपट और अन्त में वेश्यागामी के, उसीसे उत्पन्न वेश्या-पुत्री के साथ, रमण की सम्भावना, तो दूसरी ओर सती कुलवधू को वेश्या द्वारा दिये गये दंश, अपमान, कष्ट और चुनौती, वेश्याओं की स्वयं उसके प्रेमी द्वारा हत्या और हत्या की स्वीकारोक्ति द्वारा नायक की मुक्ति और पत्नी से मिलन की कथा का पुरज़ोर और विश्वसनीय ढंग से चित्रण हुआ है।

संवादों की भाषा प्रांजल और सुन्दर है, व्यञ्जना, वक्रता और अलङ्करण ने उसके सौन्दर्य को सँवारा है। मुहावरों के प्रयोग ने चार चाँद लगाये हैं, यथा भीगी हुई जूती की तरह बढ़ना, हाथी के मस्तक पर मेंढकी का नाचना, हीरा परनाले की कीचड में गिर कर भी चमक नहीं छोड़ता, एक मुट्ठी अन्न का सहारा ढूँढना आदि। पात्र और प्रसङ्ग के अनुरूप भाषा बदलती चलती है – कहीं उसमें पहाड़ी नदी का चुलबुलापन, छेड़छाड़, नोच-खसोट के कुचक्र और रंगीनियाँ हैं, तो कहीं उसमें मैदानी नदी का गांभीर्य, गज-गति, दर्प और चुनौतियों के स्वर भी हैं।

अभी कुछ दिन पूर्व मेरे एक मित्र पारसी रङ्गमञ्च के अभिनेता ने यह बताया था कि **आँख का नशा** के रामगणेश गडकरी-कृत **सं० एकच प्याला** का अनुवाद होने की बात ठीक नहीं है। उनके कथन में सत्य था, क्योंकि **सं० एकच प्याला** का कथानक इस नाटक के कथानक से पृथक् है, यद्यपि दोनों में एक बात समान है– मद्य-पान के दुष्परिणाम। **आँख का नशा** में वेश्या-समस्या पर भी आत्मखोजी प्रकाश डाला गया है। **आँख का नशा** में नायक अपनी साध्वी पत्नी से मुख मोड़ कर मद्यपान और वेश्या-प्रीति के दुश्चक्र में फँसता और अन्त में अपना सब कुछ खोकर अपमानित

होता और अनेक विपत्तियों के बाद वह अपनी पत्नी से पुन: मिलता और उसे स्वीकारता है, जबकि **स० एकच प्याला** का नायक-वकील दारू के नशे के कारण पहले अपनी पत्नी की मृत्यु का कारण बनता और बाद में पश्चात्ताप कर आत्महत्या कर लेता है। इस सरल कथानक में 'हश्र' की-सी वक्रता, कौशल और मार्मिकता के दर्शन नहीं होते।

भीष्म (या **भीष्म प्रतिज्ञा**) को अन्त: एव वाह्य संघर्ष, भाषा और संवादों की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों के समकक्ष रखा जा सकता है। इसमें भी **सीता बनवास** की भाँति कोई पृथक् 'कॉमिक' नहीं है, किन्तु शान्तनु के विदूषक शिवदत्त तथा शाल्व के सभासदों के द्वारा जगह-जगह पर हास्य-प्रसंग उपस्थित किये गये हैं। शेरो-शायरी भी नहीं है।

भीष्म पर स्वयं 'हश्र' की फिल्म कम्पनी ने फिल्म बनानी प्रारम्भ की थी, परन्तु वह पूरी न हो सकी।

सीता बनबास मूलत: 'हश्र' द्वारा चरखारी महाराज के लिये लिखा गया था, जिसके लिये यथेष्ट प्रमाण हैं, किन्तु उनके युग के रङ्ग कलाकार गनपतलाल डांगी ने लिखा है कि यह नाटक चरखारी के लिये नहीं लिखा गया था, परन्तु महाराजा को पसन्द आने पर इस नाटक को उन्होंने खरीद लिया। इसका अर्थ यह हुआ कि महाराजा की नौकरी और आतिथ्य में रह कर 'हश्र' ने यह नाटक नहीं लिखा। इस कथम की किसी सूत्र से पुष्टि नहीं होती। इस मूल नाटक में सन् १९२९ में मादन के अनुरोध पर 'बेताब' ने परिवर्तन-संशोधन किया और इस प्रकार नाटक के प्रथम अङ्क के कुछ दृश्य ही 'हश्र' के रह गये और उत्तरार्ध को 'बेताब' ने पूरा बदल डाला। डॉ० अज्ञात तथा डॉ० विद्यावती नम्र ने इस तथ्य की पुष्टि की है। डॉ० नम्र के अनुसार उत्तरार्ध अर्थात् 'दूसरा अङ्क मूक है' और 'कथनोपकथन नाम मात्र को ही हैं।' 'हश्र' के नाम से जो नाटक प्राप्त होता है, उसके दूसरे अङ्क में मूक दृश्य या झांकी तो है, परन्तु ऐसा नहीं कि संवाद न हों।

इस नाटक के संवाद इतने सरस, भावपूर्ण एवं कल्पना-प्रवण हैं कि उन्हें डॉ० अज्ञात के शब्दों में 'गद्य में कविता' कहा जा सकता है। अन्य नाटकों के विपरीत इसमें कोई 'कॉमिक' नहीं है।

राम अवतार की खोज डॉ० शफी महोबवी ने की है और उसके एकाध संवाद भी अपने लेख में दिये है। संवाद-शैली से यह 'हश्र' की ही कृति प्रतीत होती है।

धर्मी बालक तथा **भारतीय बालक** बालक-शृंखला के नाटक हैं। इस शृंखला के दो अन्य नाटक हैं–'नम्र'-कृत **वीर बालक** तथा **प्रेमी बालक**; 'हश्र' के दोनों नाटकों में एक क्रमिक कथा है, जिससे यह लगता है कि **भारतीय बालक** **धर्मी बालक**

का पूरक और उत्तरार्ध है। समग्र कथा सोना और रूपा नामक सेवा समिति के दो बालक-सदस्यों तथा भूचाल और श्यामलाल नामक दो बदमाशों के इर्द-गिर्द घूमती है।

धर्मी बालक के लिए कोरंथियन नाटक मण्डली ने अमेरिका से सीन मँगवाये थे।

दिल की प्यास 'हश्र' का अन्तिम सामाजिक नाटक है, जो पत्नी, सपत्नी और आधुनिकतावादी मद्यप पति के सम्बन्ध-त्रिकोण पर आधारित है। संवाद छोटे किन्तु अर्थपूर्ण भावुकतापूर्ण एवं अलंकृत, सबल तथा आवेगमूलक हैं। इस नाटक की भारत लक्ष्मी प्रोडक्शन द्वारा फिल्म बनाई गई थी, जिसमें सोराबजी केरेवाला ने मदनमोहन तथा नायिका एवं खलनायिका की भूमिका क्रमश: मिस कज्जन तथा मिस पेशेन्स कूपर ने की थी।

'हश्र' के नाटकों की सामान्य प्रवृत्तियों को समझने के लिए तत्कालीन अर्थात् पारसी शैली के नाटकों के निम्नांकित तथ्यों और विशेषताओं पर विचार करना आवश्यक है :

१. नाटक के प्रारम्भ में मंगलाचरण और / या प्रस्तावना की व्यवस्था—यह मंगलाचरण प्रार्थना, गाना या कोरस गायन, हम्देबारी (विशेषकर उर्दू नाटकों में) के रूप में आया है। इसके उपरान्त नाटक एकदम से प्रारम्भ हो जाता है। कहीं-कहीं मंगलाचरण के साथ सूत्रधार-नटी, नेकी-बदी इन्द्रसभा या स्वर्गधाम की वार्ता वाली प्रस्तावनाएँ भी दी गई हैं।

खूबसूरत बला में नेकी-बदी की वार्ता वाली प्रस्तावना है।

२. नाटकों का अन्त प्राय: भरतवाक्य से हुआ है, जबकि 'हश्र' के **अछूता दामन** में कोई भरतवाक्य नहीं है। ये भरतवाक्य प्रसंग के अनुसार बधाईमूलक, आशीर्वादात्मक या प्रार्थनामूलक गानों के रूप में हैं। **खूबसूरत बला** तथा **ख्वाबे हस्ती** का आशीर्वादात्मक तथा **भक्त सूरदास** का प्रार्थना-या-भजनमूलक है।

३. नाटक प्राय: सुखान्त रखे जाते थे, क्योंकि सोद्देश्य होने के कारण उनमें असत् पर सत् की विजय, बिछुड़े प्रेमियों के मिलन, भक्त द्वारा भगवान के दर्शन की व्यवस्था अनिवार्य थी। **खूबसूरत बला** तथा **ख्वाबे हस्ती** में असत् पर सत् की विजय, **अछूत दामन** में दो प्रेमियों के मिलन तथा **भक्त सूरदास** में विल्वमगल तथा चिंतामणि द्वारा भगवान कृष्ण के दर्शन से नाटक की समाप्ति होती है। **तुर्की हूर** की रशीदा शराबी पति का सुधार करने में सफल होती है। **आँख का नशा** में खलनायक बेनी हत्याओं के जुर्म में अपनी गिरफ्तारी देता है और जुगल और सरोजनी (बिछुड़े नायक-नायिका) का मिलन हो जाता है। इसी प्रकार **दिल की**

प्यास में खलनायिका मनोरमा को घर से निकाल दिया जाता है और बिछुड़े हुए नायक-नायिका का मिलन हो जाता है। नायक की खलनायक पर तथा नायिका की खलनायिका पर सदैव विजय होती है।

४. नाटक तीन अङ्कों के होते थे और प्राय: रात भर या रात को देर तक चला करते थे। प्रत्येक अङ्क या 'ड्राप' (जिसे उर्दू नाटकों में 'बाब' भी कहा गया है) प्रवेश, दृश्य या सीन में विभाजित रहता था। प्रत्येक नाटक में दो मध्यान्तर हुआ करते थे। 'हश्र' ने **भीष्म प्रतिज्ञा** में 'अंक' के लिए 'ड्राप' शब्द का प्रयोग किया है।

सर्वाधिक दृश्य अर्थात् ११ से १३ तक नाटकों के दूसरे अङ्क (बेताब-कृत **महाभारत** एवं **रामायण** तथा 'हश्र' - **खूबसूरत बला**) में और न्यूनतम दृश्य अर्थात् अन्तिम अंक (**अछूता दामन**) में हैं। यों प्राय: प्रथम अंक में ५ से लेकर ८, द्वितीय अंक में ७ से लेकर १३ तथा तृतीय अंक में २ से लेकर ७ तक दृश्य रहते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि दूसरा अङ्क पहले से बड़ा और प्राय: सर्वाधिक बड़ा तथा तीसरा अंक सर्वाधिक छोटा होता रहा है। कोई-कोई दृश्य मूक हुआ करते थे और केवल झाँकी या 'टेबला' सँजोने की दृष्टि से लिखे जाते थे, यथा **ख्वाबेहस्ती** के पहले बाब का चौथा सीन या **सीता वनवास** के अन्तिम अंक का अंतिम दृश्य।

दृश्य-विभाजन की यह पद्धति पारसी नाटकों को अंग्रेज़ी या उससे प्रभावित गुजराती नाटकों के माध्यम से प्राप्त हुई थी।

५. सुगठित कथा-विन्यास— नाटक की कथा पौराणिक, सामाजिक या काल्पनिक या जीवनीपरक, कैसी भी हो, कथा-संयोजन सुगठित रूप से हुआ है। कथानक की बुनावट में आकस्मिकता, चमत्कार, आड़े समय में त्राता के प्रवेश द्वारा नायक/नायिका की रक्षा, पात्र के अतिमानवीय गुणों और अलौकिक शक्ति से सम्पन्नता के कारण चरित्र की अविश्वसनीयता, सत्-असत् पात्रों के विरोधी चरित्रों के अंकन के बाद सत् की आकस्मिक विजय, खल-नायक/खलनायिका की उपस्थिति तथा कॉमिक के लिए हास्य-उपकथा की समानान्तर व्यवस्था आवश्यक थी। कुछ नाटकों में छिछले स्तर का कॉमिक रहता था, जो मार-धाड़, लफ्फ़ाज़ी, कमज़ोर और डरपोक पति, शिक्षित एवं फैशनेबुल स्त्री की चोंचलेबाजी आदि तक सीमित रहता था, किन्तु उत्तरोत्तर हास्य-व्यंग्य के स्तर का विकास हुआ और उत्तरोत्तर कॉमिक का बहिष्कार किया जाने लगा। **सीता वनवास** और **भीष्म** में कोई कॉमिक नहीं है, जबकि **भीष्म** में भारतीय नाटकों के विदूषक को पुनर्जीवित करके लाया गया है। सामाजिक नाटकों के वर्ण्य विषय मुख्यत: वेश्या-वृत्ति, मद्यपान, जुआ, अपहरण, सपत्नी-द्वेष, स्त्री-शिक्षा, आधुनिकताओं की फैशनपरस्ती और कृत्रिमता,

सती और उत्सर्गमयी कुलवधू की प्रतिष्ठा, विधवा-विवाह, अस्पृश्यता-निवारण आदि हैं। सामाजिक तथा पौराणिक नाटकों में आततायी शासन की निन्दा एवं विरोध, देशप्रेम, स्वतन्त्रता या मुक्ति के लिए संघर्ष या उसके आवाहन के स्वर भी सुनाई पड़ते हैं। पौराणिक नाटकों में भक्त प्रह्लाद तथा सामाजिक नाटकों में हिन्दुस्तान,भारतीय बालक, रुस्तम-सोहराब, परिवर्तन आदि में देश-प्रेम या वतन-परस्ती की भावना मुखरित हुई है। खूबसूरत बलामें लार्ड कर्जन के शासन के आतंक पर मीठी चुटकी ली गई है :

डाक्टर–ग़लत, बिल्कुल ग़लत !आदमी का दिल सीने में बाईं तरफ रहता है।

खैरसल्लाह—अजी, वह अगले जमाने में रहा करता था, मगर जब लार्ड कर्ज़न की हुकूमत से घबरा गया, तो दिल बाईं तरफ से खिसक कर दाहिनी तरफ आ गया।

६. गद्य-पद्य-मिश्रित संवाद—वह युग शेरो-शायरी या बात-बात पर शेर, दोहे, चौपाई या श्लोक सुनाने का था। कोई भी बात इसके बिना वज़नदार नहीं बन पाती थी। वक्ता अपनी बात की पुष्टि या खुलासा किसी न किसी शेर या हिन्दी-संस्कृत छन्द के प्रयोग के बिना नहीं कर पाते थे। यह उनकी बौद्धिक क्षमता और पुष्ट चिन्तन-पद्धति का द्योतक भी समझा जाता था। फलत: तत्कालीन युग-प्रभाव को ग्रहण किये बिना पारसी-हिन्दी रंगमंच के नाटकों की रचना सम्भव न थी। इस पद्धति के अनुसार गद्य में जो बात कही जाती है, उसीको या उसीका समर्थन या पुष्टि करते हुए पद्य में भी कहा जाता है। इस पद्य के माध्यम से हृद्गत वह बात बड़ी सरलता से कह दी जाती है, जिसे प्राय: गद्य में कहना कठिन होता है। कभी-कभी गद्य-संवाद का उत्तर, उसे पुरज़ोर और असरदार बनाने के लिए, केवल पद्य में ही दिया जाता है।

ये पद्य संवाद इतने लोकप्रिय हो जाते थे कि यदि मञ्च पर कोई पात्र किसी अंश को पढ़ते-पढ़ते रुकता या भूलता, तो सामाजिक ज़ोर से बोल कर उसे पूरा कर दिया करते थे।

पद्य का प्रभाव तत्कालीन गद्य-संवाद पर भी पड़ा और एक-एक वाक्य में वाक्यखण्ड की यति के पूर्व, शब्दों की तुकें मिला दी जाती थीं, जिसमें वाक्य में एक प्रकार का उक्ति-वैचित्र्य या चमत्कार पैदा हो जाता है। कई-कई पात्रों के संवाद भी परस्पर तुकान्त हुआ करते थे। इस प्रकार के तुकान्त संवाद इस युग के नाटकों में भरे पड़े हैं।

प्रारम्भ में पद्य की भाषा व्रज या उर्दू-फारसी-मिश्रित खड़ी बोली होती थी, किन्तु बाद में उत्तरोत्तर हिन्दी खड़ी बोली का उपयोग होने लगा। उर्दू के नाटककार भी हिन्दी में नाटक लिखने की दिशा में प्रवृत्त हुए।

संवादों की भाषा पात्रानुसार चलती है—हिन्दू, मारवाड़ी, मराठी या गुजराती पात्रों की भाषा क्रमशः हिन्दी, राजस्थानी या अपने-अपने प्रान्तों की भाषा रहा करती थी। मुसलमान, यहूदी तथा ईरानी पात्र उर्दू या अरबी-फारसी-बहुल उर्दू का प्रयोग करते हैं।

गद्य-संवाद अभिधा से लक्षणा और व्यंजना की ओर बढ़े, फलतः उनके व्यंग्य में गांभीर्य और चोटीलापन, वक्रता, ओज और चुस्ती आई। विनोद और हाजिरजवाबी ने चार चाँद लगाये, कवित्व और अलंकरण ने क्रमशः उन्हें भाव-गरिमा और सजावट-भरी बुनावट दी। प्रसाद की भाँति कहीं-कहीं दार्शनिक चिन्तन और प्रकृति-सौन्दर्य भी झलकता है। संवाद में कोई एक भाव उपमा और रूपक के माध्यम से सीढ़ी-दर-सीढ़ी ऊपर उठता और आकाश की ऊँचाई पर पहुँच कर पाठक/दर्शक के मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डालता है। शब्द-बिम्बों के जुड़ते चले जाने पर भाव की लड़ी पूर्णता को प्राप्त करती है :

'जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा संपूर्ण ज्योति से चमकने के लिए, वसन्तु ऋतु की मुहबंद कली खिलने और महकने के लिए, सावन-भादों में चढ़ी हुई गंगा-यमुना का जल किनारे से छलकने के लिए मजबूर है, वैसे ही एक यौवन और जवानी से भरपूर सुन्दरी के मन में भी ऐसी उमंगों और कामनाओं का उत्पन्न होना ज़रूरी है।'

(भक्त सूरदास, पृ० ८)

इस एक संवादांश में ही 'जवानी से भरपूर सुन्दरी' की उपमा पूर्णमासी के चन्द्रमा, वसन्त की मुँहबंद कली, सावन-भादों की गंगा-यमुना से देकर उसके कसमसाते और अपने में न समा पाने वाले रूप-सौंदर्य का अलबेला शब्द-बिम्ब उकेरा है 'हश्र' ने।

क्या यह संवाद साहित्यिक नहीं है? क्या इस प्रकार के शतशः संवादों से भरे पारसी हिन्दी रंगमंच के नाटक असाहित्यिक हैं और 'मूर्खानुरंजन' की वस्तु है?

७– गीत-बाहुल्य – पारसी-हिन्दी रंगमंच के जिस रूप से हम परिचित हैं, उसके मूल में हिन्दी-उर्दू के वे ऑपेरा (संगीतक) या मराठी के संगीत नाटक रहे हैं, जिनका उन दिनों बम्बई और महाराष्ट्र की सीमाओं के बाहर भी प्रचलन रहा है। पारसी नाटककार नसरवानजी खानसाहेब 'आराम,' हाफ़िज अब्दुल्ला, विनायक प्रसाद 'तालिब,' मेंहदीहसन 'अहसन', अब्दुल वहीद कैस, मिर्ज़ा नज़ीरबेग 'नज़ीर' आदि ने उर्दू-हिन्दी में अनेक ऑपेरा लिखे। इन्हीं दिनों मराठी रंगमंच पर संगीत नाटकों की प्रतिष्ठा हुई। ऑपेराओं में राग-बद्ध गीतों की प्रधानता थी, जबकि संगीत नाटकों में इन रागबद्ध गीतों के साथ गद्य भी समाहित रहता था।

इन सबका पारसी-हिन्दी रंगमंच पर गहरा प्रभाव पड़ा है और ऐसा कोई

भी नाटक नहीं लिखा जाता था, जिसमें राग-रागिनी-बद्ध गीत न हों। प्रारम्भ में इन गीतों की संख्या सौ या अधिक तक हो जाया करती थी और नाटक संगीत-नृत्य की महफ़िल बन जाया करते थे, किन्तु इनमें गीतों की कमी होनी प्रारम्भ हो गई और यह संख्या घट कर बीस-पच्चीस तक उतर आई। गद्य-संवादों में वृद्धि हुई, किन्तु पद्य-संवाद प्रायः अधिकांश गद्य-संवादों के साथ पतंग की डोर बने रहे।

ये गीत या गाने व्रज, हिन्दी, उर्दू या अँग्रेज़ी में पृथक्-पृथक् या मिले-जुले भी हैं। अँग्रेजी गीत का एक दृष्टांत देखें —

नाउ लेट मी एलोन, दो आई नो यू वोण्ट।
आई नो यू वोण्ट, आई नो यू वोण्ट॥

(खूबसूरत बला, पृ० ४३)

जिन नाटकों की भाषा उर्दू-प्रधान है, उनमें भी व्रज या खड़ी बोली हिन्दी में गीत हैं। इन गीतों में जिन पक्के रागों का प्रयोग होता था, उनमें प्रमुख हैं: भोपाली, कामोद, भीमपलासी, यमन कल्याण, जयजयवंती, विहाग आदि। इसके अतिरिक्त लावनी, उर्दू की गजलें, मसनवी आदि का भी प्रयोग होता रहा है। लोकगीतों या उनकी तर्ज़ें भी अपनायी गईं, यथा—मोहें मधुवन श्याम बुलाय गयो रे ! (भक्त सूरदास, पृ० ५७), आगरे रो घाघरो मँगा दे रंजा देवरिया ! (भक्त सूरदास, पृ० ४९), जायें लायें श्यामसुन्दर सैंयां, सुन गुइयाँ मँदरवाँ तोरा साँवरा। (खूबसूरत बला, पृ० ४६)

उन दिनों दोगानों या 'डूएटों' का भी खूब प्रचलन था —

रजिया— कन्हैया कृष्ण मतवारे दुलारे, क्या नैन प्यार-प्यारे।
सुन्दर सूरत तोरी मन को हरत।

फ़ीरोज— हर जन को हरत तोरी मोहनी सूरत गोरी !

रजिया— मोरी बारी उमरिया बिहारी, मैं तोरे बारी॥

(ख्वाबे हस्ती, पृष्ठ १३८)

ये गीत और उनकी धुनें आज के सिने-गीतों की भाँति बहुत लोकप्रिय हो जाया करती थीं और गीत गली-गली में गूँजने लगते थे।

कॉमिकों में हलके-फुलके गीत और उनकी धुनें भी वैसी ही हलकी-फुलकी और उनकी लय-ताल की गति तीव्र होती थी। प्रायः फुदकते-से चलते हैं ये गीत—

हुआ बायकाट, मिला टीनपाट, गई जोरू।
तेरी-मेरी जोरू जी !

कैसी डाली थी लूट, माँगे डासन का बूट ।
कभी लावे न सूट तो मैडम जाय रूठ ॥

(खूबसूरत बला, पृ० १३१)

इस फुदकन, गति और लयबद्धता का स्वाद 'तालिब'–सत्य हरिश्चन्द्र के इस हास्य-गीत (पृ० ८) में भी लिया जा सकता है :

मन मैल मिटे, तन-तेज बढ़े, दे रंग-भंग का लोटा ।
सौ रोग टलें, सौ सोग टलें, करे भंग अङ्ग को मोटा ॥

रसानुकूल गीत-भाषा की गरिमा, भाव-संकुलता, अलंकृति, चटपटापन और चुलबुलापन किस सरस हृदय के मन-प्राणों को न मोह लेगा ? इन गीतों से बाँसुरी की जो तान और मीड़ें उठ रही हैं, उनसे कौन अरसिक भी अपने कर्ण-रन्ध्रों में तेल डाल कर बैठेगा ? इन गीतों का मुक़ाबला आज के नये नाटकों की टूटी तुकबन्दियाँ और लँगडी भावहीन पंक्तियाँ कदाचित् ही कर सकें। लाख-लाख सभी वर्गो-श्रेणियों के सामाजिक इन नाट्यगीतों पर यों ही फ़िदा नहीं हुए थे ।

ऊपर 'हश्र' के ही कुछ नाटकों के उदाहरण दिये गये हैं, जिनसे उनकी नाटक-लेखन की पद्धति और असीम नाट्य-क्षमता का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है । यह मान भी लिया जाय कि 'हश्र' ने पुरानी शराब को ही नयी बोतलों में ढाला है, तो वह ढलाई भी एक नये अन्दाज, एक नये करीने और सलीके की है, जिसका कोई जवाब नहीं । एक नयेपन का बोध है उनमें ।

'हश्र' के कुछ नाटकों के संवाद, गीत या दृश्य इस ग्रन्थ में भी बीच-बीच में आये हैं। कहीं पुनरावृत्ति भी हो सकती हैं । उनके दो नाटकों सीता वनवास तथा इश्क़ व फ़र्ज़ के कुछ दृश्य परिशिष्ट में दिये गये हैं, जो उनकी दो नाट्य-शैलियों-हिन्दी शैली और उर्दू शैली–के प्रतीक हैं। इनसे उनके भाषा के अधिकार, भाव, चिन्तन, कलात्मक संरचना आदि का भी बोध होगा ।

इस ग्रन्थ की सामग्री जुटाने में मुझे डॉ० भानुशंकर मेहता (अपने विभिन्न नाम-रूपों में), अब्दुल कुद्दूस 'नैरंग', आग़ा जमील काश्मीरी, फ़िदा हुसैन 'नरसी', गनपतलाल डाँगी, डॉ० विद्यावती ल० नम्र, डॉ० पवनकुमार मिश्र, डॉ० चन्दूलाल दुबे, रामचन्द्र श्रीवास्तव, सिकंदर रज़ा, शफी महोबवी, राजकुमार दवे प्रभृति विद्वानों और 'हश्र'-कालीन उनके मित्रों और सम्बन्धियों से जो अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है, उसके बिना यह कार्य कर पाना असम्भव था। पुराने समकालीन विद्वानों में परिपूर्णानन्द वर्मा तथा जनार्दन भट्ट के लेखों के बिना 'हश्र' के व्यक्तित्व और कृतित्व के कुछ पक्षों को खोल कर निस्पृह भाव से रख पाना तो और भी असम्भव होता । डॉ० कृष्ण मोहन सक्सेना ने भी अपने लेख द्वारा एक अछूते विषय पर चिन्तन की यथेष्ट सामग्री दी है । मेरे अनन्य सहयोगी डॉ० शरद नागर ने अपने

सक्रिय सहयोग, विशद कल्पना और रंगार्पण-भावना से पदे-पदे मेरे मार्ग को सरल बनाया है। इस कार्य में योगदान के लिए मैं अपने मित्र श्री श्यामकृष्ण का भी ऋणी हूँ। मैं इन सभी विद्वानों और मित्रों का हृदय से आभारी हूँ।

अन्त में मैं शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश तथा श्री मधुकर दिघे, भू०पू० वित्त मंत्री, उ० प्र० शासन का विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने 'हश्र'-स्मृति के इस यज्ञ के लिए पृथक्-पृथक् अनुदान देकर इस ग्रन्थ के प्रकाशन का मार्ग प्रशस्त किया। हम रंगभारती प्रकाशन ब्यूरो, कानपुर / लखनऊ के सहयोग के प्रति भी अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

आग़ा 'हश्र' के व्यक्तित्व के बहुमुखी पक्षों तथा कृतित्व की बहुआयामी बहुकोणीय समीक्षा-परीक्षा की दृष्टि से यह ग्रन्थ हिन्दी में अपने ढंग का प्रथम ग्रन्थ है, जिसका हिन्दी साहित्य-जगत में खुलकर समादर, उस युग की नाट्य-समीक्षा के मानदण्डों की समझ तथा युगों से संकुचित होते दायरों का पुनः विस्तार होगा। इस विश्वास के साथ कवि एवं रंग-नाटककार-शिरोमणि आग़ा 'हश्र' के जन्म-शताब्दी वर्ष के अवसर पर उनके श्रीचरणों में हम विनत श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

जय 'हश्र' ! जय पारसी - हिन्दी रंगमंच !!

—डॉ० अज्ञात

छायालोक,
१११-ए/१८३, अशोकनगर, कानपुर
४ अप्रैल, १९८०

यह ग्रन्थ एक स्मृति-यज्ञ है

'आग़ा हश्र : व्यक्ति और कृति' ग्रन्थ को देखकर ऐसा लगता है कि पारसी-हिन्दी रंगमंच को 'हश्र' द्वारा दिये गये दाय को हम भूले नहीं हैं। डॉ० अज्ञात द्वारा संपादित यह ग्रन्थ एक स्मृति-यज्ञ है, जिसकी वेदी पर अनेक विद्वानों ने, भले ही वे हिन्दू हों या मुसलमान, अपने-अपने ढंग से आहुति के फूल चढ़ाये हैं। स्मृति-रक्षा के लिए यज्ञ की अन्तिम आहुति होगी – 'हश्र' के हिन्दी उर्दू नाटकों के सुसंपादित संस्करण का प्रकाशन, जिसकी ओर हमारा ध्यान अब जाना चाहिए।

कलम के धनी, भाषा-मर्मज्ञ, कट्टर देश-भक्त, समाज-सुधारक, नेक दिल इन्सान आग़ा 'हश्र' आज भी हमारे साहित्य, समाज और देश के लिए उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने कि आज से वे ५० या अधिक वर्ष पूर्व थे। 'हश्र' ने अछूतोद्धार, मद्य-निषेध, वेश्यावृत्ति-विरोध, असत् पर सत् की स्थापना भारतीय नारी की प्रतिष्ठा तथा धार्मिक सहिष्णुता तथा अपने नाटकों में हिन्दू कथानकों की प्राण-प्रतिष्ठा द्वारा राष्ट्रीय एकीकरण की भूमिका का निष्ठा के साथ निर्वाह किया हैं।

यह ग्रन्थ 'हश्र' के बहुआयामी व्यक्तित्व और कृतित्व के अंकन और मूल्यांकन में सक्षम है।

—डॉ० मुन्शीराम शर्मा, 'सोम,
भू०पू० अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
डी०ए०वी० कालेज, कानपुर।

'हश्र' की पुनर्स्थापना

स्व० आग़ा 'हश्र' के व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में आज भी अनेक भ्रान्तियाँ प्रबुद्ध वर्ग के बीच प्रचलित हैं, जिनका निराकरण कर पारसी-हिन्दी रंगमंच के मूर्धन्य नाटककार 'हश्र' को पुनर्स्थापित करने का भारतीय रंगमंच के विशिष्ट अध्येता डॉ० अज्ञात द्वारा किया गया यह प्रयास सर्वाङ्गपूर्ण और सराहनीय ही नहीं स्तुत्य भी हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी 'हश्र' न केवल नाटककार, वरन् कवि, समाज-सुधारक एवं उत्कट देशभक्त भी रहे हैं। राष्ट्रीय एकीकरण में उनकी भूमिका उल्लेखनीय रही है। वे धार्मिक संकीर्णता से परे, समाज और मानव-मन में जो कुछ सत्, श्रेयस् तथा प्रेयस् है, उसके सर्वथा पक्षधर रहे हैं।

डॉ० अज्ञात द्वारा सम्पादित 'आग़ा हश्र : व्यक्ति और कृति' इस दिशा में एक प्रामाणिक ग्रंथ है, जिसका हिन्दी-संसार में पूर्ण स्वागत होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

—डॉ० बालमुकुन्द गुप्त
भू० पू० अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर।

(आग़ा मुहम्मद शाह 'हश्र' काश्मीरी का अंतिम उपलब्ध चित्र (सन् १९३५ ई०)।

●

(छविछित्र : ऊपर : 'नैरंग' एवं भानु; नीचे : डा० विद्यावती ल० नम्र)

●

(नीचे) आग़ा 'हश्र' काश्मीरी की समाधि लाहौर में।

↓

(ऊपर) बाएँ : चरखारी-नरेश श्री अरिमर्दन सिंह, तथा
दाहिने : अल्फ्रेड नाटक मंडली के संस्थापक सेठ
कावसजी पालनजी खटाऊ।

(छविचित्र ऊपर : डॉ० विद्यावती ल० नम्र
नीचे : मु० शफी महोबवी)

(नीचे) लेक व्यू कोठी, जहाँ चरखारी-प्रवास में रह कर 'हश्र' ने
सीता बनवास की रचना की।

(ऊपर) रायल थियेटर, चरखारी का सामने का दृश्य :
पीछे ऊँचाई वाले भाग में मंच है ।

●

(छविचित्र : राजेन्द्र कुमार दवे)

●

(नीचे) रायल थियेटर, चरखारी का पीछे स्थित
मंच की ओर का भाग

मादन थियेटर्स, कलकत्ता द्वारा निर्मित 'आग़ा 'हश्र'–कृत 'दिल की प्यास' (फिल्म) का एक दृश्य (१९३३ ई०) मदनमोहन की कोठी पर गार्डेन पार्टी : प्रेमशंकर 'नरसी' प्रेमनाथ की भूमिका में।

(छविचित्र : प्रेमशंकर 'नरसी')

व्यक्ति

परिपूर्णानन्द वर्मा

आग़ा 'हश्र' : जीवनी और व्यक्ति

[हिन्दी के कई स्वनामधन्य साहित्यकार आग़ा 'हश्र' के नाम से परिचित नहीं रहे हैं, उनके काम के बारे में तो शायद कभी उन्होंने सुना ही नहीं। ऐसे अल्प-ज्ञात किन्तु लेखनी के धनी आगा मुहम्मद शाह 'हश्र' की संक्षिप्त जीवनी और उनके व्यक्तित्व का स्मरण उनके तथाकथित भानजे परिपूर्णानन्द वर्मा ने उनकी मृत्यु के लगभग ३२ वर्ष बाद किया। इससे उनके चरित्र के कुछ अंशों पर प्रकाश पड़ता है, जिसे बड़े यत्नपूर्वक रहस्य के आगोश में छिपाकर रखने का प्रयास अभी तक होता रहा है। जिस यूरेशियन महिला का नाम 'हश्र' ने कभी नहीं लिया, यद्यपि उसके प्रति वे सदैव आभारी बने रहे, उनकी प्रथम पत्नी थी। 'हश्र' के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वे बोलकर लिखाते थे, विद्वान लेखक ने 'हश्र' के एक सम्बन्धी का उल्लेख कर यह बताया है कि वे नशा उतर जाने पर 'लिखते' भी थे।—सम्पादक]

कानपुर के दो स्थानों पर बड़ी चहल-पहल रहती है—फूलबाग में या भैंरोघाट पर। इन्हीं दो स्थानों में लोग आराम से बैठकर संसार की प्रत्येक समस्या पर विचार-विनिमय करते हैं।

मैं भी अपने साथियों के साथ आराम से बैठा हुआ अपने एक बंगाली मित्र का शव-दाह देख रहा था। चिता पर उन्हें औंधा (उन लोगों की प्रथा के अनुसार) पलटा दिया गया था। चिता की लपटें जल्दी-जल्दी ५६ वर्ष के उसके इतिहास को, आशा-निराशा के मैल को धूल में मिलाने के लिए उतावली हो रही थीं।

अब हमें भी कोई काम न था। किसी ने सिगरेट जलाई। किसी ने पान निकाला। कोई पानी पीने चला गया। कुछ देर तक जीवन की नश्वरता की, उस बेचारे के अनाथ बच्चे तथा पत्नी की बातें होती रहीं। धीरे-धीरे हम सिनेमा की बात करने लगे। अपने उन सभी बंगाली साथियों में इस विषय में मैं निरा उल्लू था, अतएव रंगमंच की बात होने लगी। यकायक मैंने कहा : 'बंगाली कलाकारों का एक बड़ा दोष है, वे हिन्दी मंच तथा उसके नाटकों से बहुत अपरिचित हैं। प्रसाद का

अजातशत्रु तक उन्होंने नहीं पढ़ा । डी० एल० राय का नाटक हरेक हिन्दी कलाकार जानता है और मंच पर खेलता है, पर कितने हिन्दी नाटक आप जानते हैं या खेलते हैं, और न सही, कलकत्ता में हिन्दी नाटक को बहुत ऊँचा उठाने वाले आग़ा मुहम्मद शाह 'हश्र' काश्मीरी को आप जानते हैं ?'

'आग़ा 'हश्र' ? यह नाम तो मैंने भी नहीं सुना', एक हिन्दी साहित्यकार बोले । एक उर्दू-दाँ बोले—'वे किस ज़बान में लिखते थे ?'

उर्दू के हिमायती उन वृद्ध महाशय तथा हिन्दी-साहित्य के उस अज्ञानी सेवक को मैं क्या कहूँ । बंगला पाठकों का अपराध क्षम्य था, इनका नहीं । मैंने कहा :—

'उर्दू की सुनाऊँ या हिन्दी की ?'

'पहले उर्दू की', आवाज़ लगी ।

पिता काश्मीर से बनारस आए

विदेशी लेखकों के बचपन की बात हमें बहुत याद रहती है, पर अपने धुरंधर लेखकों की चर्चा बहुत कम लोग करते हैं । १९वीं सदी के चौथे चरण में काश्मीर से सैयद गनी खाँ मय बाल-बच्चों के बनारस चले आये और वहीं दालमण्डी मुहल्ले के निकट नारियल बाज़ार, गोविन्दपुरा कलाँ में बस गये । वे थे सैयद, पर उनका नाम पड़ गया आग़ा । उनके दो लड़के थे—आग़ा मुहम्मद शाह तथा आग़ा महमूद शाह । आग़ा मुहम्मद को बचपन से ही शेर-शायरी, कविता तथा नाटक लिखने का बड़ा शौक़ था और १२ वर्ष की उम्र में, सन् १८९० में उनकी पहली रचना आफताबे मुहब्बत'[1] प्रकाशित हुई । इस पुस्तक पर उन्हें दस रुपया लिखाई मिली थी ।

अनुज महमूद : सफल रंग-कलाकार

आग़ा 'हश्र' के छोटे भाई आग़ा महमूद शाह भारतीय रंगमंच के बहुत ऊँचे कलाकार थे । २०-२१ वर्ष की उनकी उम्र थी । आग़ा 'हश्र' की ही कम्पनी में ८० वर्ष के बूढ़े का अभिनय करने वाले एक पात्र ने ऐन मौक़े पर अभिनय करना अस्वीकार कर दिया । हाल खचाखच भरा था । दर्शक बेचैन हो रहे थे । महमूद ने कहा—'मेरा मेकअप कीजिए, मैं करूँगा ।' और उनकी कमाल की ऐक्टिंग से लोग मुग्ध हो गये । आग़ा महमूद का सबसे कुशल अभिनय विल्वमंगल के रूप में हुआ करता था ।

आग़ा 'हश्र' ने १८ वर्ष की उम्र से नाटक के क्षेत्र में प्रवेश किया । पहले

---

१. आफताब मुहब्बत की रचना सन् १८९० में नहीं, १८९७ में हुई थी ।

—सम्पादक

उन्होंने बम्बई में कावसजी खटाऊ की अल्फ्रेड थियेट्रिकल कं० में नाटककार की हैसियत से प्रवेश किया। कुछ वर्ष में ही उन्होंने अपनी नाटक कम्पनी ग्रेट अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी की स्थापना की, किन्तु उसे सफलता न मिल सकी। पुनः सन् १९१३ में शेक्सपियर थियेट्रिकल कम्पनी की स्थापना की, जो देश का दौरा करने लगी। उन्होंने इस कम्पनी को मय साज-सज्जा के अपने छोटे भाई तथा ऐक्टर आगा महमूद को दे दिया।

पारसी नाटक मण्डलियाँ तथा 'हश्र'

आगा 'हश्र' का रंगमंच में नाटककार के रूप में अद्भुत उदय हुआ। आज हम पारसी कम्पनियों तथा मादन थियेटर्स, कलकत्ता, सूर विजय नाटक मण्डली, व्याकुल भारत थियेटर्स आदि को भूल गये हैं या इनका नाम सुनकर नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं, पर हिन्दी के मंच को, हिन्दी के नाटकों को यदि वाराणसी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनकी भारतेन्दु नाटक मण्डली एवं नागरी नाटक मण्डली ने सुघरता, साहित्य तथा कला प्रदान की, तो हिन्दी मंच को जीवित रखा इन पारसी कम्पनियों ने, मादन थियेटर्स आदि ने। सन् १८८० से १९२० तक इन कम्पनियों ने न केवल हमें एक से एक अच्छे नाटक प्रदान किये, बल्कि एक से एक अच्छे नाटककार दिये, जिनमें आगा 'हश्र', नारायण प्रसाद 'बेताब', तुलसीदत्त 'शैदा' तथा राधेश्याम कथावाचक उल्लेखनीय हैं। इनमें श्रेष्ठ स्थान 'हश्र' का है।

'हश्र' ने 'वासिल' से हिन्दी सीखी

'हश्र' की ज़बान उर्दू-फारसी थी। हिन्दी उन्होंने मेरे मामा मुं० अम्बिका प्रसाद 'वासिल' के साथ दोस्ती-दोस्ती में सीख ली थी। दोनों में बड़ी दोस्ती थी। दोनों बड़े अच्छे शायर। कवि तथा नाटककार थे। 'वासिल' तथा 'हश्र' की मित्रता अन्त तक निभ गयी। 'हश्र' ने कभी जीवन में अपने मित्र को न छोड़ा, न धोखा दिया, न समय पर सहायता करने से चूके। 'वासिल' साहब बतलाते थे कि 'हश्र' का हिन्दी पर कितनी जल्दी अधिकार हो गया और कितनी जल्दी उन्होंने हिन्दी सीख ली।

और प्रथम पत्नी से अंग्रेजी

वे यह भी कहते थे :—

''हश्र' से बढ़कर शराबी मिलना मुश्किल है, पर उन्होंने शराब को बदचलनी के लिए कभी नहीं पिया। बम्बई में उनकी पहली स्त्री यूरेशियन थी, गोरी जाति की थी। उसके संसर्ग से उन्होंने अंग्रेजी भी सीख ली। शराब पीकर खूब बकते-झकते थे, पर अपनी माता से इतना डरते थे, उनकी इतनी कद्र करते थे कि चाहे कितने भी बेहोश हों, जहाँ उनसे किसी ने कह दिया कि अम्मा बुला रही हैं, सब नशा हिरन

हो जाता था । माँ के पास भीगी बिल्ली की तरह जाकर दुबक कर बैठ जाते थे ।'

नशे में कभी कलम नहीं छुई

एक बात और बड़े मार्के की उनके बारे में उनके भतीजे आगा महमूद के लड़के आगा जमील ने, जो खुद बहुत बड़े शायर हैं, बतलाई—

'उन्होंने कभी भी नशे की हालत में कलम नहीं छुई । जब नशा उतर जाता था, तो लिखते ।'

कोरंथियन और उसके कलाकार

अस्तु, मादन थियेटर्स की दो नाटक कम्पनियाँ थीं—पहली थी न्यू अलेक्जेंड्रा, कलकत्ता और दूसरी थी कोरंथियन । कोरंथियन ने हिन्दी नाटकों के खेलने में कमाल कर दिया था । इसके प्रसिद्ध अभिनेता मास्टर मोहन, नर्मदा शंकर, माणिक लाल, कुमारी शरीफा आदि का नाम लोग आज भी याद रखते हैं ।

आगा 'हश्र' की पत्नियाँ

आगा 'हश्र' बड़े मुहब्बती लोगों में से थे । जी खोल कर स्नेह करते थे । गोरी स्त्री के निधन के बाद उन्होंने लाहौर में शादी की । इस पत्नी से उन्हें अत्यधिक प्रेम था । इसी से इनका लड़का आगा नादिरशाह पैदा हुआ, जो भरी जवानी में,[२] पिता के कलेजे को टुकड़ा–टुकड़ा कर लखनऊ में चल बसा । पत्नी की मृत्यु लाहौर में हुई । उनकी कब्र पर 'हश्र' ने ये अमर पंक्तियाँ लिख दी हैं :—

वारिस है अब ये कब्र मेरे महजमीन की ।
मैं दे चला ज़मीं को अमानत जमीन की ।।

'हश्र' भी २८ अप्रैल, १९३५ को ५६ वर्ष की उम्र में, जलोदर की बीमारी से लाहौर में ही मर गये । वे अपनी प्रिय पत्नी के बगल में लेटे हुए हैं ।

मृत्यु पर आगा 'हश्र'

श्मशान पर बैठे मैंने अपने बंगाली मित्रों को सुनाई और सुनिये उनकी उर्दू की एक लाजवाब पंक्ति, जो मृत्यु को कितनी आसान चीज़ बना देती है :—

जल रहे हैं दाग़-दिल तुर्बत पे जाने के लिये ।
रोशनी कम हो रही है नींद आने के लिये ।।

और उनकी हिन्दी की कविता सुनिये :—

हाय-हाय दुःख से करें, अज्ञानी अविवेक ।
सुख के साधन सैकड़ों, ग्रहन करें न एक ।।
सुक्ख की धारा बह रही, पास न वाके जाय ।
जमुना तीर पड़े हुए, प्यास-प्यास चिल्लाय ।।

---

२. 'हश्र' के मानजे श्री 'नैरंग' के अनुसार नादिरशाह की मृत्यु भरी जवानी में नहीं, शैशव में ही हो गई थी ।—सम्पादक

'हश्र' की प्रांजल हिन्दी

एक साहब ने पूछा—'उनकी हिन्दी की भाषा कैसी थी ?'

मुझे उनके '**भक्त सूरदास**' का एक टुकड़ा याद था :—

'करुणासिन्धु, जगत की ऐसी कंगाल दशा देखकर मेरे मन में ऐसा भाव उठता है कि पृथ्वी के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक चक्कर लगाऊँ और ज्ञान-उपदेश देकर भूली-भटकी आत्मा को मोक्ष का रास्ता दिखलाऊँ ।'

कितनी सरल, सुन्दर भाषा है । उनका पहला हिन्दी नाटक **भक्त सूरदास** था । उसके बाद **मधुर मुरली, भगीरथ गंगा, पहला प्यार, आँख का नशा, भीष्म, दिल की प्यास, सीता बनवास, धर्मी बालक** आदि लिखे, छपे और खेले गये । सभी नाटक स्वाधीनता-प्रेम, सामाजिक कुरीतियों के प्रति जनता के ध्यानाकर्षण तथा बड़ों के प्रति सम्मान की भावना से भरे हुए हैं ।

धर्मी बालक आज के ५० वर्ष पहले 'दहेज प्रथा' के विरुद्ध मार्मिक विद्रोह है । शराब के विरुद्ध शराबी 'हश्र' ने लिखा है :—

ये सुख नहीं, आँख का नशा है, पिया जो ये विष, बुरा करोगे ।

चमारखाते में नाम होगा, सड़क पर झाड़ू दिया करोगे ।।

'हश्र' की हिन्दी बड़ी मुहावरेदार, मीठी तथा बोधगम्य थी । उनके नाटकों को पढ़कर सभी कहेंगे कि हिन्दू धर्म तथा पुराण से परिचित किसी विद्वान हिन्दू ने इनकी रचना की होगी । पर 'हश्र' की हिन्दू धर्म की भीतरी जानकारी तथा उससे प्रेम का एक बड़ा कारण था । वे कट्टर भारतीय थे । हिन्दू-मुस्लिम में भेद-भाव उनसे छू तक नहीं गया था । उनके परिवार में भी यह चीज़ नहीं है । उनके दो भानजे इश्तियाक हुसैन (गवर्नमेंट एडवोकेट) तथा अब्दुल कुद्दूस 'नैरंग' वाराणसी की हिन्दुस्तानी बिरादरी के प्राण हैं । इस बिरादरी का एक ही मंत्र है :—

'हम पहले भारतीय हैं, फिर हमारा धर्म है ।'

मैंने आग़ा 'हश्र' को बचपन में देखा था । वाराणसी के बाँस फाटक मुहल्ले में विश्वेश्वर थियेटर हाल में 'आँख का नशा' खेला जा रहा था । बाहर मैदान में कुर्सियों पर बहुत से लोगों से घिरे आग़ा 'हश्र' बैठे हुये थे—खूबसूरत, तन्दुरुस्त, फूले हुए से व्यक्ति । आदत के मुताबिक मैं उनसे नमस्ते करना चाहता था । हिन्दी के पुराने साहित्यिक तथा सम्पादक श्री गंगा प्रसाद पास में बैठे थे । उन्होंने परिचय करा दिया । दो मिनट में ही वे एकदम आत्मीय हो गये, बड़े प्रेम से बोले : 'आओ बेटा, मैं तुम्हारा मामा हूँ ।'

आज भी उनके वात्सल्य-भरे वे शब्द मेरे कानों में गूँज रहे हैं । वे मेरे मामा थे, उनके भानजे 'नैरंग' जी मेरे भाई है ।

मेरी उनकी यह प्रथम तथा अन्तिम भेंट थी ।

[दैनिक जागरण, साप्ताहिक परिशिष्ट, १५ अक्टूबर, १९६७, पृ० ९]

———

सिकन्दर रज़ा

आग़ा 'हश्र' काश्मीरी : संक्षिप्त जीवन-परिचय

[आग़ा मुहम्मद शाह "हश्र" काश्मीरी का जीवन उनके जन्म से लेकर मृत्यु तक विवादास्पद रहा है। यह आश्चर्यजनक है कि गत ४५ वर्षों के भीतर भी उनके जीवन-चरित् को किसी भी लेखक, चरित्कार अथवा उनके निकट संबंधी-लेखक ने प्रामाणिकता के दावों के बावजूद अभी तक प्रामाणिकता के साथ नहीं लिखा और भ्रांति-निवारण के तमाम प्रयासों के बावजूद आज भी भ्रांति के आवरण में वे आबद्ध हैं। अतः उत्तम यही था कि हम विभिन्न दृष्टिकोणों एवं बहुप्रचारित अथवा छिपे तथ्यों के आधार पर लिखे गये उनके जीवन-चरित् के विविध आयामों को प्रकाश में लायें, जिससे समय के साथ निखर कर सत्य का निर्धारण हो सके।

रंगकर्मी एवं आग़ा 'हश्र'-साहित्य के अध्येता सिकन्दर रज़ा ने अपने लेख 'आग़ा 'हश्र' काश्मीरी : संक्षिप्त जीवन-परिचय' में 'हश्र' का जन्म-स्थान अमृतसर तथा उनकी पत्नी का नाम मुख्तार बेगम बताया है। प्रथम तथ्य विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता, किन्तु द्वितीय तथ्य ऐसा नहीं है कि उसे अविश्वसनीय कह कर उसकी सहज ही उपेक्षा की जा सके। –संपादक]

यह उन दिनों की बात है, जब भारतवर्ष पर पूर्णरूपेण गोरों का राज्य स्थापित हो चुका था और अँग्रेजी और फ्रांसीसी ऑपेरा काफ़ी ज़ोर-शोर के साथ भारतीय मञ्च पर छाते जा रहे थे। अवध के अन्तिम नवाब वाजिदअली शाह ने भारतीय नाटक को लखनऊ में जो एक नया रूप दिया था, वह एक बार फिर धुँधला हुआ जा रहा था। केवल कुछ लोकनाट्यों, यथा रासलीला, रासलीला, स्वाँग या तमाशों के अलावा और सब ढीला पड़ गया था। ऐसे समय में बनारस का एक नौजवान नाटककार बनकर उभरा और नाट्य-संसार पर छाता चला गया। उस नाटककार का नाम था– आग़ा मुहम्मद शाह 'हश्र', काश्मीरी।

जन्म

'आग़ा' 'हश्र' का जन्म ४ अप्रैल, १८७९ ई० (हिजरी सन् १२९६) को हुआ

था। इनके पिता आग़ा मुहम्मद ग़नी शाह, काश्मीरी शाल और दुशालों का पहले श्रीनगर में व्यापार करते थे। जब आग़ा 'हश्र' ने जन्म लिया, तो वह अमृतसर में थे।[1] आग़ा 'हश्र' के जन्म के कुछ ही दिनों पश्चात् उनके पिता को किन्हीं अनजान कारणोंवश अमृतसर छोड़ना पड़ा, जहाँ से वे बनारस इसलिए चले आये कि यहाँ पर कला के क़द्रदान मौजूद हैं और उनका व्यापार चल निकलेगा। बनारस वास्तविक रूप से उस समय कपड़ों पर ज़री के काम के लिए अत्यधिक प्रसिद्ध था, अतः वे यहीं आकर बस गये।

आग़ा 'हश्र' ने बचपन के कुछ सुनहरे दिन काशी जयनारायण स्कूल में बिताये, किन्तु ज़्यादा पढ़ न सके। वैसे भी उस समय का वातावरण अधिक पढ़ाई का न था। पुनश्च, उनका मन कलाकारी और शायरी की ओर अधिक था। स्कूल न जाने के बावजूद हिन्दी, अंग्रेज़ी, उर्दू तथा फ़ारसी अच्छी बोलते और लिखते थे। अरबी का भी कुछ-कुछ ज्ञान हो गया था।

'आफ़ताबे मुहब्बत' की रचना : एक चुनौती का उत्तर

अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी अपना नाटक चन्द्रावली लेकर बनारस आयी। आग़ा 'हश्र' नाटक को देखकर अत्यधिक प्रभावित हुए। दिल में लिखने का जो उन्माद था, वह करवटें बदलने लगा। बहुत विचार के बाद वे 'अहसन' लखनवी से मिलने गये और इसी प्रकार के नाटक लिखने की अपनी इच्छा व्यक्त की। उस समय 'अहसन' लखनवी का सितारा बुलन्द था। आग़ा 'हश्र' अभी युवक थे। आयु लगभग सत्रह-अठारह वर्ष की थी, अतः टका-सा जवाब मिल गया— 'अभी बच्चे हो, तुम क्या लिखोगे ?' जन्म-तिथि के अनुसार आग़ा 'हश्र' का अंक छः निकलता है और कुण्डली में शनि का उच्च योग है। ऐसे मनुष्य को दूसरों की बात जल्दी पकड़ने की आदत होती है। 'अहसन' लखनवी की यह बात उन्होंने पकड़ ली। उनके मन को धक्का-सा लगा— 'क्या मैं ऐसा नाटक नहीं लिख सकता, क्यों नहीं लिख सकता ?' उसके तुरन्त बाद ही सन् १८९७ ई० में उन्होंने अपना पहला नाटक लिखा, जिसका नाम था— **आफ़ताबे-मुहब्बत**। यह नाटक बिल्कुल चन्द्रावली के तर्ज़ पर है। इसके सम्वाद, गीत आदि **चन्द्रावली** के सम्वाद और गीतों के समरूप हैं। बल्कि यदि यह कहा जाय कि **आफ़ताबे मुहब्बत** के गीतों का तर्ज़ तथा स्तर **चन्द्रावली** के गीतों से कुछ बेहतर है, तो गलत न होगा, क्योंकि उनमें साहित्यिक पुट भी है।

यहाँ पर समरूपता के उदाहरण के लिए हम चन्द्रावली और **आफ़ताबे-मुहब्बत**

१—तथ्य यह है कि 'हश्र' का जन्म अमृतसर में नहीं, बनारस में हुआ था, यद्यपि श्रीराम देहलवी, रामबाबू सक्सेना प्रभृति विद्वानों ने उनका जन्म-स्थान अमृतसर बताया है। —संपादक

के एक-एक गीत दे रहे हैं । 'अहसन' की चन्द्रावली में नाचने-गाने वालियों के रंगीलेपन का एक चित्र है :

जोबन बरसन लागे ।
राजा छम–छम, छम–छम, छम–छम, चमके ताज,
छतर सीस पर, घूम–घूम
तनमन नादिर समाँ,
झग–झग, धग–धग मुकुट,
मुकुट बरतर, आसमान तक ।

'अहसन' को जितना अधिकार शब्दों पर था, उतना ही संगीत पर भी । वे संगीत के ज्ञाता थे । चन्द्रावली में उन्होंने जो गीत लिखे, उनके शब्द और ताल की गत पैनी दृष्टि और जानकारी वाले ही समझ सकते हैं । स्वयं 'अहसन' का कहना था कि जो अलफ़ाज़ गीत के बोल में मैंने जिस प्रकार बैठाये हैं, वे सब आड़ी-तिरछी तर्जों पर हैं और इस प्रकार के बोल कोई दूसरा लेखक बिठा ही नहीं सकता ।

दूसरी ओर आग़ा 'हश्र' संगीत से अनभिज्ञ थे । फिर भी इन रामिश्गरां के गीत के समकक्ष आफ़ताबे मुहब्बत में शाहजादा कौकब के दरबार में दरबारी उनकी शान में जो गीत गाते हैं, वह इस तरह है–

नख्ले मुराद है शाही गुलज़ार का ।
आया खुश्तर कौकब प्यारा,
तन-मन काऊ वारो सारा,
रौशन कौकब अफ़जाल का,
सखर मालिक इकबाल का,
जग में आला इज्ज़त वाला,
शौकत वाला, सब पर बाला ।

'हश्र' अल्फ्रेड कम्पनी में

आफ़ताबे मुहब्बत ने आग़ा 'हश्र' को उस समय के नाटककारों की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया । आफ़ताबे मुहब्बत का बनारस में कुशल मंचन हो जाने के बाद आग़ा 'हश्र' ने बम्बई का रास्ता पकड़ा और वहाँ पहुँच कर अल्फ्रेड कम्पनी में नौकरी कर ली । अल्फ्रेड कम्पनी ने उनका लिखा हुआ दूसरा नाटक मुरीदे-शक, जो अँग्रेजी नाटक 'दि विंटर्स टेल' का उर्दू-रूपान्तर था, सन् १८९९ ई० में खेला । इस प्रकार अब आग़ा 'हश्र' पूर्ण रूप से लेखक के रूप में स्थापित हो गये थे ।

सन् १८९० में अल्फ्रेड के भागीदारों में फूट पड़ जाने पर दो पृथक् मंडलियाँ बन गईं – पुरानी या पारसी अल्फ्रेड तथा न्यू अल्फ्रेड नाटक मंडली । उस समय के प्रसिद्ध हास्य–अभिनेता सोराबजी फ्रामजी ओग्रा इस कम्पनी के निर्देशक थे ।

उन्होंने भी आग़ा 'हश्र' के नाटकों को ही तरजीह दी और कई नाटक बम्बई, अमृतसर, कलकत्ता, अहमदाबाद आदि नगरों में खेले।

परिधान और मिज़ाज से भारतीय

इस समय तक सफलता आग़ा 'हश्र' की लेखनी को चूमने लगी थी। छः फुट की ऊँचाई और चौड़ी छाती वाले इस लेखक का रंग गोरा था। वे हमेशा चूड़ीदार पायजामा, शेरवानी और फ़र की टोपी पहनते थे। स्वभाव में बहुत ही मूडी थे और अपने समय के उस समाज से सख्त नफ़रत करते थे, जो अंग्रेजों से प्रभावित था, जिन्हें खान बहादुर आदि के ख़िताब मिले हुए थे। उनके अनुसार वे हिन्दुस्तानी समाज के असली रूप को अंग्रेजियत में ढालकर बरबाद कर रहे थे। इसी बात से प्रभावित होकर उन्होंने एक नाटक लिखा था— **खूबसूरत बला**। इस नाटक में उस समय के दौलतमन्दों पर अच्छे छींटे कसे गये हैं।

'हश्र' की नाटक मंडली

इसके तुरन्त बाद ही आग़ा 'हश्र' ने अहमदाबाद में अपनी अलग नाटक कम्पनी खोली, जो शीघ्र ही बन्द भी हो गई। इस नाटक कम्पनी के बन्द हो जाने से आग़ा साहब को बहुत दुःख हुआ और वे अहमदाबाद से लाहौर चले गये। यह बात सन् १९०९ की है।

तीन साल बाद ही लाहौर में एक कम्पनी फिर खोली, जिसका नाम था— **इण्डियन शेक्सपियर थियेट्रिकल कम्पनी आफ़ लाहौर**। कम्पनी सफलता के साथ चल निकली और अहमदाबाद, भागलपुर, बनारस, पटना तथा कलकत्ते आदि में अच्छे खेल खेले। लेकिन १९१८० ई० में स्यालकोट में भारी नुकसान हो गया, अतः कम्पनी बन्द कर देनी पड़ी।

सन् १९१४ ई० में **अल्फ्रेड थियेटिकल कम्पनी** के संस्थापक कावसजी पालनजी खटाऊ की लाहौर में मृत्यु हो गई। उनके बेटे जहाँगीरजी ने चार साल तक कम्पनी चलाई और फिर कलकत्ते के प्रसिद्ध व्यापारी जे० एफ० मादन के हाथ बेंच दी। जब आग़ा 'हश्र' की इण्डियन शेक्सपियर थियेट्रिकल कम्पनी स्यालकोट में बन्द हो गई, तो आग़ा 'हश्र' कलकत्ता चले गये। आग़ा साहब को मादन थियेटर्स में माहवारी वेतन पर सरलतापूर्वक काम मिल गया।

मादन थियेटर्स ने ही सन् १९२२ ई० में अपनी फिल्म आरम्भ की थी। उसमें आग़ा 'हश्र' ने मासिक वेतन पर काम किया था। पर अचानक सन् १९२३ में मादन की मृत्यु हो गई और वह कम्पनी भी बन्द हो गई।

'हश्र' का मुख्तार बेगम से विवाह

आग़ा 'हश्र' देखने में सुन्दर, बोलने में गरजदार, लिखने में धनदार थे। एक बार वह किसी नाटक मण्डली के साथ अमृतसर गये थे। उस समय उनके नाट्य-गीत

हर वर्ग के लोगों में प्रचलित थे । अमृतसर की प्रसिद्ध गायिका मुख्तार बेगम भी उनके गीतों और उनकी नवाबी शान से अत्यधिक प्रभावित थीं । जब उनका सामना हुआ, मोहब्बत उमड़ पड़ी । इस प्रकार लेखक के जीवन में शादी की बहार आ गयी ।

आग़ा 'हश्र' ने ज़िन्दगी को जीना सीखा था—नवाबी शानो-शौकत और ठाठ-बाट के साथ । अपनी ज़िन्दगी में लाखों रुपये कमाये और लाखों उड़ा दिये । उनकी फिज़ूलखर्ची, धन-दौलत के प्रति लापरवाही बहुत प्रसिद्ध थी । वे रातों को राजा होते थे, तो सवेरे रंक । शराब के बहुत शौकीन थे और बिना नागा पीते थे, जबकि उन्होंने अपने नाटक तुर्की हूर में यह लिखा था :

गिलासों में जो डूबे फिर न उभरे ज़िन्दगानी में ।
हजारों बह गये इन बोतलों के बन्द पानी में ।।

इतनी सूझ-बूझ के कारण ही उन्होंने कभी साहस नहीं छोड़ा । सन् १९२५ में फिर एक बार दि ग्रेट शेक्सपियर थियेट्रिकल कम्पनी बनारस में खोली और अपने बल-बूते पर काफी समय तक इसे चलाते रहे । पिछले दिनों आग़ा साहब की कम्पनी के एक साथी श्री फिदा हुसैन से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । अस्सीवर्षीय श्री फिदा हुसैन ने उनके लेखन-गुणों का बखान करते हुये बताया कि आग़ा साहब का अपने समय में क्या जलवा था । चरखारी स्टेट के राजा ने उनसे एक नाटक[२] लिखवाने के पचास हजार रुपये दिये थे और छः महीनों तक अपने महल में रखा था । छः महीने बाद जब वह नाटक तैयार हो गया, तभी उन्हें जाने की आज्ञा मिली थी ।

नाट्य-जगत् की धुरी–'हश्र'

उस जमाने के स्टेज सितारे कितने ही लोकप्रिय रहे हों, लेकिन हिन्दुस्तानी रंगमंच का चाँद तो एक ही था, जिसके इर्द-गिर्द समूचा नाटक-जगत् घूमता था और वह था–आग़ा 'हश्र', काश्मीरी । आग़ा 'हश्र' के बल पर अधिकांश थियेटर कम्पनियाँ जिन्दा थीं । उनके लिखे ज्वलन्त ड्रामे ही समकालीन रंगमंच की जान थे । कोई तो कारण होगा, जो कि लोग उन्हें एक अलग तर्ज का नाटककार समझते थे । सच तो यह है कि 'हश्र' अपने युग के नाटक के बादशाह थे । उनके राजसी मिज़ाज और आडम्बर के आगे लोग झुकते थे । किसी नाटकघर के बोर्ड या शामियाने पर आग़ा 'हश्र' का नाम अंकित होना उसके खचाखच भर जाने की गारन्टी के बराबर होता था । प्रायः हर सुबह नाटक कम्पनियों के संचालक और फाइनेन्सर आग़ा साहब के मकान की ड्योढ़ी में सौ-सौ रुपये के नोटों की गड्डियाँ हाथों में थाम कर बैठ जाते थे और इन्तज़ार करते थे कि कब वे सो कर उठें और उनको अपने किसी

२. सीता बनवास ।–सम्पादक

नये नाटक के अभिनय के अधिकार बेचने के लिये आमादा हो जायें । दस बजे के पीछे आगा साहब शयनागार से बाहर आते और उन्हें डाँट-डपट कर घर से निकाल देते । दूसरे दिन फिर वही लोग आ पहुँचते-वही आशा और अभिलाषा लिये, वही नोटों की गड्डियाँ लिये । ऐसा था आगा 'हश्र' का रोब अपनी बुलन्दी के दिनों में । यह थी उनकी रचनाओं की माँग । यह थी बाज़ार में उनकी प्रतिष्ठा । और फिर उनके खरीदार जाते भी कहाँ—आगा 'हश्र' तो एक ही थे अपने जमाने में ।

'हश्र' का उत्तर जीवन

शराब की अधिकता और बचा कर न रखने के उसूल ने उनके अन्तिम दिन कठिनाई में डाल दिये । अपने रईसाना ठाठ-बाट और फिज़ूल खर्च के कारण न अपने लिये कुछ बचा सके और न अपनी पत्नी मुख्तार बेगम के लिये । उम्र बढ़ी तो सब कुछ घट गया, बीमारियाँ बढ़ गयीं ।

यह सन् १९३०-३१ की बात है । देखने वालों ने बताया, शरीर बुढ़ापे और बीमारी से जीर्ण हो चुका था । कन्धे झुकाकर चलते थे । रफ्तार में फुरती नहीं रह गयी थी । उनकी आँखों के नीचे काली गहरी झुर्रियाँ पड़ गयी थीं । वैसे तो वह एक आँख से ही देख सकते थे । जन्म या बचपन से उनकी दूसरी आँख में फुल्ली पड़ गयी थी, जिससे उनका चेहरा कुछ विकृत हो गया था । जिस्म कमजोर हो जाने के कारण चलने-फिरने में भी कठिनाई महसूस करते थे । जिस नाटक की शैली को उन्होंने जन्म दिया था और जिसके बलबूते पर वह अपना नवाबी ठाठ-बाट कायम रख सके थे, वह अब मर चुका था । उनकी अपनी निजी तीसरी थियेट्रिकल कम्पनी बन्द हो चुकी थी और वह मुद्दत से कोई नया खेल लिख नहीं पाये थे । वे मारवाड़ी सेठिये, जो रुपयों से भरी थैलियाँ लिये उनके पीछे भागते थे, अब नजदीक आना तो दरकिनार, दूर तक नजर नहीं आते थे ।

दर असल आगा 'हश्र' का जमाना उनके निधन के कई साल पूर्व हीं लद चुका था । यह और बात है कि इस दुखद सच्चाई का एहसास उन्हें आखिर तक नहीं हुआ ।

नाटक से फिल्म-क्षेत्र में: 'भीष्म प्रतिज्ञा' की शूटिंग

यह घटना सन् १९३२-३३ की है । रंगमंच से निराश होकर और अपने नाटक **यहूदी की लड़की** के सफल फिल्मीकरण को देखकर आगा 'हश्र' में फिल्म-साजी में अपना नसीब आजमाना चाहा और लाहौर में सन् १९३३ ई० में **हश्र फिल्म कम्पनी** खोल लीं और अपने ही एक पुराने नाटक **भीष्म-प्रतिज्ञा** पर फिल्म बनाने का निश्चय किया । **भीष्म-प्रतिज्ञा** की पहली शूटिंग लाहौर के जेल रोड पर स्थित एक विशाल बंगले के प्रांगण में, जहाँ आगा साहब का दफ्तर और निवास-

स्थान भी था, होनी थी । एक हज़ार के करीब मेहमान उपस्थित थे, जिनमें सरकारी अधिकारी, जज आदि भी थे । शूटिंग का प्रबन्ध ठीक ढंग से किया गया था । कैमरा अपने स्थान पर सजा था और जब आग़ा साहब ने आगे बढ़कर श्रीगणेश का आदेश दिया, तो तालियों की गड़गड़ाहट से उनका अभिवादन हुआ । लेकिन जब 'क्लैप' देने का समय आया, तो एक रमता बादल सूरज के सामने आ गया । आउटडोर शूटिंग के लिये धूप का होना अनिवार्य है । छोटे से छोटा बादल भी काम के रास्ते में रोड़ा बन जाता है । ऐसा ही अब हुआ । कार्यवाही रुक गयी और बादल के गुज़रने का इन्तज़ार होने लगा । दस मिनट बाद फिर धूप निकली और गतिविधि दोबारा शुरू हुई । कैमरे का फोकस फिर सेट किया गया । प्रकाश-व्यवस्था फिर से सँभाली गयीं । ऐन आख़िरी सेकेण्ड पर एक दूसरा आवारा बादल आ पहुँचा और पहले से भी अधिक घना । अब की बार काम आधे घण्टे से भी ऊपर तक रुका रहा । ख़ुदा-ख़ुदा करके सूरज देवता ने फिर दर्शन दिये और लोगों ने राहत और मुक्ति की साँस ली । फिर पुरानी हरकतें दोहराई गयीं और शूटिंग शुरू हुई । लेकिन पहले शाट के साथ ही फिर आसमान पर बादल घिरने लगे और हल्की-हल्की फुहार भी पड़ने लगी ।

अब देखने वालों ने वह दृश्य देखा, जिसकी किसी ने कल्पना तक न की होगी और उस जैसा रोचक दृश्य शायद पूरी पटकथा में न होगा । जब देखा कि काम में बाधा पड़ गयी है, तो आग़ा 'हश्र' कुर्सी पर से उठे, जहाँ कैमरा रखा था, वहाँ पहुँचे और पैर से अपना जूता निकाल कर जोर से ज़मीन पर मारने लगे और उससे भी ज्यादा जोर से चिल्ला कर कहने लगे—'यहाँ किसी इख़लामबाज की कब्र है, यहाँ किसी– – –।' दर्शक एक दम दंग रह गये, अपनी आँखों और कानों पर विश्वास करना कठिन हो गया । उनके सहकारी दौड़ कर आगे बढ़े और वयोवृद्ध नाटककार को सँभालने का प्रयत्न करने लगे । लेकिन आग़ा साहब थे कि सम्भाले नहीं सँभलते थे । उनके मुँह से गन्दी-गन्दी गालियों की धारा बह निकली । वह लोग जो आग़ा 'हश्र' को करीब से जानते थे, उनको तो इस नाख़ुशगवार मुज़ाहिरे पर कोई हैरानी नहीं हुई । आसानी से गाली–गलौज पर उतर आना, आपे से बाहर हो जाना आग़ा 'हश्र' की पुरानी आदत थी । उनके सगे-सम्बन्धी तथा दोस्त-अहबाब अक्सर ऐसे प्रसंगों को दरगुजर कर दिया करते थे ।

किसी प्रकार मुहूर्त सम्पन्न हुआ और सब मेहमान चाय-पानी में लग गये । चाय-पानी के बाद जब सब चले गये, तो आग़ा साहब पत्रकारों की ओर मुख़ातिब हुये । कुछ पत्रकार चूँकि उनके मित्र थे, इसलिये उनसे व्यापारिक कम, घरेलू और

आपसी बातें अधिक होती थीं । उपस्थित पत्रकार उनके संस्मरणों और चुटकुलों पर लोट-पोट होने लगे ।

बीमारी और निधन

भीष्म–प्रतिज्ञा के निर्माण के दौरान उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और वह उठने–बैठने से लाचार हो गये । एक पत्रकार जब उनसे मिलने गया, तो वे पलंग पर लेटे हुये थे । उनकी अनन्यतम प्रेमिका मुख्तार बेगम उनके पास बैठी थीं और बार-बार उठ कर उनकी तीमारदारी कर रही थीं । पत्रकार ने आगा साहब से उनकी सेहत के बारे में जानना चाहा, तो उन्होंने उसका हाथ माँगा । पहले तो पत्रकार झिझका, मगर जब उन्होंने दोबारा आग्रह किया, तो मजबूर होकर उनके हाथ में अपना हाथ दे दिया । उन्होंने दूसरे हाथ से अपना पेट नंगा करके पत्रकार का हाथ उस पर दे मारा और कहने लगे–'देखो, कितना सख्त हो गया है' और सचमुच उनका पेट लकड़ी के तख्ते की तरह कड़ा हो रहा था । फिर कहने लगे—'मैं मर रहा हूँ । मेरा दौर गुजर चुका है । मेरी दुनिया पीछे रह गयी है, अब मैं जी कर भी क्या करूँगा ।' यह कहते-कहते उनकी आँखें सजल हो गयीं । मुख्तार बेगम की ओर देख कर कहने लगे-'मुझे तो बस इसका दुःख खा रहा है । मेरे लिये इसने सब कुछ खो दिया और मैं इसका साथ न दे सका ।' इतना सुनकर मुख्तार बेगम भी रोने लगी ।

और इस हादसे के कुछ ही दिनों बाद २८ अप्रैल, १९३४ ई० को ५५ वर्ष की आयु[3] में लाहौर में ही अपनी पत्नी मुख्तार बेगम और अपने रिश्ते-नातेदारों को रोता छोड़ कर हमेशा-हमेशा के लिये उस दुनिया को चल दिये, जहाँ से कभी कोई नहीं लौटा । उनकी मृत्यु के साथ ही हिन्दुस्तानी नाटक का एक ऐतिहासिक अध्याय समाप्त हो गया ।

मुख्तार बेगम आज भी जिन्दा हैं और लाहौर में अपनी जिन्दगी के बाकी दिन गुजार रही हैं । कल्पना करने से ही यह महसूस होता है कि जब वह 'हश्र' के जादू-भरे कलाम और नवाबी शख्सियत को याद करती होंगी, अपनी जवानी और अमृतसर को याद करती होंगी, तो क्या अजब, रो देती हों । हाय, एक वह भी ज़माना था, जब बड़े-बड़े मारवाड़ी सेठ नोटों की गड्डियाँ लिये दरवाजे पर खड़े रहते थे–सिर्फ एक 'हाँ' के लिये और आज……? यह तो अब वही जाने ।

आगा 'हश्र' की मौत के बारे में एक चुटकुला आगा साहब के जीवन में ही प्रचलित था, जिसको वह खुद भी सुनाया करते थे । कहते हैं, कयामत के दिन आगा 'हश्र' का खुदा के दरबार में बड़ा आदर-सम्मान हुआ । उनके लिये 'कौसर' के करीब(जन्नत में एक नहर है, जिसमें अमृत बहता है, उसे कौसर कहते हैं)एक बंगला

३. 'हश्र' की मृत्यु ५६ वर्ष की आयु में २८ अप्रैल, १९३५ को हुई थी । –संपादक

एलाट कर दिया गया। कुछ दिनों बाद अल्लाह ताला ने उनके पास फरिश्ते भेजे। फरिश्तों ने देखा–आग़ा साहब बहुत ग़मगीन बैठे हैं। हैरान होकर फरिश्तों ने पूछा कि जब कौसर मय से भरा है, तो उदासी के क्या मायने ? जवाब में आग़ा 'हश्र' ने कहा कि अल्लाह तक हमारा यह पैग़ाम पहुँचा दो—

या रब, तेरे कौसर में न वह तलखी है न वह मस्ती।
हमको जो पिलानी है, तो दुनिया से मँगा कर दे॥

यह सच है कि आग़ा 'हश्र' हिन्दुस्तानी थियेटर के एक दौर के खास अंदाज को हां नहीं, उसकी रंगीनी को भी अपने साथ ले गये।

———

फ़िदा हुसैन 'नरसी'

बाबा आग़ा 'हश्र' : बहुमुखी व्यक्तित्व

[आग़ा 'हश्र' के समसामयिक कलाकार एवं निर्देशक मा० फ़िदा हुसैन उर्फ प्रेमशंकर 'नरसी' ने आग़ा 'हश्र' साहब के बहुमुखी व्यक्तित्व के शब्द-चित्र उरेहे हैं–वे चित्र, जो कई दशकों के अन्तराल के बाद आज भी उनके मानस–पटल पर स्मृति-चित्र बनकर शेष थे। एक इन्सान, एक देशभक्त, एक सच्चे लेखक, गीतकार एवं पट-संवादकार सभी कुछ तो थे आग़ा 'हश्र'। कलाकारों, निर्देशकों तथा कंपनी मालिकों के बाबा! सबके बाबा!! –सम्पादक]

आग़ा 'हश्र' के विषय में काफी लोग लिख चुके हैं। मैं कुछ हालात जो मेरे सामने के हैं, लिख रहा हूँ। आग़ा साहब लेखक होने के साथ बहुत महान, मानवता के पुजारी एवं राष्ट्रीयता के रंग में सिर से पाँव तक रंगे हुए थे।

खुद चटाई पर सो गये

एक दफा रात को काफी देर गये दोस्तों की पार्टी से वापस आये, मस्ती में थे। घर पर खुशीराम (जालन्धर-निवासी) ने, जो जीवन के अन्त तक आग़ा साहब के सच्चे हितैषी और संरक्षक रहे, आग़ा साहब की जेब में से रुपये वगैरह संभालने के बाद खाने के लिए पूछा, क्योंकि सदैव आग़ा साहब के खाने की हर चीज को पहले खुद खा कर देखते थे, ताकि कोई चीज़ कोई खाने में न दे दे। आग़ा साहब के उन्नति के शिखर पर पहुँच जाने के कारण उनके काफी दुश्मन भी हो गये थे। आग़ा साहब खाने को मना करके सोने के लिए चल दिए। कमरे में बिस्तर पर एक और आदमी को सोया हुआ देखकर लौट आये और बाबर्चीखाने में पड़ी एक चटाई पर चौका सिरहाने रख कर सो गये। सुबह जब आँख खुली और खुशीराम ने देखा, तो चौके के चूल्हे की कालिख लग गयी थी और नशा बिलकुल उतर चुका था। बाबर्ची रहीम[1] जो बरसों से खाना पकाता था, न मालूम उसके दिल में क्या आयी, पलंग पर कमर सीधी करने को लेट गया। नींद आयी और सो गया। बेचारा डर के मारे दिन भर सामने नहीं आया। खुशीराम दूसरे रोज़ उसे सामने लाये। आग़ा

---

१. एक अन्य लेख में 'नरसी' जी ने बावर्ची का नाम हमीद बताया है। —सम्पादक

साहब ने हँस कर कहा—'नींद बड़ी प्यारी होती है । कोई बात नहीं, नींद से नहीं जगाया उसे ।' यह थी इन्सानियत !

राष्ट्रीय गीत लिखकर रो पड़े

भारतीय बालक ड्रामे की रिहर्सल चल रही थी । कलकत्ता के पाँच नम्बर, धर्मतल्ला स्ट्रीट-स्थित कोरन्थियन (मैडन) के म्यूजिक रूम में गाने के लिए बोल लिखे जा रहे थे । उस ज़माने में आग़ा साहब पूरे खद्दरधारी थे । भारतीय बालक का, प्रार्थना के बाद का, दूसरा गाना था, जिसे सेवा समिति के वालंटियरों—सोना-रूपा को गाना था :—

घर्म देश है, कर्म देश है, देश को भूल न जाना ।
भारत की सन्तान अगर हो, भारत के काम आना ।।
भारत ही वह डाली है, जिस डाली में तुम फूले ।
कली से जिसने फूल किया, उस भारत को क्यों भूले ।।

इतना लिखा था कि चीख भरकर रोने लगे और सब म्यूजीशियनों को कमरे से बाहर जाने को इशारा किया और आधे घण्टे तक कमरा बन्द करके रोते रहे । यह थी राष्ट्रीय भावना !

'हश्र' की औलाद का सर काट दो

सन् १९३२ में ईस्ट इन्डिया कम्पनी में आग़ा साहब की कहानी 'औरत का प्यार' की फिल्म बन रही थी, क्योंकि 'शीरीं फरहाद' और 'लैला मजनूँ' फिल्म के बाद आग़ा साहब मैडन कम्पनी छोड़कर ईस्ट इण्डिया कम्पनी में चले गये थे । कलकत्ते का मारवाड़ी-समाज, जो धन-कुबेर कहलाता है, आग़ा साहब के चरणों मे बैठकर उनको देवता की तरह पूजता था । ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मालिक मोतीलाल चम-ड़िया भी उनमें से एक थे । 'औरत का प्यार' का डाइरेक्शन कारदार जी, जो आग़ा साहब के शागिर्द भी थे, कर रहे थे । मुख्तार बेगम, जो आग़ा साहब की नूरेनज़र तथा माशूका थीं, हीरोइन थीं । 'डाइलाग' कुछ लम्बे होने के कारण काटने की आवश्यकता थी । कारदार साहब की हिम्मत नहीं हुई । उन्होंने मोतीलाल सेठ से कहा । मेरे सामने आग़ा साहब कुर्सी पर बैठे थे । मोतीलाल सेठ नीचे पैरों में बैठे थे । पैर छूते हुए बोले—'बाबा, डाइलाग लम्बे हैं, ज़रा कम होंगे ।' यह सुनते हुए चौंक कर गुस्से में गाली निकालते हुए, वही गाली जिसको सुनने के लिए बड़े-बड़े डाइ-रेक्टर देवकी बाबू, गंगोली साहब, मलिक, पी० एन० सरकार जैसे लोग बेकरार रहते थे, बोले—'जो तुम्हारे दिल मे आये करो । 'हश्र' की औलाद के सर काट दो, तुम्हारे हाथ में है ।' यह था 'हश्र' का अपनी लेखनी से प्यार ! सभी लोग आग़ा साहब को 'बाबा' के नाम से संबोधित किया करते थे ।

जब कम्पनी हैदराबाद गई, तो निज़ाम हैदराबाद के अलावा उनके वज़ीर हिज़ हाइनेस महाराजा सर किशन प्रसाद जी भी, जो उर्दू के अलावा फारसी के भी बहुत बड़े शायर थे, आग़ा साहब के ड्रामों और डाइलाग के शैदायी बन गये। सर मिर्ज़ा इस्माइल बेग, जो उस वक्त जयपुर के वज़ीर थे, और इलाहाबाद के सर चिन्तामणि जैसे विद्वान भी आग़ा साहब के सिवा किसी दूसरे का ड्रामा नहीं देखते थे।

'सीता वनवास' के लेखन पर व्यय

एक दफ़ा महाराज चरखारी ने अपने हाथ में फिफ्टी फाइव सिगरेट का टिन खोल कर गेस्ट हाउस के दरवाजे पर जाकर दस्तक दी। इत्तेफाक से किवाड़, जो बाहर को खुलता था, धड़ से महाराज के सिर पर लगा, लेकिन महाराज ने उफ़ तक न की और जाहिर भी नहीं होने दिया। आग़ा साहब को जिन्दगी भर तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' से बेहद लगाव रहा, यहाँ तक कि उससे ऊपर किसी भी किताब को तरजीह नहीं देते थे। उस ज़माने में महाराज ने सीता वनवास ड्रामे के नकद तीस हजार रुपये दिये और छः महीने में बीस हजार रुपये उन पर खर्च किये, जिसमें पेरिस की स्काच भी शामिल थी। यह थी लेखक की कद्र!

'चंडीदास' तथा 'यहूदी की लड़की' के संवाद

न्यू थियेटर्स के चन्डीदास तथा देवदास के डाइलाग आग़ा साहब के ही लिखे हुए थे और यहूदी की लड़की की कहानी भी इन्हीं की थी। सन् १९३२-३३ में, जब कि दो सौ से पाँच सौ रुपये तक की रकम एक बड़ी रकम गिनी जाती थी, उस काल में भी आग़ा साहब ने पाँच-पाँच हजार केवल डाइलाग लिखने के और यहूदी की लड़की के तो पन्द्रह हजार रुपये लिये थे। यहूदी की लड़की में सहगल तथा रतनबाई ने क्रमशः नायक-नायिका की तथा नवाब काश्मीरी ने यहूदी की भूमिका की थी, जो न्यू अल्फ्रेड में हमारे साथी थे। बहुत ऊँचे और अच्छे कला-कार थे। उन्होंने यहूदी के पाठ (पार्ट) के लिए अपने दाँतों की बत्तीसी निकलवा दी थी। यहूदी तथा बिल्वमंगल की भूमिकाओं के लिए आग़ा 'हश्र' के अनुज आग़ा महमूद प्रसिद्ध रहे हैं। नवाब काश्मीरी ने उन्हीं की नकल फिल्म में की, जिसका जवाब नहीं। न्यू थियेटर्स के मालिक थे—पी० एन० सरकार। यहूदी की लड़की फिल्म जब कलकत्ते में न्यू सिनेमा में रिलीज हुई, तो उससे पहले पंजाब में चल चुकी थी। दो एक सीन पर लाहौर के एक अखबार ने एक एतराज लिख दिया यानी तनकीद की। मैं, खुशीराम और 'चोंच' अखबार के एडिटर इनायत 'चोंच', जो आग़ा साहब के शागिर्द थे, आग़ा साहब के साथ बाक्स मे बैठे हुए फिल्म देख रहे थे। जब वह सीन आया, जिस पर तनकीद की गई थी, तो हम लोगों से मुड़कर आग़ा साहब ने कहा—'इसी सीन पर उसने तनकीद की है।' बात आई—गई हो

गयी। काफी देर के बाद अचानक जोश में बोले–'अब मैं तब से ड्रामा लिखता हूँ, जब से उसके बाप का नुत्फा अल्लाह मियाँ के घर से नहीं चला था।' खैर, आग़ा साहब की ऐसी अनेक बातों का लोग मज़ा लेते थे।

रामायण और लुगद के निचोड़

आग़ा साहब के बहुत सारे ड्रामे मुझे याद हैं, लेकिन **सीता बनवास** जब भी किसी को पढ़कर सुनाने लगता हूँ, तो हिचकी बँध जाती है, आँसू नहीं रुकते। **सीता बनवास** तुलसी-रामायण का निचोड़ है और उर्दू में **रुस्तम सोहराब** लुगद का निचोड़ है। आज भी लाहौर विश्वविद्यालय में बी० ए० के कोर्स में **रुस्तम सोहराब** के चार सीन पढ़ाये जाते हैं।

भाशमे

'हश्र' स्मृतियों के झरोखों से

[नेकदिल और पुरमज़ाक आगा 'हश्र' के घरेलू जीवन के कुछ प्रसंग रोचक तो हैं ही, शिक्षाप्रद भी हैं। उनकी अपनी कुछ कमजोरियाँ भी थीं—और एक सबसे बड़ी कमजोरी थी—शराब, परन्तु इस शराब ने उनके अन्तःकरण के प्रकाश और न्याय-बुद्धि पर कभी परदा नहीं पड़ने दिया। तो पढ़िये कुछ ऐसे ही रस-भीने प्रसंग भाशमे के लेख 'हश्र' स्मृतियों के झरोखों से' में। —सम्पादक]

मौत के दरवाजे पर दुनिया की दोस्ती और दुश्मनी खत्म हो जाती है। आप 'हश्र' को पसन्द करें या नापसन्द, आज वे हमारे बीच नहीं हैं, बस उनके कुछ नाटक हैं, कलाम हैं (और क्या खूब कि बाजार में वे भी नहीं मिलते और हैं ढेर-सी याद-गारें, जो विस्मृति के गर्त से निकलकर यदा-कदा बिजली-सी कौंध जाती हैं। ऐसे तो बहुत से किस्से हैं 'हश्र' के रंगमंचीय जीवन के, जो कलकत्ता, बम्बई, लाहौर, हैदराबाद में बिखरे पड़े हैं। हम तो कुछ घरेलू, कुछ निजी यादगारें लाये हैं, जो उनके व्यक्तित्व पर बहुत पास से रोशनी डालती हैं।

सैर अर्थात् नाटक की तिथि

'हश्र' का पहला नाटक आफताबे मोहब्बत था। पुरानी अदालत के मौलवी सफ़ुद्दीन अशरफ 'अर्श' बनारसी ने इस नाटक की बाबत लिखा है—

'अर्श' देखो गुले मजमूं की बहार, दाद दी 'हश्र' ने तहरीर की आज।
बुलबुले नब-आ ने तारीख कही, सैर की गुलशने कश्मीर को आज॥

चमत्कार यह है कि 'सैर की गुलशने कश्मीर की आज' के अक्षरों की गिनती करें (उर्दू लिपि में), तो नाटक लिखने की तारीख निकल आती है अर्थात् हिजरी सन् १३०८ (ईस्वी सन् १८९७)।

हुक्के का खेल

आगा 'हश्र' बचपन से ही मेधावी थे। दिल्लगीबाज की अच्छी खबर लेते थे। उन दिनों अभी सिगरेट का चलन नहीं हुआ था। धूम्रपानप्रिय लोग छोटे-छोटे हुक्के

लेकर चलते थे। यह देखकर कुछ हुक्का पिलाने वाले 'साकी' भी पैदा हो गये, धेले-पैसे लेकर ये लोग तलबगार को हुक्का पिला देते थे। बड़े उद्यमी होते थे ये साकी ! आप मकान की छत पर यानी तीन मंजिल ऊपर बैठे हैं, तो ये लोग नय से नय जोड़कर हुक्के की सटक आपके मुँह तक पहुँचा ही देते थे। कमाल था न ! पर समाज में इनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं थी। किसी को साकी' कहना या बना देना अच्छा खासा उपहास माना जाता, जैसे किसी को 'हज्जाम' कह देना।

अब उन्हीं दिनों बनारस में काश्मीरी खानदान के एक ख्वाजा नब्बू साहब थे (जिनकी तुरबत अभी भी निकलनी है) और इनके साहबजादे थे अब्बू साहब। ये आग़ा साहब के हमउम्र दोस्त थे। एक बार ऐसा हुआ कि अब्बू साहब लगे मज़ाक करने। 'हश्र' ने मना किया, पर कहाँ सुनते हैं। तब 'हश्र' ने मना किया—'देखिये अब्बू साहब, अब मज़ाक न कीजिये, वरना मैं आपके बाप से मजाक करूँगा।' पर अब्बू साहब तो हवा पर सवार थे।

ख्वाजा नब्बू साहब बाजार में अपना हुक्का लेकर चलते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि ख्वाजा साहब कहीं जा रहे थे कि 'हश्र' आये, अदब से तस्लीम की, उनके हाथ से हुक्का ले लिया, दो कश खींचे और हुक्के को लौटाते हुए एक टका भी थमा दिया और चलते बने। नब्बू साहब भौंचक्के रह गये। उसके बाद तो उन्होंने हुक्का लेकर चलना ही छोड़ दिया।

कोट में नोट

आग़ा 'हश्र' ने शराबखोरी के खिलाफ अपने नाटकों में खूब लिखा है, क्योंकि वे उसकी सभी बुराइयों से परिचित थे, अनुभवी थे। शराब लत की तरह उनके साथ लग गयी थी (और उनकी दिली ख्वाहिश थी कि यह बुरी लत किसी और को न लगे)। खैर, हालत यह थी कि चार पैसे भी मिलते, तो उसकी शराब पी जाते। शुरू के दिनों की बात है, वे बम्बई में मुंशी थे। उन्हीं दिनों उनकी मैत्री एक यूरेशियन महिला मिस मेरी अलबर्ज़ से हो गयी। मेरी की माँ 'हश्र' को बहुत मानती थीं, पर वे चाहती थीं कि युवक 'हश्र' लिखे-पढ़े और तरक्की करे, इसलिए बड़ी सख्ती से 'हश्र' को घर के पुस्तकालय में बैठाकर पढ़ने-लिखने को मजबूर करती थीं। 'हश्र' की शिक्षा का थोड़ा श्रेय इस महिला को भी है। यही नहीं, मेरी की माँ इन्हें शराब पीने से भी रोकती रहती थीं। वे जानती थीं कि यह शख्स पैसा हाथ में आते ही पी जाता है। एक बार 'हश्र' बम्बई से बनारस आ रहे थे, तो मेरी की माँ ने उन्हें एक कोट दिया और कहा कि इसे अपने वालिद को दे दीजिएगा। साथ ही एक बंद खत भी था, जिसे खोलने की मनाही थी। बनारस में जब खत खोला गया, तो लिखा था—'मैंने इस कोट की तह में कुछ नोट सी दिये है, मेहरबानी करके टाँके काटकर निकाल लें। अगर मैं 'हश्र' को ये नोट देती, तो यक़ीनन वह पी जाता।'

माँ का आशीर्वाद

'हश्र' दुनिया में सबसे ज्यादा अपनी माँ की इज्जत करते थे। उनकी माँ बहुत ही नेक, सीधी-सादी महिला थीं। किस कदर सीधी थीं, यह इस एक वाकये से समझा जा सकता है। एक बार हज़रत दारू की पूरी बोतल लिए चले आये और माँ से बोले—'अम्मा, इसे छिपाकर रख दो, अब्बा न देख पायें' और ममतामयी माँ ने बोतल गेहूँ के मठके में छिपाकर रख दी। यही कारण है कि 'हश्र' केवल माँ की दुआओं के तालिब थे। यही मातृ-आशीष उन्होंने सीता वनवास में लव-कुश के मुँह से माँगा है—'भैया, अब हमें कोई नहीं जीत सकता, क्योंकि हमारे पास माता का आशीर्वाद है।'

सन् १९३५ में जब वे लाहौर में बहुत बीमार थे, तो उन्हें और कोई भी फिक्र नहीं थी, सिर्फ माँ की याद सताती थी और अपने निजी सचिव लाला खुशी-राम से यही कहते थे—'खुशीराम, क्या मुझे माँ के पास नहीं ले चलेगा ?'

हीरोइन का रोल

'हश्र' नाटककार ही नहीं थे, अपनी नाटक कम्पनी भी चलाते थे और नाटक का मड़वा गाड़ने से लेकर छोटे-बड़े सभी काम खुद अपने से कर लेते थे। एक बार हीरो-हीरोइन नाराज हो गये और ठीक वक्त पर (नाटक आरम्भ होने के पूर्व) मैनेजर से बोले—'हम पार्ट नहीं करेंगे।' मैनेजर भागा आगा साहब के यहाँ गया। सुनकर आगा साहब आये और बोले—'ठीक है, आप लोग जायें, नाटक बन्द नहीं होगा, फलाँ साहब से बोले—हीरो का रोल करें, हीरोइन का रोल मैं खुद करूँगा।' यह सुनकर दोनों कलाकार सकते में आ गये, माफी माँगी और दौड़कर मेकअप रूम की ओर भागे।

रफूगर का बेटा

'हश्र' ने नाम और धन कमाया, तो भाई-बन्धु सभी रईस बन गये। 'हश्र' अपने छोटे भाई से बहुत स्नेह करते थे, पर उनकी रईसी आदतों से नाखुश होते थे। कहते थे—'ऐश करो, मगर पहले 'इल्म' हासिल करो, तरक्की करो।' तैश में आते तो कहते—'अरे, मुझे देखो, मेरा बाप रफूगर था—जाहिल था, पर मैं हश्र' हो गया।' और फिर अपने भांजे नैरंग से कहते—'अरे मियाँ, तुम्हारे तो बाप पढ़े-लिखे हैं, तुम्हारे मामू 'हश्र' हैं, फिर तुम तरक्की नहीं करोगे, तो कौन करेगा ? उठो, मेहनत करो, आगे बढ़ो।'

कांट्रैक्ट तोड़ने का नाटक

एक मजेदार घटना। आगा 'हश्र' ने एक सेठ से नाटक देने का कांट्रैक्ट किया था। नाटक तैयार न था और सेठ से कुछ खटक भी गयी थी। वकील से राय ली, तो यह तय हुआ कि वे सेठ के पास जायें, कुछ बदतमीजी से बात करें, सेठ को

इतना नाराज करें कि वह कह दे–'हमारा तुम्हारा कोई वास्ता नहीं, कांट्रैक्ट खत्म, जाओ।' बस, फिर तो दावा दाखिल हो जायेगा। आग़ा साहब के आगे-पीछे ऐसे ही लड़ाने वाले बहुत थे। खैर, तो आग़ा सेठ के यहाँ पहुँचे, धारा-प्रवाह अंड-बंड बोलने लगे। सेठ ने शान्तिपूर्वक सुना, फिर नौकर को बुलाया और कहा–'देखो, आग़ा साहब पी के बेहोश हो रहे हैं, इन्हें बाइज्जत मोटर से इनके घर तक छोड़ आओ।' यह सुनकर 'हश्र' पानी-पानी हो गये और गुस्सा भूलकर सेठ से सुलह कर ली।

दाढ़ी मुँड़ गयी

'हश्र' के दिल्लगी-पसन्द स्वभाव का एक मजेदार किस्सा सुनिये। एक दाढ़ी वाले बुजुर्ग थे मफ्तु साहब। अपने को 'हश्र' का शागिर्द बताते थे। कम्पनी से काफी रुपये तिड़ी कर चुके थे। कई बार चकमा दे चुके थे। कलकत्ता पधारे, तो आगा साहब से मिले। 'हश्र' बदस्तूर पुरानी बातें भूलकर प्रेम से मिले, साथ घुमाने ले गये। रात लौटे, तो सबने हैरानी से देखा–मफ्तु साहब की दाढ़ी गायब है। पूछा गया तो आग़ा साहब ने मासूमियत से बयान किया–'हम लोग बट साहब के यहाँ गये और उन्होंने शराब का प्याला बढ़ाया, तो ये हज़रत बिना संकोच के पी गये और रंग में आये तो बोले–चलो गाना सुनेंगे। तो भाई, नशा और तवायफों का कूचा और ये दाढ़ी! मैंने कहा–जनाब, हम तो चलते हैं, पर ये दाढ़ी कैसे चलेगी! सो भाई ने मुड़वा दी।' इस तरह 'हश्र' ने हज़रत का इलाज कर दिया।

जूते का तोहफा

'हश्र' के भाई आग़ा महमूद भी बहुत तेज थे। भाइयों में प्रेम-भरी नोक-झोंक चलती ही रहती थी। एक बार 'हश्र' ने नए जूते खरीदे, तो छोटे भाई ने कहा–'ये हमें दे दें', तो 'हश्र' ने फरमाया कि आप मुझसे ज्यादा शौकीन हैं। छोटे भाई बिदक गये, बोले—'ठीक है, आप रक्खें, मैं तो तभी लूँगा, जब आप खुद देंगे।' कुछ ही देर बाद महमूद साहब ने बड़े भाई को चिढ़ाना आरम्भ कर दिया, 'हश्र' धीरे-धीरे नाराज़ हो गये और सामने रखे जूते के जोड़े में से उठाकर एक फेंककर मारा। भाई ने जूता 'कैच' कर लिया और छेड़-छाड़ जारी रक्खी, तो 'हश्र' ने दूसरा जूता भी फेंका और उसे उठाकर आग़ा महमूद ने झुककर अदा से कहा—'आपके ये जूते मुझे स्वीकार हैं।' और तब 'हश्र' को माज़रा समझ में आया और वे ठहाका लगाकर हँस पड़े।

खानदानी बुजुर्ग

इन यादगारों में 'हश्र' के वालिद आग़ा ग़नीशाह की एकाध शानदार याद जोड़ दें, तो शायद तस्वीर पूरी हो जायगी। आग़ा गनीशाह खानदानी बुजुर्ग थे। वे चाहते थे–'हश्र' मौलवी बनें, पर वे बने नाटककार, मगर इसके बावजूद वे अपने वालिद की बहुत इज्ज़त करते थे। उनकी पुरानी वज़ादारी और खुद्दारी के

कायल थे।

सन् १९१३ की बात है। उन दिनों 'हश्र' की कंपनी लाहौर में थी। वालिद भी तशरीफ लाये थे। 'हश्र' ने उनसे कहा कि अब तो मैं काफी पैसे कमाने लगा हूँ, आप बनारस की दूकान बन्द कर दें और आराम फरमायें। ग़नी साहब बोले—'साहबजादे, तुम मुझे पैसे देते हो, यह तुम्हारी सआदतमंदी है। पर मैं दूकान बन्द कर दूँ और तुम न दो, तब ?' आग़ा 'हश्र' कायल हो गये। उनके अब्बा इतनी पुरानी रविश के थे कि उसूल से हटना नहीं चाहते थे।

एक वाकया और। 'हश्र' बनारस आये थे। उन्हें मछली बहुत पसंद थी। मुहल्ले में मछलीवाला आया, तो उसे बुलाया। वालिद साहब ने पसंद करके मछलियाँ खरीदीं और जब पैसे देने लगे तो बोले—'घेलुआ दो।' मछली वाला राजी नहीं था। 'हश्र' ने कहा—'ले भी लीजिये, घेलुआ से क्या बनेगा, पर गनी साहब बोले—'नहीं भाई, तुम आज हो, कल बंबई चले जाओगे, तुम्हारे लिए हम अपना तरीका क्यों खराब करें ?'

हमने चंद घरेलू किस्से बयान किये, जिससे 'हश्र' को पास से देखा और समझा जा सके। यादगारों के इन झरोखों से कभी देखें, तो उस खद्दरधारी नाटककार का पूरा युग झलक जाता है।

———

डॉ० विद्यावती ल० नम्र

भारतीय शेक्सपियर : कुछ संस्मरण

[कुछ फूल ऐसे होते हैं, जो कुछ पल महक कर मिट्टी में मिल जाते हैं, किन्तु कुछ फूल ऐसे भी होते हैं, जो महक कर हवा को, गुलशन को और अपनी धरती को भी महका देते हैं। ऐसा ही बहिश्त का एक फूल था—आग़ा 'हश्र', जिसने न केवल उर्दू-हिन्दी के नाट्य-साहित्य को, वरन् पारसी-हिन्दी रंगमंच को भी अपनी खुशबू से महका कर तरोताजा बना दिया। 'हश्र' की रचनाधर्मिता, आत्माभिमान, पत्नी-तथा-मातृ प्रेम के कुछ रोचक एवं सरस संस्मरण प्रस्तुत कर परम विदुषी डॉ० विद्यावती ल० नम्र ने एक अर्द्धशताब्दी बाद की नयी पीढ़ी के दिलो-दिमाग में उनकी याद ताजा कर दी है।—सम्पादक]

हिन्दी रंगमंच पर भारतीय शेक्सपियर आग़ा मुहम्मद शाह 'हश्र' का अपना विशेष स्थान रहा है। इस रिक्त स्थान की पूर्ति आज तक नहीं हो सकी। उनका यह शेर हमें याद आ रहा है :—

अय तबीबों, अब दवा मेरे लिये बेकार है।
'हश्र' मेरी जिन्दगी गिरती हुई दीवार है॥

'हश्र' साहब ने यह शेर अपनी अन्तिम घड़ियों में कहा था। फानी जिन्दगी के सत्य को सामने देखकर यह शेर 'हश्र' की जिन्दगी से ही सम्बन्धित नहीं, बल्कि संसार के हर प्राणिमात्र की जिन्दगी से सम्बन्धित है—एक विश्वव्यापी सत्य, जिसे स्वीकारे बिना छुटकारा नहीं, लेकिन संसार में कुछ हस्तियाँ ऐसी भी होती हैं, जो मर कर भी नहीं मरतीं–अमर हो जाती हैं, अपने पद-चिन्ह पीछे छोड़ जाती हैं। लोग उन्हें याद करते हैं और यह याद ही उन्हें अमरता प्रदान कर देती है। इसीलिए मेरे विचार से 'हश्र' की जिन्दगी एक गिरती हुई दीवार होकर भी अपना महत्त्व रखती है :

'नाट्य-रचना 'हश्र' की फूलों का सुन्दर हार है।'—नम्र

उन फूलों के हार की सुगन्ध को हम भुला नहीं सकते, जिसने हिन्दी के नाट्य-साहित्य को सँजोया है, उसकी अभिवृद्धि की है, रंगमंच पर 'स्वर्ण-युग' लाने

में अपूर्व योगदान दिया है। इसीलिए आज डॉ० अज्ञात की कर्त्तव्यपरायणता, श्रम एवं प्रेम से प्रेरणा पाकर हम 'हश्र' की जन्म-शताब्दी मनाने के लिए अपने श्रद्धा-सुमन उनकी याद में गूँथ रहे हैं, श्रद्धा से उनका स्मरण करके उनकी रंगमंच-सेवा और रंगमंचीय साहित्य को याद कर रहे हैं।

'आफ़ताबे मोहब्बत' की रचना क्यों ?

'हश्र' का नाट्य-रचना-काल सन् १८९७ ई० से १९३५ ई० तक अर्थात् ३८ वर्षों की काल-परिधि में बँधा हुआ है। उनका जन्म १ अप्रैल, १८७९[1] को और मृत्यु २८ अप्रैल, १९३५ को लाहौर में हुई। उन्होंने १८ वर्ष की आयु में नाट्य-रचना आरम्भ की थी। बचपन से ही नाटकों का शौक होने के कारण बनारस में वे तत्कालीन जुबिली थियेट्रिकल कम्पनी के विख्यात नाटककार मुन्शी सैयद मेंहदी हसन 'अहसन' से किसी तरह मिले, परन्तु 'हश्र' उनसे प्रभावित न हुये। दोनों में झड़प हो गई। फलतः 'हश्र' ने 'अहसन' साहब के विरुद्ध कई लेख प्रकाशित किये और इस इन्तकामी जज्बे ने 'हश्र' के प्रथम नाटक आफ़ताबे मोहब्बत को सन् १८९७ में जन्म दिया। इस प्रकार नाट्य-रचना उनके जीवन का उद्देश्य बन गई।

भारतीय शेक्सपियर की उपाधि

'हश्र' ने कई वर्षों तक खटाऊ अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी के मालिक कावसजी पालनजी खटाऊ के साथ काम किया। यहाँ शहीदेनाज अभिनीत हुआ। नाटक के मंचन की सफलता से प्रसन्न होकर जनता ने 'हश्र' को 'भारतीय शेक्सपियर' की पदवी से विभूषित किया। यह ऐसा अपूर्व सार्वजनिक सम्मान था, जो आज तक अन्य किसी नाटककार को नसीब नहीं हो सका है।

ट्राम और विक्टोरिया में टकराव

'हश्र' के खूबसूरत बला नाटक ने नाट्य-कला को एक नया मोड़ दिया। ग्रामीण जिन्दगी के विरुद्ध शहरी जिन्दगी ने नाटक में स्थान पाया। रंगमंच पर यथार्थवाद की झलक के रूप में आँख का नशा नाटक में ट्राम और घोड़ा गाड़ी (विक्टोरिया गाड़ी) भी चलती और टकराती दिखाई गई, जो सन् १९१६ में एक बड़ा प्रभावशाली प्रयोग और नाट्य-प्रदर्शन था।

'हश्र' को हिन्दी की ओर मोड़ने का श्रेय 'बेताब' को

'हश्र' से हिन्दी नाटक लिखवाने के मुख्य कारण पं० 'बेताब' जी रहे। सन् १९१२ में किसी ने 'बेताब' जी से 'हश्र' की चर्चा की, तो 'बेताब' जी ने कह दिया—'उर्दू आगा साहब की मातृभाषा है। वे अगर उर्दू में लिखते हैं, तो क्या कमाल करते हैं? अगर हिन्दी मे लिखें, तो हम भी दाद दें।' उस आदमी ने ये शब्द ज्यों के

---

१. जन्म की शुद्ध तिथि ४ अप्रैल, १८७९ है।—सम्पादक

त्यों 'हश्र' के पास पहुँचा दिये । स्वभाव से क्रोधी और भड़क होने के कारण फौरन गाली देकर बोले—'इस नन्हें बच्चे से कह देना कि अब हम भी हिन्दी ड्रामें लिखेंगे ।' बस इस घटना के बाद उन्होंने अपने अधिकांश नाटक हिन्दी में ही लिखे । 'हश्र' को हिन्दी की ओर मोड़ने का श्रेय 'बेताब' जी को ही है ।

दाद खुले हृदय से

'बेताब' जी ने अपनी आत्मकथा 'बेताब चरित्' में लिखा है—'हश्र' जितने उत्तम नाटककार थे, उससे अधिक साफदिल थे । अपने व्यवसाय-बन्धुओं से ईर्ष्या कभी नहीं की, बल्कि अन्य कवियों की कृति का मजा लेकर जैसी दाद ये देते थे, दूसरे नहीं देते । यों तो आम तौर पर गालियों का पुट लगाकर ही बात किया करते थे, मगर अमृत केशव नायक से खासतौर पर छूट चलती थी । इन्हें देखते ही अमृत नायक कहने लगे–'अबे, इधर आ, तुझे एक सीन सुनाऊँ ।' कथा यह थी कि बूढ़े पादरी की कुमारी लड़की को दुराचारी शाहजादे के शुबेंचट दलाल जबरदस्ती उठा लाये थे । पादरी उन्हें कोस-कोस कर कह रहा था :—

घड़ी नापाक और किस्मत गुलामों की लड़ी होगी ।
तुम्हारे जिस्म की बुनियाद छुप-छुप कर पड़ी होगी ।[२]

शेर सुनते ही आग़ा साहब ने मुझे गले लगा लिया और कहने लगे–'इससे बेहतर गाली का शरीफाना पहलू और क्या हो सकता है ।'

'हश्र' पारसी-हिन्दी मंच के दो नाटककारों में एक

तत्कालीन नाटककारों की चर्चा करते हुये 'बेताब' जी ने आत्मकथा में लिखा है–'भारतवर्ष में सैकड़ों नाटककार होंगे, मगर मेरी दृष्टि में वर्तमान स्टेज के काबिल नाटकनवीस केवल दो ही हुये हैं–आग़ा 'हश्र' काश्मीरी और जनाब हकीम सैयद मेंहदी हसन 'अहसन', लखनवी । उनका अन्दाज लोगों ने उड़ाया, मगर दोनों साहब अपने रंग के मालिक आप रहे ।'

नाटककारों की चर्चा करते हुए कथावाचक जी ने लिखा है—'बड़े नाटककारों में तो 'हश्र' और 'बेताब' जी ही थे, पर वे मुँहमांगी दक्षिणा लेकर भी शान के साथ काम करने वालों में थे ।'

जनाब शम्स कंवल ने 'कन्द ड्रामा नम्बर' (१९६१) के पृ० ४७ पर लिखा है—'सन् १८५४ से १९३५ तक 'बेताब' और 'हश्र' के सिवा कोई ड्रामानवीस ऐसा नहीं हुआ, जिसको मसक़न्द कहा जा सके या जिसकी पुख्तगी पर फख्र किया जा सके ।'

---

२. यह शेर 'बेताब' जी के अमृत नाटक का है ।–सम्पादक

आग़ा का व्यक्तित्व

आँख का नशा नाटक का मंचन देखकर पं० जनार्दन भट्ट 'हश्र' साहब से मिलने गये। उनके व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए पंडित जी ने लिखा है-'लुंगी बाँधे, नगे बदन एक मियाँ दिखलाई पड़े, जो गोरे और सुडौल थे। चेहरे की मस्ती, बदन की गठन और अंगों की फड़कन देखकर लगता था, जैसे कोई मस्त हाथी झूम रहा है। आँखों से ज्योति निकल रही थी–एक से कम दूसरी से ज्यादा। मैंने जाते ही पूछा–'क्या आप ही 'हश्र' काश्मीरी हैं', तो मुझे तकादगीर समझकर बड़ी रुखाई से उत्तर दिया, लेकिन मेरे आने का अभिप्राय जान कर जी खोलकर मिले और उर्दू मे लिखा एक नाटक सुनाने लगे।

'हश्र' कुछ खास सीन ही लिखते थे

स्व० पं० राधेश्याम जी कथावाचक का कथन है—'आग़ा 'हश्र' से मेरी कई मुलाकातें हुईं। बहुत ही मिलनसार दोस्त तबीयत के आदमी थे—बरेली में वे मेरे मेहमान भी रहे। कम्पनियाँ बनाकर भी वे उन्हें चला न सके। वे सभी विषयों पर लिखने की महत्त्वाकांक्षा रखते थे, ताकि भावी नाटककारों के लिए कोई विषय बाकी न रहे। वे बड़े खर्चीले थे, पैसा हाथ में रहता ही न था। एक दिन तो पान के लिए इकन्नी मुझसे माँग ली। 'फ्री' इतने थे कि एक दिन आकर बोले–'श्रवणकुमार' का एक सीन अपने नाटक हिन्दुस्तान में ले रहा हूँ। 'हश्र' ने पूरा नाटक कभी नहीं लिखा। कुछ खास सीन खुद लिखते थे और बाकी का उनके शिष्य। उनके वे मास्टरपीस सीन रंगमंच और लेखनी, दोनों दृष्टियों से लाजवाब होते थे। आलोचकों से उन्हें चिढ़ थी, क्योंकि वे न तो घटना से परिचित होते हैं और न रंगमंच की पूरी समझ उन्हें होती है। अंधाधुन्ध लिख मारते हैं।'

अर्थाभाव में भी स्वाभिमान

स्व० पं० सुदर्शन जी ने मुझे बताया था कि 'हश्र' बड़े सैद्धान्तिक एवं स्वाभिमानी व्यक्ति थे। अर्थाभाव के कारण जब वे कम्पनी न चला सके, तो उनके एक कर्मचारी ने कहा–'मैं आपकी खिदमत कर सकता हूँ।' 'हश्र' ने पूछा कि कैसे, तो उत्तर दिया—'मैं आपको रुपया उधार दे सकता हूँ या आप मुझे हिस्सेदार बना लें।' इतना सुनते ही उन्हें तैश आ गया और गाली देकर बोले-'जा, चला जा यहाँ से। आज तक हमने तुझे दिया, तू हमें क्या देगा? चला जा, 'मेरी गुस्से-भरी निगाहें भी तुझे देखना पसन्द नहीं करतीं।' उसके जाने के बाद 'हश्र' ने कमरा, कुर्सी सभी अच्छी तरह धुलवाए और बोले–'नापाक ने आकर सारा घर गंदा कर दिया।' यह घटना इस बात का प्रमाण है कि 'हश्र' के देने वाले हाथ को लेने वाला हाथ बनाकर अपने स्वाभिमान को गिराना कदापि पसन्द न था।

माँ के लिए चालीस हजार

आगे उन्होंने मुझे यह भी बताया कि 'हश्र' अपनी माता को बहुत प्यार करते

थे। उन्होंने उनके लिए बैंक में चालीस हजार रुपये जमा कर रखे थे। इस धन को उन्होंने अपनी परमावश्यकता या बीमारी के समय भी कभी हाथ नहीं लगाया। माता के सुख की कितनी उत्कट भावना और श्रद्धा थी उनमें!

मैं भी तेरे पास आऊँगा

'हश्र' का बिवाह बचपन में ही हो गया था और पत्नी भी उन्हें बहुत प्यारी थीं। विवाह के लगभग पाँच-छः वर्ष पश्चात् वे लाहौर में गुजर गईं। उन्हें दफनाते हुए उन्होंने कहा था–'नेकबख्त, मैं भी जल्द ही तेरे पास आऊँगा।' तब से जब कभी बीमार पड़ते, लाहौर पहुँच जाते। एक बार ऐसे ही बीमारी की हालत में लाहौर जाते समय ठण्ड लग जाने से सरसाम हो गया, बीमारी बढ़ गई और २८ अप्रैल, १९३५ ई० को बड़ी निर्धनावस्था में भारतीय शेक्सपियर का देहावसान हो गया।

नाटक लिखने की प्रेरणा नारी से

कहते हैं कि 'हश्र' को नाटक लिखने की प्रेरणा एक भारतीय नारी[१] से मिली। उसने इन्हें कई नाटकों के कथानक भी दिये। 'हश्र' जब कभी इस स्त्री की चर्चा करते, तो बड़े अहसानमन्दाना अन्दाज में करते। उन्होंने इसे कभी भुलाया नहीं, पर वे इसका नाम नहीं बताते थे।

लेखन अंगूर की बेटी के साथ

मैंने भी 'हश्र' साहब को अपने बचपन में दो बार देखा था—खादी के वस्त्रों में। 'बेताब' जी ने मुझे बताया कि 'हश्र' जब लिखते थे, तो कमरे में लाल पानी यानी अंगूर की बेटी हमेशा मौजूद रहती थी। उसके बिना उनका 'मूड' ही नहीं बनता था और न जोरदार लेखनी ही चलती थी। एक बार मैंने उन्हें 'बेताब' जी से यह भी कहते सुना—'अबे, तू न तो शराब पीता है और न कोठों पर ही जाता है, तो फिर ऐसे सीनों को लिखने में कमाल कैसे हासिल किया है? शाबाश!'

दोष सभी मार्ले के

इतिहास-लेखक रामबाबू सक्सेना ने उर्दू साहित्य के इतिहास में 'हश्र' के विषय में लिखा है: 'His defects are precisely those of Maurle-intensity rather than delicacy, deep colours and strong contrasts more than fine shades of the rule. This tells on refined and sensitive nerves particularly when the most horrible crimes are allowed by the author to be represented on the stage.'

'हश्र' और 'बेताब' के नाटक एक साथ कलकत्ते में

'हश्र' ने अपनी कम्पनियाँ भी बनाईं, परन्तु वे जब तक बम्बई में रहे,

---

१. बम्बईवासिनी एक यूरेशियन महिला थी वह।–सम्पादक।

खटाऊ के साथ काम किया। बनारस गये, तो दादा भाई ठूँठी के पास रहे। फिर सोहराबजी ओग्रा के साथ बँध गये। यहाँ से छोड़ा, तो अंत तक मादन के प्रेमपाश से न छूटे। मादन के यहाँ 'हश्र' के अधिकांश नाटकों का मंचन कॉरोनेशन थियेट्रिकल कम्पनी, धर्मतल्ला, कलकत्ता में होता था और हरीसन रोड, कलकत्ता में अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी 'बेताब' जी के नाटक अभिनीत करती थी। अनेक बार दोनों थियेटरों में एक साथ एक ही समय पर दोनों महान नाटककारों के नाटक मंचित होते थे।

'हश्र' के स्वर्गवासी होने पर 'बेताब' जी ने अपने बेताब हृदय के उद्गार व्यक्त करते हुए यह श्रद्धाञ्जलि अर्पित की थी, जो अपने प्रतिस्पर्धी के प्रति उनके विशाल हृदय की परिचायिका है :—

खून के आँसू (रुबाइयात)

अय 'हश्र' के तू रकीबे फन था मेरा,
आखिर मुझे तूने जीत कर ही छोड़ा।
लिखने में तो था ही तू मुझसे आगे,
मरने में भी 'बेताब' से पीछे न रहा ॥१॥

पुरमग्ज़ हुआ है काम तेरा अय 'हश्र',
ता हश्र रहेगा नाम तेरा अय 'हश्र'।
माना कि नहीं है जिस्म फानी बाकी,
जिन्दा है मगर कलाम तेरा अय 'हश्र' ॥२॥

बेवा-सी नज़र आई जो नाटक की फबन,
दर्यापत किया—कौन है तू महवे महन।
वो बोली—'उठता है जनाजा जिसका,
कहते हैं मुझे लोग उसी की दुलहन' ॥३॥

नाटक जो लिखा, मुल्क में मक़बूल हुआ,
फिकरा जो तराशा, वही माकूल हुआ।
था रंगे ज़बां भी इस कदर मानीखेज़,
स्टेज पै थूका भी तो इक फूल हुआ ॥४॥

जब 'हश्र' का अन्दाजे रकम देखते हैं,
बस दाब के दाँतों में कलम देखते हैं।
मुश्किल है बयाँ लुत्फ अये लुत्फे बयाँ,
बस जानते हैं हमीं जो हम देखते हैं ॥५॥

ख़ूँ दीदये बेताब से ताजा निकला,
ले अय रुखे नोहा तेरा गाज़ा निकला।
निकली नहीं इस माहरे-फन की मैयत,
यह तो बख़ुदा फन का जनाजा निकला ॥६॥

तजमीन

नाटक में एक, फ़िल्मनवीसी में फर्द था।
हक़ मग़फ़रत करे अजीब आज़ाद मर्द था ॥७॥[४]

'हश्र' के प्रति 'बेताब' जी के इस नोहा के बाद मैं कुछ लिखूँ, तो वह बेमानी होगा, इसलिये भारत के इस महान नाटककार तथा नाट्य-शिल्पी को हमारा शत-शत वन्दन !

आपकी याद में आज यादें सुनाती हूँ।
'हश्र' साहब ! हुजूर में सर झुकाती हूँ ॥ (नम्र)

---

४. मुसव्वर, उर्दू, साप्ताहिक, बम्बई, १२ मई, १९३५ ।

रामचन्द्र श्रीवास्तव

आग़ा 'हश्र' : भ्रांतियाँ ही भ्रांतियाँ

[सिने-तारिकाओं को गर्म चर्चा का विषय बनाकर लोकप्रिय बनाने की आधुनिक प्रचार-प्रक्रिया संभवतः आग़ा 'हश्र' के युग में भी प्रचलित रही होगी। संभवतः इसीलिए उनके चारों ओर—उनके व्यक्तित्व से लेकर कृतित्व तक भ्रांतियों की सुनहरी जाली फैला दी गई, जिसने एक ओर उनके प्रति आकर्षण पैदा किया, तो दूसरी ओर उनकी कृतियों को मंच पर असाधारण सफलता प्रदान की। इस सफलता का राज वस्तुतः उनके अपने चुम्बकीय व्यक्तित्व और उनकी क़लम के जादू में था, जो भ्रांतियों के आवरण को भेद कर अब उजागर हो उठा है।

इस आवरण के उठाने वाले दो विद्वानों—रामचन्द्र श्रीवास्तव तथा अब्दुल क़ुद्दूस 'नैरंग' के लेख क्रमशः 'आग़ा 'हश्र' : भ्रांतियाँ ही भ्रांतियाँ' तथा 'कुछ वैयक्तिक भ्रांतियों का निराकरण' विशेष रूप से पठनीय हैं। —संपादक]

सुर्ख सुफ़ेद वर्ण, हसीनो जमील, प्रसन्नचित्त, उन्नतललाट, फराखदिल, फराख-हौसला और खुशजौक़—वे थे आग़ा मुहम्मद शाह 'हश्र' काश्मीरी, जो सुप्रसिद्ध पत्र-कार मौलाना ज़फ़र अली खाँ के शब्दों में नाटकों की दुनिया में उस समय आये, जब कि अनेक लब्धप्रतिष्ठ विभूतियाँ इस क्षेत्र में आ चुकी थीं, परन्तु आग़ा 'हश्र' नाटकों में हश्र ही ढाते रहे। आग़ा 'हश्र' के नाटकों में आने तक उर्दू-नाटकों की परम्परा 'रहस' गीत—नाट्यों में दरियाये-तअश्शुक़, अफ़साना-ए-इश्क़ तथा बहारे उल्फ़त के मंच-रूपों से बढ़ कर इन्दरसभा के चरण से होती हुई 'आराम,' 'रौनक' बनारसी, हुसैन मियाँ 'ज़रीफ़', 'तालिब' बनारसी तथा 'अहसन' लखनवी की नाट्य-कृतियों तक पहुँच चुकी थी और पारसी मंच पूर्ववर्ती मंचों का स्थानापन्न हो चुका था।

आग़ा 'हश्र' ने हिन्दी—उर्दू में दो दर्जन से अधिक नाटक लिखे अथवा शेक्स-पियर तथा शेरिडन के नाटकों से अनुवादित-रूपांतरित किये। रूपांतरित नाटकों को भारतीय वातावरण में प्रस्तुत करके 'हश्र' ने अद्वितीय सफलता प्राप्त की। 'हश्र'

के नाटकों में 'रूमानियत, मिसालियत, हंगामाखेजी, इबारत-आराई' और शायरी का समावेश अतीव रूपों में हुआ है, जिससे इन नाटकों के प्रयोगों से उन्होंने अभूतपूर्व ख्याति अर्जित की और वे नाटकों की दुनिया में अंततोगत्वा पौराणिक कथा–नायक (लीजेन्डरी हीरो) बन गये। उनके नाटक मंच-प्रधान रहे। उन्होंने कभी दर्शकों की अभिरुचि को ओझल नहीं होने दिया।

मंचीय आवश्यकताओं की प्रधानता के फलस्वरूप 'हश्र' नाटकों में कोई क्रांति तो न कर सके, परन्तु नाटकों में साहित्यिकता एवं मनोरंजन के पक्षों को उभारने में अनवरत प्रयत्नशील रहे। नाटकों में निरुद्देश्य मनोरंजन-प्रधान कथानकों से बचकर 'हश्र' ने पुरानी परंपराओं में रहकर भी नाटकों में सामाजिक समस्याओं एवं राष्ट्रीयता का समावेश करके, नाटकों को सोद्देश्यता की ओर अग्रसर किया और उनमें निखार पैदा किया। सच तो यह है कि 'हश्र' ने नाटकों की पुरानी एवं नयी परम्पराओं के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी बनकर एक नयी भूमिका का निर्वाह किया।

भ्रांतियों के मूल में 'हश्र'-नाटकों के सदोष संस्करण

'हश्र' की अद्वितीय ख्याति के बावजूद उनके नाटकों के दोष-मुक्त संस्करण उपलब्ध नहीं हैं। उनके नाटकों के प्रकाशित संस्करणों में अधिकांश ऐसे हैं, जिन्हें थियेटर वालों ने अपनी आवश्यकताओं के अन्तर्गत अपने पात्रों के लिए काट-छाँटकर प्रकाशित किया है। आगा के नाटकों के ऐसे संस्करण भी उपलब्ध हैं, जिन्हें प्रकाशकों ने 'हश्र' की देश-व्यापी ख्याति के परिप्रेक्ष्य में उपलब्ध सामग्री की छानबीनकिये बिना, धनोपार्जन के लिए प्रकाशित कर दिया। लाहौर के प्रकाशक संत सिंह द्वारा प्रकाशित आगा 'हश्र' के अधिकांश नाटक इसी प्रकार के हैं। इन प्रकाशनों के बारे में कहा गया है कि इनकी सामग्री आगा 'हश्र' के नाटकों के अभिनेताओं की याददास्त से ली गयी है, जिसे पाण्डुलिपि से प्रूफ रीडिंग तक संशोधित किया जाता रहा है। 'हश्र' के जीवन के अंतिम वर्षों में सैयद इम्त्याज अली 'ताज', प्रोफेसर अब्दुल लतीफ 'तपिश', इशरत रहमानी-जैसे महानुभावों ने इस स्थिति पर गम्भीर चिन्ता व्यक्त की। 'हश्र' के कद्रदानों के प्रयासों से सर्वप्रथम पंजाब विश्वविद्यालय ने स्नातकोत्तर पाठ्य-क्रम में 'हश्र' के नाटकों के अध्ययन को सम्मिलित किया। इससे 'हश्र' के नाटकों के मूल संस्करणों के उद्धार में पर्याप्त योगदान मिला है।

भ्रांतियाँ—व्यक्ति से लेकर कृति तक

नाटक-क्षेत्र में 'हश्र' के 'लीजेन्डरी' व्यक्तित्व तथा नाटकों के प्रचलित अशुद्ध संस्करणों को लेकर काफी भ्रांतियाँ फैली हैं। ये भ्रांतियाँ 'हश्र' के जीवन की घटनाओं से लेकर नाटकों की परख तक विस्तृत हैं। आगा के सम्बन्ध मे कुछ भ्रांतियाँ उनके प्रति असीम श्रद्धावश अभिव्यक्तियों के कारण तथा अन्य अतिआलो-

घनात्मक दृष्टिकोण के फलस्वरूप हैं। कुछ उन्हें भारतीय शेक्सपियर कहते हैं, तो कुछ उन्हें साधारण नाटककार मानते हैं, जिसका उद्देश्य दर्शकों को प्रसन्न करके नाटकों की सफलता में 'तालियाँ' प्राप्त करना है। कुछ उनके नाटकों के कथानकों को उद्देश्यहीन, नाटकों के कथा-विन्यास—'ट्रीटमेंट' को दुर्बल तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से अविकसित मानते हैं। कुछ आपत्तिकर्त्ता उन्हें नक्काल कहते हैं। भ्रांतियों में यहाँ तक कहा गया है कि शेक्सपियर के ड्रामों पर आधारित नाटक तथा हिन्दी नाटक उनकी कृतियाँ नहीं हैं। ये कृतियाँ अन्यों की हैं, जो उनके नाम से सम्बद्ध कर दी गई हैं।

जन्म-स्थान : भ्रांति का निवारण

श्री जागेश्वर नाथ 'बेताब' बरेलवी ने रिसाला 'आजकल' (दिल्ली) में सन् १९४५ में आग़ा 'हश्र' पर एक लेख प्रकाशित कराया था, जिसमें उन्होंने बड़े आत्म-विश्वास के साथ कहा था कि आग़ा 'हश्र' सरजमीने पंजाब में पैदा हुये, किन्तु पंजाब में आग़ा के जन्म-स्थान के किसी नगर एवं ग्राम-विशेष का नाम नहीं लिया, गोया आग़ा कोई गुमनाम विभूति थे, जिनके बारे में सही बात तय करना कठिन है। इस प्रकार के वक्तव्य देने में जनाब 'बेताब' बरेलवी अकेले नहीं हैं। आग़ा साहब के बारे में अन्यत्र कहा गया है कि उनका जन्म अमृतसर में हुआ और फिर वह अपने पिता के साथ बनारस आ गये। यह मत भी सही नहीं है। मगर इसका आधार लाला श्रीराम देहलवी का तजकिरा खुमखानये जावेद है। इस तजकिरे में आग़ा 'हश्र' का संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त दिया गया है तथा उनके जन्म-स्थान को अमृतसर बताया गया है।

ज्ञातव्य है कि आग़ा 'हश्र' का जन्म शुक्रवार ३ अप्रैल,१८७९[1] को वाराणसी में काश्मीरी शाल-व्यापारी आग़ा सैयद गनी शाह काश्मीरी के यहाँ हुआ, जो १८६८ में श्रीनगर से वाराणसी आ गये थे। इस सत्य के बावजूद उक्त भ्रांतियाँ विद्यमान हैं। इन भ्रांतियों का निवारण आवश्यक है, ताकि 'हश्र' का सही रूप उभर सके और उनकी कृतियों का उचित मूल्यांकन किया जा सके।

भाषा-ज्ञान और कथ्य में मौलिकता

'बेताब' बरेलवी ने अपने उक्त लेख में आगे चलकर कहा है कि आग़ा 'हश्र' अँग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ थे। वह किसी से शेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद करा कर अपने नाम से मंसूब (सम्बद्ध) कर देते थे। आग़ा हिन्दी बिल्कुल नहीं जानते थे। एक हिन्दू मुन्शी उनके ड्रामे लिखा करता था। 'बेताब' महोदय ने अपने कथन की

१—'हश्र' की जन्म तिथि ३ अप्रैल नहीं, ४ अप्रैल, १८७९ है और शुक्रवार भी ४ अप्रैल को ही था। —संपादक

पुष्टि में कोई प्रमाण देना उचित नहीं समझा ।

यह सही है कि 'हश्र' ने विधिवत् आंग्ल भाषा का अध्ययन नहीं किया, मगर लगातार अध्ययन से अभिप्राय जान लेने की क्षमता उन्होंने प्राप्त कर ली थी । 'हश्र' ने इसी समझदारी से काम लेकर शेक्सपियर के नाटकों के प्लाटों पर आधारित **मुरीदे शक, सैदे हवस, शहीदे नाज** आदि नाटक प्रस्तुत किये तथा इसी जानकारी के बल पर उन्होंने शेरिडन के **पिज़ारो** पर आधारित नाटक **असीरे हिर्स,** **सिल्वर किंग** के कथानक पर **सिल्वर किंग अथवा नेक परवीन** की रचनायें कीं । ये सभी कृतियाँ अनुवाद नहीं कही जा सकती हैं । सैयद बादशाह हुसैन, हैदराबादी ने अपनी कृति 'उर्दू में ड्रामा-निगारी' में कहा है कि आगा ने शेक्सपियर के कथानकों पर आधारित अपने नाटकों में मूल नाटकों की तुलना में काफी हेर-फेर किया है और दर्शकों को खुश करने में काफी काट-छाँट से काम लिया गया है । सैदे हवस में तो इन परिवर्तनों के साथ आगा ने शेक्सपियर के मूल नाटक **रिचर्ड तृतीय** के दुखांत अंत को सुखांत में बदल दिया । इसी प्रकार **सफेद खून** का अंत सुखांत बनाया गया, जबकि मूल नाटक का अन्त दुखांत है । **सिल्वर किंग** में आगा ने कथानक के महत्त्वपूर्ण अंश पर ही अपने नाटक को सीमित किया है । वार्तालाप बिल्कुल बदल दिया है ।इससे चरित्रों के चित्रण में काफी अन्तर आ गया है । इससे स्पष्ट है कि पाश्चात्य नाटकों के कथानकों (न कि अनुवाद) पर आधारित आगा के नाटकों के लिए भाषा की उनकी जानकारी अपर्याप्त नहीं थी । इन कृतियों को 'बेताब' महोदय द्वारा मान्य आगा की कृतियों से मिलाया जाये, तो भाषा और शैली में ऐसी असमानता नहीं मिलेगी, जिससे यह संदेह किया जा सके कि उन्हें स्वयं आगा ने न लिख किसी मुंशी से लिखाकर अपना लिया । आगा 'हश्र' के बारे में यह कहना कि वह हिन्दी से अनभिज्ञ थे, सही नहीं है । वह न केवल हिन्दी भाषा से परिचित थे, वरन् संस्कृत साहित्य, पुराण तथा हिन्दू धर्म से भी सुपरिचित थे । 'हश्र' ने शुद्धि एवं संघटन के विरोध में मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, ख्वाजा हसन निजामी आदि के साथ 'इस्लामी तबलीग एवं तनज़ीम' के आन्दोलन में सोत्साह भाग लिया था । 'हश्र' ने इस आन्दोलन में हिन्दी, हिन्दू एवं हिन्दू संस्कृति का गहन अध्ययन किया । इससे 'हश्र' के हिन्दी नाटकों की सुदृढ़ पृष्ठ-भूमि बन सकी । 'हश्र' ने इस पृष्ठभूमि पर पंडित नारायण प्रसाद 'बेताब' के हिन्दी नाटकों के उत्तर में जो नाटक हिन्दी में प्रस्तुत किये, उससे पंडित जी आश्चर्यचकित हो गये और उन्होंने 'हश्र' की भूरि-भूरि प्रशंसा की :—

जब 'हश्र' का अंदाजे रकम देखते हैं ।
बस दाब के दाँतों में कलम देखते हैं ।।

पंडित जी की प्रशंसा ही इस भ्रांति के निवारण में पर्याप्त है ।

'मुरीदे शक' की मंचन-तिथि

'यादगारे हश्र' में जमील अहमद ने '**मुरीदे शक**' के बारे में बयान किया है—

'इसका मंचन अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी द्वारा १८८८ में किया गया।' इस वक्तव्य पर विश्वास करना कठिन है, क्योंकि इंगित सन् तक 'हश्र' द्वारा न तो इस नाटक को लिखा गया था और न वे उस वक्त तक उपर्युक्त कम्पनी से सम्बद्ध ही हो पाये थे। अतः उसके मंचन की वास्तविकता अत्यन्त संदिग्ध हो जाती है।[२]

'हश्र' नक्काल या उपज के धनी

जमील अहमद साहब यादगारे हश्र में पुनः फरमाते हैं—'हश्र' एक नक्काल है,' किन्तु आगे चलकर स्वयं ही कहते हैं कि 'हश्र' के आलोचक यह कहकर उनके नाटकों के मूल्यों पर पानी फेरना चाहते हैं और व्यक्त करना चाहते हैं कि आग़ा में उपज ही नहीं है और उनके नाटक किसी-न-किसी पाश्चात्य नाटक से 'माखिज़' हैं।' इस वक्तव्य में जमील साहब स्वयं आग़ा साहब को नक्क़ाल मानने में हिचकिचाते हैं, मगर 'हश्र' की महानता के कायल नहीं, क्योंकि उनके नाटक पाश्चात्य नाटकों से उद्घृत हैं। उपज की दृष्टि से यदि आंग्ल नाटककार शेक्सपियर के नाटकों को परखा जाय, तो ऐसी उपज की कमी नहीं है, जिसकी आशा आग़ा के नाटकों से की जाती है। नाटक को किसी सफल नाटक पर आधारित करने से नाटक की मौलिकता आहत नहीं होती। नाटक की तरतीब से ही नाटक सजीव हो उठता है। शेक्सपियर के नाटक भी पूर्ववर्ती नाटकों पर आधारित हैं। उनके ऐतिहासिक नाटक 'प्लूटार्क' के एहसानमंद हैं। पर इस पर भी शेक्सपियर की महानता की सफलता इसमें है कि उन्होंने निर्जीव कथावस्तु में जान डाल दी। आग़ा 'हश्र' ने पाश्चात्य नाटकों से बहुत कुछ लिया, पर इस तरह कि नाटक बस केवल उनके बनकर रह गये। 'हश्र' नक्क़ाल नहीं, वरन् उपज के धनी रहे हैं। उन्होंने अपने पुराने नाटकों द्वारा उर्दू जानने वालों को परिचित कराया, पर अछूते अंदाज़ से। 'हश्र' के कथानकों को नक़ल कहने वाले आलोचकों ने इस बात पर संभवतः ध्यान नहीं दिया कि 'हश्र' ने अपने पाठकों को किसी कथानक-विशिष्ट तक सीमित नहीं रखा, वरन् कथानकों की विभिन्नता द्वारा ही दर्शकों को हर्ष-विभोर किया। उनके नाटकों के कथानक ऐतिहासिक, अर्धऐतिहासिक, सामाजिक एवं धार्मिक महत्त्व की घटनाओं तथा राजनैतिक एवं सुधारवादी विचारधारा से लिये गये हैं। 'हश्र' के नाटक-लेखन में यदि दोष है, तो इंगित दोष नहीं, बरन् तारीखे अदबे उर्दू के संकलनकर्ता के अनुसार वही हैं, जो 'मार्लो' के नाटकों में हैं। उनमें भावनाओं की तीव्रता है, तलाफत नहीं, रंग गहरे हैं, हल्के एवं परस्पर-समन्वित नहीं।

अधिक पद्य-प्रयोग बनाम 'एक्शन'

आग़ा के नाटकों पर आपत्ति की जाती है कि उनमें कविता-पक्ति को 'एक्शन पर अधिक महत्त्व दिया गया है। कविता को नाटकीय प्रभाव की अभिवृद्धि के लिये

२—मुरीदे शक का प्रथम मंचन सन् १८९९ में हुआ था।—संपादक

प्रयुक्त किया गया है, जो नाटक-सिद्धान्त के विरुद्ध है। आग़ा ने घटनाओं के बयान में जल्दबाजी से काम लिया है, जिससे 'एक्शन' पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ सका है। वास्तविकता तो यह है कि इस प्रकार का दोष पुरानी नाट्य-परम्परा का दोष है। उस युग का कोई नाटककार इस दोष से मुक्त नहीं है। प्रसिद्ध आंग्ल-नाटककार शेक्सपियर में भी इस प्रकार का रंग मिलता है। इस प्रकार की स्थिति घटना को त्वरित प्रभावी बनाने में मदद करती है, अतः नाटककारों द्वारा प्रयुक्त हुई है। आग़ा द्वारा 'शेरों' के प्रयोग पर की गयी आलोचना अधिक है। निःसन्देह, शेर 'एक्शन' में प्रभावोत्पादक होते हैं, तो भी 'हश्र' ने पुरानी परम्परा का अनुसरण करते हुये इसके यथासंभव न्यूनतम उपयोग से नाटकों में प्रभाव उत्पन्न किया और **वनदेवी हिन्दुस्तान, सीता-वनवास, दिल की प्यास** तथा **रुस्तमो सोहराब** जैसे उन्नत नाटकों में तो जैसे उन्होंने इसका सहारा ही छोड़ दिया। घटना के बयान में दर्शकों की रुचि को बनाये रखने के लिये उस युग के नाटककार विवश थे, तो भी आग़ा के कुछ नाटकों में पद्य इतने लम्बे हो गये हैं कि 'एक्शन' काफी आहत हो गया है।

चरित्र दुर्बल या सजीव ?

आग़ा के चरित्र-चित्रण को लेकर भी आपत्तियाँ की गयी हैं। इन्हें सामान्य रूप से दुर्बल कहा गया है। वास्तव में आग़ा के चरित्र समय के सजीव चित्रण हैं। 'हश्र' के नाटकों के अधिकांश चरित्र मजदूर, सेठ-साहूकार, रिंद, ख़ुदापरस्त, जुआरी, चोर, डाकू, तवायफ, बादशाह, वज़ीर, सिपाही, देशभक्त, विद्रोही आदि का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'हश्र' के नाटक **सफेद खून** में अरसलान, **खूबसूरत बला** में तौफ़ीक-शम्सा, **सिल्वर किंग** में तहसीन, **शरीफ बदमाश** और अफ़ज़ल, **सैदे हवस** में तुग़रल और संजर, **ख्वाबे हस्ती** में हुस्ना और अब्बासी, **यहूदी की लड़की** में जिंदा जावेद और यहूदी अजरा, उन्नत नाटकों में बिल्वमंगल, चिंतामणि, जुगल, बेनी, कामलता, सोहराब, गुर्द आफ़रीद तथा मसखरों में खैरसल्ला, गुल लोरू, घोकल, बूबक और फज़ीता के चित्रण सजीव हैं। 'हश्र' ने वेश्याओं को विभिन्न नाटकों में प्रस्तुत कर उनके घृणित एवं अभिशप्त जीवन को स्पष्ट किया है। **सूरदास** की चिंतामणि, **आंख का नशा** की कामलता, **भारतीय बालक** या **समाज शिकार** की फूलकुमारी का चरित्र उल्लेखनीय है। 'हश्र' का चरित्र-चित्रण कला की दृष्टि से उच्चकोटि का और इसमें उनका अन्दाज़ बेनज़ीर है।

'शेक्सपियर' कहना ठीक नहीं

आग़ा की सफलता से अत्यन्त प्रभावित होकर कुछ श्रद्धालुओं ने उन्हें 'उर्दू नाटकों का शेक्सपियर' भी कह डाला। ऐसे श्रद्धालुजन अपने मत की पुष्टि में उनके नाटकों से ऐसे उद्धरण प्रस्तुत करते हैं, जिससे उनकी भाषा पर अधिकार,

उत्साह, शक्ति, उच्च विचार, अछूती उपमाएँ एवं शैलीगत विशेषतायें प्रकट होती हैं। आंग्ल नाटककार शेक्सपियर की महानता शैलीगत विशिष्टताओं में न होकर जीवन के गम्भीर रहस्यों की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति तथा जीवन की दार्शनिक व्याख्या में है, जो उसने नाटकों में प्रस्तुत की है। इस प्रकार की अनूठी अनुभूतियाँ 'हश्र' के नाटकों में दुर्लभ हैं, अतः उन्हें श्रद्धावश 'शेक्सपियर' कहना समुचित नहीं है।

आगा पारसी मंच को न बचा सके

आगा साहब पर यह आरोप लगाया जाता है कि सफल नाटककार होने पर भी आगा दम तोड़ते हुये पारसी थियेटर को न बचा सके, गोया इसका दोष आगा के नाटकों पर है, जो मुख्यतः दर्शकों को हँसाने और रुलाने के लिये ही लिखे एवं खेले गये। जब तक दर्शकों की अभिरुचि केवल मनोरंजन में रही, थियेटर अपनी दुर्बलताओं के बाद भी चलते रहे। देश में राजनैतिक चेतना एवं जागृति के कारण तथा जनसाधारण के स्वभाव में वास्तविकता के प्रति लगाव उभरने से थियेटरों द्वारा प्रस्तुत नाटक खोखले एवं 'तमाशा' मात्र लगने लगे। थियेटर-प्रभुओं ने लोगों के बदलते हुये झुकाव को नहीं पहिचाना। थियेटर एवं दर्शकों में अन्तराल बढ़ता गया, जिसकी पूर्ति सिनेमा ने प्रभावपूर्ण ढंग से की। अतः थियेटर का अन्त युग के तकाजे के फलस्वरूप इससे अधिक सशक्त माध्यम बोलते सिनेमा के बढ़ते हुये प्रभाव द्वारा हुआ। बोलते सिनेमा ने नाटक-कला में परिवर्तन आवश्यक बना दिया, जिसमें संवाद, घटना और वातावरण के समन्वित रूप को प्रस्तुत करने पर बल हो। यह स्थिति आगा के अन्तिम दिनों में आई। 'हश्र' इसकी पूर्ति में भी मर्दानावार बढ़े, मगर जिन्दगी ने साथ न दिया। आगा पर दोषारोपण करना अथवा उनके नाटकों के मूल्यों को संदिग्ध मानना उचित नहीं है।

नाटक-क्षेत्र का महान कलाकार 'हश्र' मिआनी साहब, लाहौर के कब्रिस्तान में दफ़न है। लौहे मज़ार पर प्रोफेसर अब्दुल लतीफ 'तपिश' मरहूम का कतअ तारीख दर्ज है :

हुई खत्म तमसीले हस्तीए फ़ानी,
गिरा पर्दये मर्ग बे रहो नकद अब।
'तपिश' किस क़यामत का बदला है मन्ज़र,
तमाशा गहे 'हश्र' है यह लहद अब॥

आगा 'हश्र' के नाटकों का विशद शास्त्रीय विवेचन करके उर्दू तथा हिन्दी नाटकों के विकास में उनका स्थान निश्चित करना अभी भी शेष है।

———

'नैरंग'

कुछ वैयक्तिक भ्रांतियों का निराकरण

आगा 'हश्र' के नाटक तो जनता तक शहर-शहर पहुँच गये, मगर स्वयं आगा 'हश्र' इतने दूर रहे कि उनके बारे में ठीक जानकारी न होने से गलत बातें गढ़ ली गईं या मशहूर हो गईं, जिनका निराकरण आवश्यक है। जहाँ तक मुझे मालूम है, सही तथ्य निम्नलिखित है :—

१—आगा 'हश्र' के पिता आगा गनी शाह श्रीनगर से तिजारत के सिलसिले में बनारस आए और बनारस-निवासी शेख अब्दुर्रहमान काश्मीरी की छोटी पुत्री से विवाह करके यहीं रहने लगे। आगा गनी शाह पुत्र पीर अहमदशाह पुत्र पीर नजमुद्दीन शाह काश्मीरी शेख और पीरजादे थे।

२—आगा 'हश्र' ४ अप्रैल, १८७९ को बनारस में पैदा हुए। यह कथन कि वे अमृतसर, सियालकोट या किसी और जगह पैदा हुए, गलत है।

३—'हश्र' १८ वर्ष की उम्र में बनारस में आफताबे मुहब्बत नाटक सन् १८९७ ई० में लिखने के बाद सीधे बम्बई गए और वहाँ बनारस के अब्दुल्ला साहब जरदोज के यहाँ ठहरे और वहीं से कोशिश करके कावसजी खटाऊ की कम्पनी में नाटक लिखने पर मुलाजिम हुए। यह भ्रम कि आगा साहब ने किसी हलवाई की दुकान पर काम किया या नाटक में ऐक्टिंग की या पोस्टर धोया, निराधार है।

४—'हश्र' के बम्बई में ताउल्लुक एक यूरेशियन महिला मिस मेरी अलबर्ज से हो गया और जिनकी माँ ने 'हश्र' के जीवन को बहुत कुछ सँभाला और उन्हें अध्ययन करने पर मजबूर किया। वह आगा साहब को कमरे में बन्द कर देती थीं और किसी से जल्दी मिलने नहीं देती थीं, ताकि समय नष्ट न हो और आगा साहब लिखने-पढ़ने का काम करें। कुछ लोगों ने इस बात को गलत समझा है और इसका मजाक उड़ाया है कि आगा साहब को लेडी कहाँ से मिल गई, मगर यह वाकिआ सच है। मिस मेरी और उनकी माँ बनारस भी आई थीं और मैंने उन्हें देखा है। मिस मेरी के आगा 'हश्र' के नाम सन् १९०८ में लिखे गये पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं।

५—'हश्र' ने केवल एक शादी (विवाह) की, जिससे एक लड़का नादिरशाह बनारस में २ सितम्बर, सन् १९१४ को पैदा हुआ और ३ महीने बाद लखनऊ में

मर गया। आग़ा साहब के और कोई औलाद नहीं हुई। सन् १९१८ में उनकी पत्नी का भी इन्तकाल लाहौर में हो गया। आग़ा साहब ने फिर दूसरी शादी नहीं की। लोगों का यह अनुमान कि आग़ा 'हश्र' की कोई औलाद जिन्दा है, बिल्कुल ग़लत है।

६—'हश्र' ने केवल २७ नाटक लिखे, जिनके नाम मैंने अपनी किताब आग़ा 'हश्र' और नाटक में दे दिये हैं। उनके तथा उनके कहे जाने वाले छपे नाटकों की लिपि में इतनी अशुद्धियां और भ्रांतियां हैं कि जिनका जवाब नहीं। बहुत से लोग दूसरों के नाटक भी आग़ा 'हश्र' के नाम से छाप देते थे और उनके नाटक अपने नाम से छाप लेते थे। नतीजा यह है कि मैंने एक किताब देखी, जिसमें क़रीब ४० नाटकों का लेखक आग़ा 'हश्र' को बताया गया है, जो ग़लत है।

७—मैंने एक जगह पढ़ा कि आग़ा साहब अपना नाटक लिखकर एक गंडेरी बेचने वाले को भी सुना देते थे। यानी उनके नाटक की तहरीर ऐसी ही सस्ते किस्म की होती है। मुझे इस जगह केवल इतना ही कहना है कि यह वाक़िआ ही ग़लत है। मगर यह बात है कि यह पढ़े-लिखे के अलावा बेपढ़ों या जाहिल मनुष्यों पर भी अपने नाटक का असर देखना चाहते थे और उससे खुद भी असर लेना चाहते थे। गण्डेरी बेचने वाले की तो बात ही कुछ और है। जैसा कि मैंने आग़ा 'हश्र' और नाटक पुस्तक में लिखा है, कलकत्ते में मैं एक रोज़ उनके साथ पैदल ही जा रहा था कि एक जगह डोम और डोमिनें लड़ रही थीं। आग़ा साहब वहां खड़े हो गये और लड़ाई देखने लगे। मैंने कहा कि चलिये भी, मुझसे कहा कि ठहर जाओ, कुछ मिल जाएगा अर्थात् ड्रामा लिखने के लिये कोई बात मिल जाएगी।

८—कुछ लोगों का ख़याल है कि आग़ा 'हश्र' शेक्सपियर के नाटकों का तर्जुमा करते थे और नाम बदल कर खेलने को देते थे, जो बिल्कुल ग़लत है। उन्होंने शेक्सपियर के ड्रामों का तर्जुमा कभी भी नहीं किया। शुरू-शुरू में उन्होंने शेरिडन के पिज़ारो और शेक्सपियर के किंग लियर के प्लाटों को काफी अपनाया और उनके कुछ संवाद भी लिखे। उसके बाद जैसा कि मैंने अपनी उक्त पुस्तक में लिखा है, वह अंग्रेजी ड्रामे का एक या दो सीन ले लेते थे, उसी पर अपना प्लाट बनाते और अपना संवाद लिखते।

९—उनके बारे में एक भ्रम यह भी है कि वह शराब पीते जाते और नाटक लिखते जाते थे। हो सकता है कि जवानी में उनको ऐसी आदत रही हो। मगर जब से मैंने उन्हें नाटक लिखाते देखा है, यही देखा कि वे उस समय शराब नहीं पीते थे। उनके नाटक लिखाने का तरीक़ा ही अजब था, सुबह नाश्ते के बाद नाटक लिखाना शुरू करते। खुद आरामकुर्सी पर बैठ जाते, खानसामा हुक्क़ा लाकर सामने रख देता और मुन्शी सामने बैठ जाते। आग़ा साहब ड्रामा बोलते जाते और मुन्शी जी

लिखते चले जाते । खाने के समय आग़ा साहब उठते, खाना खाते, हुक्क़ा पीते और फिर आठ बजे रात तक लिखाते जाते । उसके बाद सो जाते । जब तक ड्रामा पूरा न हो जाता, महीनों यही 'रोटीन' चलता रहता । मैंने आग़ा साहब को कई ड्रामे लिखाते हुए देखा, मगर सिवाय तुर्की हूर नाटक के एक पेज के और किसी लेख को दुबारा काट कर फिर लिखाते हुए नहीं पाया । बस, जो बोल दिया, वही आज तक क़ायम है ।

१०–कई लेखों और स्कूली किताबों में मैंने पढ़ा है कि आग़ा साहब सैय्यद थे । यह ख़्याल बिल्कुल ग़लत है । आग़ा साहब सैय्यद नहीं थे और न कभी सैय्यद बनने की कोशिश की । वे काश्मीरी शेख़ थे । स्कूली पुस्तकों में जहां-जहां सैय्यद लिखा है, उसे शुद्ध किए जाने की आवश्यकता है ।

गनपतलाल डाँगी

कलकत्ते से चरखारी तक

मेरी मान्यता है कि थोड़ी भी प्रतिभा वाला कलाकार, जिसने बरसों आगा 'हश्र' के नाटकों में काम किया, वह बिना उस्ताद के लेखक, नाटककार और डाइ-रेक्टर बन गया।

राजस्थानी कलाकारों की माँग

'हश्र' साहब के दर्शनों का सौभाग्य मुझे सबसे पहले मोती सील स्ट्रीट, धर्मतल्ला, कलकत्ते में हुआ, जहाँ पर पारसी एलफिन्स्टन थियेट्रिकल कम्पनी (कोरंथियन कम्पनी) और अल्फ्रेड कम्पनी, ९१, हरीसन रोड, कलकत्ता में काम करने वाले राजस्थान के कलाकार रहते थे। वहाँ रहने वाले मेरे स्वजातीय और रिश्तेदार थे। मैडन सेठ के दूसरे लड़के फरामजी मैडन ने 'हश्र' साहब के सहयोग और सलाह से पायनियर फिल्म कम्पनी की स्थापना की। ग्राम खोड, जिला पाली (राजस्थान) के रहने वाले हमारे स्वजातीय पूनमचन्द जी द्वारा ऊँची और सुरीली आवाज़ वाले लड़कों को जोधपुर से बुलाया गया, जिनमें मैं (गनपतलाल डाँगी), स्व० जयशम्भु डाँगी, कन्हैयालाल पँवार, मोतीलाल तथा मदन लाल जेंडा थे। हमें टालीगंज में रक्खा गया। वहाँ अकेलापन और रिश्तेदारों का नज़दीक न होना हमारे लिए कष्ट की बात थी। फिर हमको हमारे रिश्तेदारों के पास ही रहने की अनुमति मिल गई।

'हश्र' साहब ने एक दिन पूनमचन्द जी से कहा—'अरे भाई, मारवाड़ (राजस्थान) से आने वाले लड़कों का गाना तो सुनाओ।' हमको बुलाया गया, हम लोगों ने अदब से पाँव छुए और गाना शुरू किया। बाजा मा० छैला जी सोलंकी और तबला उस्ताद गोरधन जी जमखड़ा बजा रहे थे।

'हश्र' राजस्थानी गायकों से प्रभावित

सम्मिलित स्वरों में हमने राजस्थानी गीत 'मोर बोले रे मल जी आबूरा पहाड़ों में' सुनाया। 'हश्र' साहब झूम उठे और हम लोगों को इनाम में ११) रु० दिये और पूनमचन्द जी से कहने लगे—'भाई पूनमचन्द, इनको बुरी सोहबत से बचाना,

इनकी आवाज़ डोब में न आ जावे (यानी गले की हड्डी बढ़ न जावे), उससे पहले-पहले इनसे काम ले लो, स्टेज पर कोई औरत इनकी आवाज़ के आगे गाने आये, तो......" इसके बाद जाने वे क्या-क्या कह गये ।

कोरंथियन उर्फ रायल

चरखारी-नरेश महाराजा अरिमर्दन सिंह जी ने रुस्तमजी सेठ (रुस्तमजी मैडन सेठ के दामाद थे) से कोरंथियन कम्पनी खरीद ली और कुछ दिनों के बाद उन्हें वापस दे दी । महाराजा साहब को धुन सवार हुई कि कोरंथियन जैसी कम्पनी हमारे यहाँ बने, वैसे ही सामान, सीन-सीनरी, ड्रेस और वैसे ही नाटक खेले जावें । पेन्टर, मिस्त्री और कलाकारों की तलाश हुई । थियेटर हाल पक्का बनवाया गया, पेन्टर उस्मान उस्ताद और स्टेज मिस्त्री लुकमान उस्ताद को सामान बनवाने के लिये दिल्ली से बुलाया गया । थियेटर में बिजली के लिए एक इंजन फिट किया गया ।

कार्तिक मास में वहाँ १५ दिन के लिए धार्मिक मेला भरता था । दूर-दूर से आये हुये यात्रियों और महाराजा के मेहमानों के मनोरंजन के लिए, जिनमें बुन्देलखंड और बघेलखण्ड के राजा-महाराजा और जागीरदार भी थे, मेले में नाटक शुरू हुए । कम्पनी का मैनेजमेंट महाराजा साहब के ए०डी०सी० जनाब महमद याहिया के हाथ मे था, अच्छी परसनाल्टी, ऊँचा कद, रोबदाब वाले आदमी थे ।

कम्पनी के स्त्री-पुरुष कलाकार

कम्पनी का नाम रायल ड्रामेटिक सुसायटी रक्खा गया । 'हश्र' साहब के करीब-करीब सभी नाटक, कोरंथियन कम्पनी खरीदते समय, महाराजा साहब ने रख लिये थे । कलाकारों में मा० चमनलाल गुजराती, मोहन, नर्बदा शंकर, भोला शंकर, बशीर: सज्जाद तथा चरखारी में रहने वाले कुछ कलाकारों को, जो राज्य में भी नौकर थे, कुछ अधिक तनख्वाह देकर कम्पनी में काम करने के लिये महाराजा का हुक्म हो गया । उनमें जगन्नाथ, कोटिया, शमशेरा, लतीफ खाँ, मोहब्बत भाई वगैरह कई लोग थे, बाजा मास्टर जयशंकर भाई बजाते थे, प्राम्प्टर बाबूलाल थे । स्त्री-कलाकार कोई नहीं थी । बाद में चरखारी रियासत में रहने वाली शीरीं, मैना और गुलनार को नौकर रक्खा, जो छोटे-मोटे पार्ट किया करती थीं और रिहर्सल में बैलगाड़ी में बैठकर आती थीं । 'हश्र' साहब अपने लिखे नाटकों के खुद 'डाइरेक्टर' होते थे ।

सीता वनवास नाटक लिखा तो उन्होंने चरखारी के लिए नहीं था, मगर वह नाटक आगा 'हश्र' से सुनने के बाद महाराजा साहब को बहुत पसन्द आया (उनका सुनाना ग़ज़ब का था) । महाराजा अरिमर्दन सिंह ने उस नाटक को खरीद लिया । जब सीता वनवास नाटक राज्य के प्रेस में छप रहा था, उस वक्त प्रेस के चारों तरफ पुलिस का पहरा था, ताकि दूसरी कापी न छप जाये, और नाटक चोरी न हो जाये ।

नाटक जब तक स्टेज न हुआ, तब तक आग़ा नाटक की तैयारी कराने के लिए चरखारी में ही रहे।

नाट्याचार्य 'हश्र'

सागर पेशा गेस्ट हाउस में 'हश्र' साहब रहते थे, दो नौकर, खाना मनचाहा, घूमने के लिए दो घोड़ों की बग्घी, चलाने वाले छोटे खाँ हिल्लेदार। नर्बदा शंकर को सीता का पार्ट सिखाते हुये 'हश्र' साहब ने सिर्फ एक ही संवाद पर पूरा रिहर्सल खत्म कर दिया। लक्ष्मण, राम की आज्ञा से, सीता को वन में छोड़कर जाते हैं, तब सीता कहती हैं—'ठहरो, ठहरो, मेरे आदर्श देवर, ठहरो।' लक्ष्मण के न रुकने और चले जाने पर सीता कहती हैं—'क्या चले गये ?' इस वाक्य को तरह-तरह के भावों से समझाते हुये 'हश्र' साहब ने पूरा रिहर्सल समाप्त कर दिया।

लव-कुश से अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा छुड़ाते के लिए जाते समय शत्रुघ्न जब तलवार खींचकर जाने लगे (यह रिहर्सल की बात है। महाराजा साहब अपने साथियों सहित स्वयं रिहर्सल में बैठे थे), तो 'हश्र' साहब झल्लाकर बोले—'अबे, क्या करता है, राम का भाई है या किसी बाई का उस्ताद ? सारंगी के गज़ की तरह क्या तलवार खींचता है ?' यह कहकर स्टेज पर आ गये और तलवार खींचकर बताई, तो तलवार हाथ से निकलकर महाराजा साहब के सिर पर से होती हुई दूर जा गिरी और तलवार की मूठ हाथ में रह गई। सरदार लोग सभी खड़े हो गये, महाराजा साहब बैठे रहे। महाराजा के एक ए०डी०सी० उम्मेद खाँ ने 'हश्र' साहब को यह सारी बात सुनाई और कहा कि 'हश्र' साहब, खुदा ने बचा लिया, वरना गज़ब हो जाता। 'हश्र' साहब ने कहा—'भाई, मैंने दरबार के मुसाहिब की तलवार नहीं, राम के भाई की तलवार खींची थी। जोश में ख्याल नहीं रहा, कमबख्त ड्रेस रूम वाले राजा की कम्पनी में भी ऐसी कमज़ोर तलवार रखते हैं। चरखारी के रहने वाले कलाकार सीता वनवास नाटक के पार्ट अपनी पूजा में रखते थे।

महाराजा साहब के महल रामबाग पैलेस में बिना साफे के कोई नहीं जा सकता था, लेकिन महाराजा ने 'हश्र' साहब को नंगे सिर आने की छूट दे रखी थी।

'हश्र' साहब के छोटे भ्राता आग़ा महमूद साहब भी चरखारी आये और हिन्दुस्तान नाटक का रिहर्सल चलाया और कुछ दिनों बाद चले गये।

कलकत्ते के राजस्थानी कलाकार चरखारी लाये गये

दिसम्बर में बड़े दिन पर अक्सर राजा-महाराजा कलकत्ता आते थे, ग्रैंड इण्डियन होटल में चरखारी महाराज अपने मुसाहिबों और छोटी रानी और बड़ी महारानी (अम्बा कुँवर बाईसा) के साथ ठहरे हुये थे। नाटक देखने कोरंथियन थियेटर पधारे। हम सभी राजस्थानी मुजरा करने होटल गये। महाराजा साहब का

आदेश हुआ कि हमारी कम्पनी में चरखारी चलो । तनख्वाहें तय हो गई और हम, जिनमें मेरे चाचा फूलचन्द जी, राणीदान जी, खेमराज पँवार, लक्ष्मणदास डाँगी, पं० गोपालदास, गोविन्दराम, लालचन्द, कन्हैयालाल पँवार और मैं (गनपत लाल डाँगी) चरखारी आ गये । सागर पेशा वाले मकान में हमें ठहरा दिया गया, खाने-पीने के सामान के लिए मोदी बता दिया गया, जहाँ से सामान लाते और ६ या ७ महीने में तनख्वाह मिलने पर उसका हिसाब कर देते थे ।

पूर्वाभ्यास से नाटक तक

रात आठ बजे से १२ बजे तक गैस की रोशनी में रिहर्सल चलते थे । कभी-कभी महाराजा साहब स्वयं रिहर्सल में आकर नाटक की किताब अपने पास मँगा लेते और रिहर्सल चलाते थे । जब कोई कलाकार 'हश्र' साहब के नाटक का ड्रामा भूलकर अपनी तरफ से उसमें कुछ जोड़कर बोलता, तो महाराजा साहब फरमाते—'मखमल में टाट का टुकड़ा मत जोड़ो ।' सबको ड्रामा याद रहता था । यहाँ तक कि पर्दा गिराने के लिए प्राम्प्टर को सीटी तक बजाने की जरूरत नहीं होती थी । कई बार रिहर्सल के बीच में ही महाराजा का हुक्म आता था कि आज अमुक नाटक हम देखेंगे । रिहर्सल नाटक में बदल जाता । सभी लोग अपनी-अपनी तैयारी में लग जाते । बिजली के लिये सीटी मारता हुआ इंजन शुरू हो जाता । तालाब के उस पार मेले के मैदान में बने थियेटर में बिजली की रोशनी प्रचार का काम करती और चरखारी के दर्शक महाराजा साहब से पहले थियेटर के चारों तरफ आकर बैठ जाते । रात के १२ या १ बजे महाराजा साहब अपने सरदारों के साथ, पीछे-पीछे छोटी महारानी, बड़ी महारानी, स्वयं महारानी अपनी बाँदियों के साथ अलग-अलग मोटरों में । सबसे आगे महाराजा साहब की मोटर, जिस पर लाल बत्ती, चलाने वाला अहमद खाँ, साफा बाँधे हुए । क्या शान, क्या ठाठ और क्या नाटक का शौक ! न आँखें वह दृश्य बता सकती हैं, न जुबान बयाँ कर सकती है, और न मामूली कलम उसे लिख सकती है । जैसे महाराजा साहब की मोटरें थियेटर हाल के आगे खड़ी होतीं, जनता जय-जयकार करती और कहती–'ग़रीबपरवर हुजूर, हम लोगन के वास्ते भी खुलासा हो जाये, मतलब हमको भी नाटक देखने की आज्ञा दे दी जावे ।' थोड़ी देर बाद थियेटर के दरवाजे जनता के लिये खोल दिये जाते । नाटक देखने वाली जनता भी 'हश्र' के नाटकों के सम्वाद याद रखती थी । कलाकार के भूलने पर थियेटर हाल से दर्शक स्वयं बता देते थे ।

'धर्मी बालक' भी चरखारी में

'हश्र' साहब के नाटकों मे धर्मी बालक उर्फ ग़रीब की दुनिया नाटक चरखारी में नहीं था । कलकत्ते से चरखारी आते समय यह नाटक, जिसे मेरे बड़े भ्राता

बाबू मानिक लाल जी ने कहीं से कापी कराया था, मैं अपने साथ लाया । महाराजा साहब को भेंट किया । मुझे २०० रु० इनाम मिले । रिहर्सल चला और वह नाटक खेला गया । मैं उसमें सरला का अभिनय करता था, जो कॉमिक की हिरोइन थी । बाद में राधेकान्त भी बना ।

वे बादशाह हैं–रात के भी, तबियत के भी

महाराजा चरखारी ने आगा 'हश्र' के सिवा किसी अन्य लेखक का नाटक नहीं देखा । कलाकारों को वह अपने निजी स्टाफ में समझते थे । राज्य अधिकारियों की शिकायत पर वह कहते थे—'अरे भाई, हम तो राजा हैं और यह कलाकार लोग बादशाह हैं—रात के भी और तबियत के भी । यह तो मन बहलाने के खिलौने हैं, फूल हैं, इन्हें सँभाले रक्खो, पाँव तले मत रौंदो ।'

मोहन ने चरखारी का सामान खरीदा

चरखारी की नाटक-प्रेमी जनता 'हश्र' साहब के नाटकों से प्रभावित थी, उनका सम्मान करती थी । मैंने जब दिल्ली में महाराजा इन्द्रगढ़ के सहयोग से मोहन थियेट्रिकल कम्पनी बनाई, तब दिल्ली के प्रसिद्ध वकील स्व० व्रज बिहारी तवक अली साहब को साथ लेकर मैं चरखारी से सीन-सीनरी और ड्रेस खरीदने के लिये गया । उसके पहले ही महाराजा अरिमर्दन सिंह जी सदा के लिए चरखारी से चले गये थे या निर्वासित कर दिये गये थे (गद्दी से उतार दिये गये थे) । खान बहादुर ऐनुद्दीन, जो दीवान थे, दतिया चले गये थे और चरखारी में मिश्रा जी दीवान थे. कम्पनी का सारा सामान मैं २५००० रु० में लेकर दिल्ली आया । जब ट्रकों में सामान लादा जा रहा था, तब चरखारी की नाटक-प्रेमी जनता को आँखों में आँसू बह रहे थे, जो यह कह रहे थे–'अब हमें 'हश्र' के नाटक कहाँ देखने को मिलेंगे !'

शाहजहाँ द्वारा 'सीता वनवास' पर महाराजा का नोटिस

सन् १९४० ई० में मैं अपने बड़े भ्राता बाबू मानिकलाल जी द्वारा स्थापित शाहजहाँ थियेट्रिकल कं० को लेकर दिल्ली आया । कम्पनी के निर्देशक थे बाबू मानिकलाल और प्रोप्राइटर में मेरा नाम था । परेड ग्राउन्ड लाल किले के सामने हमारे नाटक होते थे ।

महाराजा चरखारी उन दिनों दिल्ली में थे । एक दिन हमने 'हश्र'-**सीता वनवास** नाटक खेलने की घोषणा की । अखबार में यह खबर देखकर महाराजा साहब झल्ला उठे और अपने कानूनी सलाहकार तवक अली साहब को बुलाकर हमें नाटक बन्द करने का नोटिस दिलाया । उनको इस बात का गुस्सा था कि नाटक मेरा खरीदा हुआ और खेलने वाले मेरी कम्पनी चरखारी में नौकर थे और मैं दिल्ली में हूँ, मुझे निमन्त्रण नहीं, मेरी स्वीकृति नहीं । मगर हम निर्दोष थे, हमें पता

नहीं था कि महाराजा साहब दिल्ली में हैं । दूसरे दिन हम लोग गये, क्षमा माँगी । गुस्सा थोड़ी देर का था । तवक अली साहब के निवेदन पर महाराजा साहब ने कुछ शर्तों के साथ नाटक खेलने की स्वीकृति दे दी ।

आज 'हश्र' साहब संसार में नहीं हैं, लेकिन उनके उपदेश, जो उन्होंने नाटकों द्वारा दिये हैं, अमर हैं । उनका नाम नाटक की दुनिया में अमर है और अमर रहेगा ।

आखिरी दिनों लाहौर में जब स्वास्थ्य ज्यादा खराब हो गया था, किसी ने पूछा–'कैसी तबियत है', तो कहने लगे–

'खो चुके जोशे जवानी, फिर मिले दुश्वार है ।
'हश्र' तेरी ज़िन्दगी गिरती हुई दीवार है ।।'

नाटक का सूरज डूब गया

आग़ा 'हश्र' के स्वर्गवास की खबर सुनकर महाराजा साहब ने दो वक्त भोजन नहीं किया, आँखें डबडबा गईं और कहा—'आज नाटक का सूरज डूब गया ।'

राजेन्द्र कुमार दवे

चरखारी में आग़ा 'हश्र' : व्यक्तित्व एवं रचना-प्रक्रिया

कोरंथियन कंपनी और नया थियेटर हाल चरखारी में

सन् १९२४ में भारत के सर्वश्रेष्ठ थियेटर कोरंथियन एवं अल्फ्रेड कलकत्ते में मादन थियेटर्स के प्रबन्ध के अन्तर्गत चल रहे थे । चरखारी (बुन्देलखण्ड) के महाराजा अरिमर्दन सिंह सन् १९२७ में कोरंथियन थियेटर को सवा लाख रुपये में खरीद कर चरखारी ले आये और वहाँ रायल ड्रामेटिक सुसायटी (सोसायटी) के नाम से उसे चलाया, जिसके लिए वहाँ एक भव्य थियेटर हाल दि रायल थियेटर का निर्माण कराया । थियेटर का मंच ३२ फुट चौड़ा और ७५ फुट ऊँचा है ।[1] दर्शक दीर्घा तो इतनी बड़ी है कि हजारों आदमी बैठ सकते हैं । यह थियेटर चरखारी का ही नहीं, समस्त बुंदेलखण्ड का गौरव है, जो अतीत की स्मृतियां संजोये आज भी भावी आशाओं के सपने बुन रहा है । महाराजा साहब कोरंथियन की साज-सज्जा के अतिरिक्त कलाकारों को भी चरखारी ले आये थे ।

'हश्र' भी चरखारी में

इसी वर्ष महाराजा साहब ने आग़ा साहब को चरखारी बुला लिया, जहाँ

१. कुछ विद्वानों के अनुसार इसकी ऊँचाई ७५ नहीं, ६० फुट है । —संपादक

१२००/– रुपया मासिक[1] जेब खर्च उन्हें दिया जाता था। यहाँ उन्होंने कई नाटक लिखाये तथा कइयों का निर्देशन किया। चरखारी में मुख्यतः सीता वनवास, मधुर मुरली, भीष्म प्रतिज्ञा, तुर्की हूर, आँख का नशा, खूबसूरत बला, सिल्वर किंग, ख्वाबे हस्ती, रुस्तम सोहराब, दिल की प्यास, यहूदी की लड़की, भारतीय बालक, धर्मी बालक, हिन्दुस्तान, पहला प्यार आदि नाटक खेले गये। आज भी विजय दशमी के अवसर पर कुछ नाटकों का मंचन होता है।

'हश्र' के संस्मरण समकालीनों की जबानी

सौभाग्यशाली है यह नगर और यहाँ के लोग, जिन्हें नाटककार-निर्देशक आग़ा साहब के साथ कार्य करने, रहने और उनकी बहुमुखी नाट्य-प्रतिभा देखने को मिली। आज भी उनके समकालीनों, कलाकारों तथा अन्य उनके निकटस्थ लोगों के मुँह से आगा साहब के संस्मरण सुनने को मिलते हैं। उनका भव्य शरीर लगभग छः फुट ऊँचा था। असामान्य मोटाई, लम्बी गर्दन, भारी शरीर देखते ही बनता था। किन्तु जब वह स्वयं निर्देशन, विशेष कर स्त्री-पात्र का अभिनय स्वयं करके दिखाते थे या नृत्य-निर्देशन करते थे, उस समय उनके भारी-भरकम शरीर में अजीब लोच और फुर्ती आ जाती थी।

उस समय के सहयोगी कलाकारों में प्रमुख हैं— वयोवृद्ध रामदास नगायच, जो ऋषि बाल्मीकि तथा रावण का अभिनय करते रहे, कुँवर पृथ्वी सिंह, जो बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध मृदंगाचार्य थे और जिनके आकाशवाणी, इलाहाबाद से पखावज तथा तबले के कार्यक्रम बारह वर्ष तक प्रसारित होते रहे हैं, श्री जगन्नाथ गुरु, श्री सुन्दर लाल पुरहेत, कुंजविहारीलाल गोस्वामी, भागवत प्रसाद रेजा तथा गोकुल प्रसाद दिहुलिया। इन लोगों से आग़ा साहब के बारे में सुन कर तो लगता है कि उन्हें कोई इष्ट-बल रहा होगा, तभी यह अद्वितीय प्रतिभा उनमें थी।

नाट्य-रचना की प्रक्रिया

उन्होंने कभी लेखनी हाथ में लेकर नाटक नहीं लिखे, बल्कि ताल कोठी (लेक व्यू) के नाम से प्रसिद्ध कोठी में मौलश्री के पेड़ के नीचे घूमते-घूमते कोठी के एक कक्ष में पहुँच कर, जहाँ मेज पर अनेकों बहुमूल्य शराब की बोतलें रखी रहती थीं, शराब पीते जाते और नशे में मस्त बैठे या घूमते हुए धारा-प्रवाह नाटक बोलने लगते थे। अनेकों लेखक एक साथ बैठकर लिखते जाते थे, जिन पर यह प्रतिबन्ध था कि आग़ा साहब को कोई बीच में नहीं टोकेगा। जो जितना लिख पाये, लिखे। अंत में सभी लेखक एक दूसरे से मिला कर छूटे हुए शब्दों को पूरा कर लें। आग़ा साहब

---

१. श्री शफी महोबवी के अनुसार 'हश्र' को १५००/– रुपये मासिक वेतन मिलता था।—संपादक

धारा-प्रवाह न केवल नाटक के विभिन्न पात्रों के संवाद बोलते जाते थे, बल्कि जहाँ जैसा परदा एवं सीन होता था, उसको भी उसी क्रम में बोलते जाते थे। नाटक में यथा-स्थान आये गीतों को भी साथ-साथ बोलते जाते थे। काश कभी बीच में किसी ने लिखते-लिखते टोककर छूट रहे अंश को आग़ा साहब से पूँछ लिया, तो तुरन्त आग़ा साहब का स्वरूप ही बदल जाता था। संवाद बोलना बन्द, कागज़ फाड़ना, गिलास-बोतलें फेंकना और अपने आप को गालियाँ देने का क्रम प्रारम्भ हो जाता था। उनकी नाराजगी देखकर लेखकों को भागना ही पड़ता था। धोखे से ही नहीं, कभी-कभी जानबूझ कर आग़ा साहब के इस स्वरूप का आनन्द लेने के लिये बीच में टोक कर लेखक यह स्थिति उत्पन्न कर देते थे, जो प्रायः उनके सचिव श्री बरजोर जी द्वारा किया जाता था। अभूतपूर्व प्रतिभा के धनी आग़ा साहब ने अगले दिन अथवा दूसरी बैठक में जब कभी आगे का नाटक अधूरे संवाद से बोलना प्रारम्भ किया, जो कितने ही दिनों बाद बोला गया हो, कभी आगे बोलने के लिए पिछली बार बोले गये अन्तिम शब्दों या सम्वादों को नहीं पूछा कि कहाँ तक बोला था? एकबारगी धारा-प्रवाह बोलना शुरू कर देते थे और क्या मज़ाल था कि यदि अधूरे वाक्य या संवाद पर, गीत पर कहीं भी छोड़ा हो, ठीक उसी के आगे से बोलना प्रारम्भ न किया गया हो और नाटक की शृंखला में कहीं कोई बल पड़ा हो। इसके प्रत्यक्षदर्शी आज भी चरखारी में हैं।

चरखरी से जाने के बाद आग़ा साहब ने चरखारी के कुछ लोगों से पत्र-व्यवहार किया था। उनमें से एक पत्र, जो उन्होंने अपने मित्र महाराजा साहब के निजी सचिव सरदार मुहम्मद यहिया अल्वी को लिखा था, आज भी उनके पुत्र श्री गुलाम हसनैन अल्वी, एडवोकेट, चरखारी के पास सुरक्षित है, जो स्वयं आग़ा साहब के साहित्य के प्रेमी हैं।

'आग़ा 'हश्र' काश्मीरी चरखारी में' यह परिचर्चा बी० बी० सी०, लन्दन से उर्दू-कार्यक्रम में प्रायः श्री यावर अब्बास से सुनने को मिलती है। इस संदर्भ में कभी आग़ा साहब के नाटक, कभी गीत, कभी संवाद श्री अब्बास सुनाने लगते हैं, किन्तु आकाशवाणी से भी कभी इस विषय में सुनने को मिलेगा, यह लालसा अभी शेष है। शताब्दी समारोह चरखारी में भी आयोजित हो तथा इस अवसर पर उनके समकालीन साथियों तथा कलाकारों का अभिनन्दन हो, यह उनकी कर्मस्थली चरखारी का प्रयास है।

कृति

डॉ० पवन कुमार मिश्र

आग़ा 'हश्र' : एक नाट्य-यात्रा

सामाजिक जागरूकता जिस साहित्यिक विधा को पुष्पित-पल्लवित करती है, वह नाटक है। किसी भी रचनाकार का विविध अनुभव उसके लेखन को व्यापकता, और व्यापकता प्रदान करता है। आग़ा 'हश्र' काश्मीरी के पास एक ओर रचनात्मक ऊर्जा थी, तो दूसरी ओर व्यापक अनुभव।

बनारस : नाटककारों की जन्म-एवं-क्रीड़ा-भूमि

'हश्र' के पूर्वज काश्मीर की लुलाव घाटी में रहते थे। उनके पिता मुहम्मद गनी शाह दुशाले की तिजारत के सिलसिले में बनारस आये और यहीं के होकर रह गये। बनारस हमेशा से साहित्यकारों की क्रीड़ा-भूमि रहा है। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार भारतेन्दु जी यहीं के थे। आग़ा 'हश्र' के समसामयिक नाटककार जयशंकर 'प्रसाद' भी इसी भूमि से उपजे थे। आग़ा 'हश्र' काश्मीरी की कोठी और सुँधनी साहु की दूकान एक ही मुहल्ले में है। दोनों नाटककार, दोनों अपने-अपने सवालों से जूझते-टकराते एक ही विधा में रचना करते रहे। हिन्दी और उर्दू-हिन्दी नाटकों के श्रेष्ठ सर्जक ! पर दोनों में कभी भेंट हुई, साहित्यिक चर्चा हुई, इस पर बनारस मौन है। ऐसा क्यों ?

'हश्र' का अन्तर्द्वन्द्व

'हश्र' ने जब लेखन-कार्य शुरू किया, तब अँग्रेजों का शासन था, जो सदैव साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया करते थे। गनीशाह एक मज़हबी दल के सदस्य थे, अतः आग़ा 'हश्र' की शिक्षा धार्मिक नियमों के अनुसार हुई। पर उनकी रचनात्मक चेतना उनके अन्दर अन्तर्द्वन्द्व पैदा करती थी। एक तरफ धार्मिक शिक्षा उन्हें कट्टर बनाती थी और वे हर रचना के पश्चात् ईश्वर से प्रार्थना करते थे कि उनकी कृति मंचित हो और सफल हो, तो दूसरी ओर जीवन के विविध अनुभव उन्हें विद्रोह करने के लिए प्रेरित करते थे। बचपन में अपने पिता से चोरी-छिपे 'हश्र' ने अँग्रेजी फैशन के बाल रखे। कई दिनों तक वे पिता की आँखों में धूल झोंकते रहे। एक दिन जब वे बाज़ार से नंगे सिर लौट रहे थे, तब पिता जी ने इनकी चाल समझ ली। फिर क्या था, उसी समय नाई बुलाकर 'हश्र' का सारा फैशन कैंची को अर्पित कर दिया गया।

होनहार बिरवा—'हश्र'

'हश्र' का पूरा नाम था आग़ा मुहम्मद शाह। बचपन से ही वे कुशाग्र बुद्धि के थे। होनहार बिरवान के होत चीकने पात! शायरी और नाट्य-लेखन के प्रति रुझान बचपन में ही पैदा हो गया था और नाटक देखने का चाव भी। नाटक देखने, लिखने और मंचित कराने के संदर्भ में वे कई नाटक-कम्पनियों के सम्पर्क में आये।

कम्पनियों से परिचय तो 'प्रसाद' जी का भी था, पर वे मूलतः कवि थे और कवितानुमा नाटक भी लिखते रहे। काश 'प्रसाद' और रंगमंच का वहीं सक्रिय सम्बन्ध हो गया होता! प्रतिभा, कल्पना और रंगमंच का यह सम्मिलन कौन-सी छवियाँ उत्पन्न करता, इसकी तो अब कल्पना ही की जा सकती है।

'हश्र' पारसी अल्फ्रेड में

बनारस में 'हश्र' के प्रथम नाटक **आफताबे मुहब्बत** के मंचन (१८९७ ई०) के पश्चात् इस नाटक को बनारस के ही किसी प्रकाशक[1] ने मुबलिक साठ रुपयों में खरीद लिया। आग़ा 'हश्र' इसके पश्चात् बम्बई चले गये। बम्बई में इस समय पारसी अल्फ्रेड कम्पनी का सितारा बुलन्दी पर था। इस कम्पनी के मालिक श्री कावसजी खटाऊ स्वयं अच्छे कलाकार थे। कम्पनी के नाट्य-लेखक मुंशी मेंहदी हसन 'अहसन' तथा डाइरेक्टर अमृतलाल केशव नायक थे। काव्य-एवं-संगीत के धनी अमृतलाल ही कलाकारों का चयन करते थे। आग़ा 'हश्र' ने कावसजी के समक्ष कम्पनी को अपनी सेवाएँ देने का प्रस्ताव रखा। उन दिनों उनकी मसें भींग रही थीं और यौवन की देहलीज पर कदम रखा ही था। मन उमंगों से सराबोर था, अतः नाटककार की अपेक्षा शायराना अन्दाज़ अधिक था। कावसजी ने सिर से पैर तक आग़ा को देखा और पूछा—"क्या आप शायर हैं?" उत्तर मिला—"परीक्षा लीजिए।" उस समय कावसजी चाय पी रहे थे। चाय की प्याली उनकी मेज पर रखी हुई थी। उसीकी ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा—"इस पर कुछ शेर सुनाइए।" आग़ा ने तुरन्त कई शेर सुना दिये। कावसजी इनकी प्रतिभा पर रीझ गये। अमृतलाल के पास उन्होंने भेजा और ३५/– रु० माहवार पर आग़ा 'हश्र' की नियुक्ति अल्फ्रेड कम्पनी में हो गयी।

अल्फ्रेड कम्पनी में उन्होंने **मुरीदे शक, मारे आस्तीं, पाक दामन**[2], **ठण्डी आग**[2] और **असीरे हिर्स** नाटकों का प्रणयन किया।

---

१. यह नाटक जवाहर हक्सीर प्रेस, बनारस से प्रकाशित हुआ था। —**सम्पादक**
२. इन दोनों नाटकों के नाम 'हश्र' के नाटकों की प्रामाणिक सूची में नहीं हैं।
—**सम्पादक**

नौरोजजी की मण्डली में

इसके बाद इस कम्पनी के साथ आगा साहब का निर्वाह न हुआ और वे नौरोजजी पारसी की कम्पनी में चले आये और यहाँ **दुरंगी दुनिया उर्फ़ मीठी छुरी** तथा **दामे हुस्न,** इन दोनों नाटकों की रचना की। मंच पर व्यावसायिक दृष्टि से इन दोनों नाटकों को अभूतपूर्व सफलता मिली। इससे प्रभावित होकर अल्फ्रेड कम्पनी उन्हें अधिक वेतन देकर पुनः अपने यहाँ ले आयी। यहाँ आकर 'हश्र' ने अपने पुराने नाटक **पाक दामन** की पुनर्रचना की और शीर्षक दिया **शहीदे नाज़**। फिर अल्फ्रेड कम्पनी से मनमुटाव हो गया और इस कम्पनी से आगा साहब ने पुनः विदा ले ली।

ठूँठी की मण्डली में 'हश्र'

'हश्र' के पास रचनाकार का स्वाभिमान था। यह स्वाभिमान ही रचनाकार के पैरों में सनीचर बाँध देता है। फलतः रचनाकार के साथ भटकाव चोली-दामन-सा जुड़ जाता है। यह भटकाव ऊर्जा भी प्रदान करता है और सक्रिय चेतना भी। आगा 'हश्र' आर्देशरजी ठूँठी के आमन्त्रण-आग्रह पर उनकी (पारसी नाटक) कम्पनी में चले गये। यहाँ 'हश्र' को पहले की अपेक्षा अधिक वेतन भी मिला। इस कम्पनी के लिए उन्होंने **सफेद खून** और **सैदे हवस** नाटकों की रचना की। फिर यहाँ से भी आगा साहब चल दिये।

'हश्र' न्यू अल्फ्रेड के साथ

आगा 'हश्र' अब 'न्यू अल्फ्रेड' कम्पनी में आ गये। यहाँ उन्होंने **ख्वाबे हस्ती** और **खूबसूरत बला** नाटक लिखे। दोनों 'हश्र' के परिपक्व नाटक हैं। इसी समय उन्होंने सैयद काज़िम हुसैन 'नस्र' लखनवी[४] के नाटक **इन्कलाबे हिन्द** का भी सम्पादन कर उसे रंगमंचीय अनुकूलता प्रदान की।

हैदराबाद में अपनी कम्पनी की स्थापना

न्यू अल्फ्रेड छोड़कर आगा 'हश्र' हारूँजी सेठ की कम्पनी (राइज़िंग स्टार) में चले आये—बम्बई से पूना। इस कम्पनी में आगा साहब की साझेदारी थी, पर साझेदारी अधिक दिनों तक नहीं चली। फलतः आगा साहब हैदराबाद आ गये। हैदराबाद के विभिन्न भागों का दौरा किया और एक कम्पनी[५] से भी जुड़े। **सिल्वर किंग उर्फ़ जुर्मे वफ़ा** नाटक की रचना यहीं और इसी कम्पनी के लिए की गयी। हैदराबाद में आगा 'हश्र' का मन रमा नहीं और अपनी कम्पनी को लेकर बम्बई आये, जहाँ वह समाप्त हो गयी।

---

३. यह नाटक 'पाक दामन' नहीं 'दामे हुस्न' था, जिसका पुनर्रचना के बाद नाम 'शहीदे नाज़' रखा गया। ४. 'नस्र' आगा 'हश्र' के मुंशी भी थे और शागिर्द भी। ५. हैदराबाद में 'हश्र' ने दि ग्रेट अल्फ्रेड थियट्रिकल कम्पनी स्थापित की थी।-सम्पादक

दूसरी कम्पनी की स्थापना

जीवन के उतार-चढ़ावों के बाद आगा 'हश्र' लाहौर लौट आये और सन् १९१३ में अपनी नयी कम्पनी इंडियन शेक्सपियर थियेट्रिकल कम्पनी बनायी। लाहौर में 'हश्र' का कवि अधिक जागरूक रहा और साहित्यिक गोष्ठियों में उन्होंने यथेष्ट सम्मान अर्जित किया। इस कम्पनी के लिए 'हश्र' ने **यहूदी की लड़की** (१९१३ ई०) तथा **बिल्वमंगल उर्फ भक्त सूरदास** (१९१५ ई०) तथा **वनदेवी** (१९१६ ई०) नाटकों की रचना की। यह कम्पनी भी अमृतसर जाकर टूट गयी।

इसी बीच सन् १९१४ में उनके पुत्र का अवसान हो गया। सन् १९१८ में उनकी धर्मपत्नी का भी निधन हो गया।

इंपीरियल कम्पनी के लिए नाटक

लाहौर से आगा 'हश्र' बम्बई आये और इम्पीरियल कम्पनी के लिए **पहली भूल** (अथवा पहला प्यार ?) नाटक लिखा। 'हश्र' के भानजे अब्दुल कुद्दूस 'नैरंग' के अनुसार प्रथम बार इसे कोरंथियन ने खेला। कालान्तर में यह नाटक **संसार-चक्र** शीर्षक से रंगमंच पर अभिनीत हुआ।

'हश्र' मादन थियेटर्स में

आगा 'हश्र' पुनः लाहौर आये, लाहौर से बनारस और बनारस से कलकत्ता आ गये, जहाँ जे०एफ० मादन ने मादन थियेटर्स के लिए इन्हें ११०० रु० प्रतिमाह पर नियुक्त किया। इस कम्पनी के लिए केवल दो नाटक लिखे—**मधुर मुरली** (१९१९ ई०) तथा **भगीरथ-गंगा** (१९२० ई०)।

'हश्र' का कलकत्ता-प्रवास उनके जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण समय है। इस प्रवास-काल में उन्होंने हिन्दी-नाटकों की रचना की। भारतेन्दु के पश्चात् हिन्दी में सही अर्थों में रंग-नाट्य-लेखक पैदा ही नहीं हुआ। मंच के लिए उपयुक्त नाटकों का अभाव अभी भी बना हुआ है। आज जो नाटक लिखे जा रहे हैं, वे भी प्रायः नगर-बोध के नाटक हैं और उनमें एक सीमित दायरे को ही कथ्य के रूप में ग्रहण किया जाता हैं। हिन्दी-मंच की दिशाएँ दिनोंदिन व्यापक हो रही हैं, पर उन दिशाओं को आकार देने की शक्ति अभी भी हिन्दी-नाट्य-लेखन अर्जित नहीं कर पाया है। नितान्त बौद्धिक उलझनों के घेरे में केवल उलझन-भरे संवाद वाले नाटक ग्राम या कस्बाई चेतना से असम्पृक्त हैं, अतः इस प्रकार के नाटक दर्शक पैदा करने में असफल रहते हैं।

हिन्दी नाट्य-साहित्य को आगा की देन

आगा 'हश्र' ने हिन्दी को १२ नाटक प्रदान किये : **बिल्वमंगल उर्फ भक्त सूरदास** (१९१५ ई०), **वनदेवी** (बाद में **भारत रमणी**, १९१६/१९२०), **मधुर मुरली**

(१९१८-१९ई), भगीरथ गंगा (१९२० ई०), हिन्दुस्तान (१९२१ ई०), पहला प्यार उर्फ संसार-चक्र (१९२३ ई०), आँख का नशा (१९२४ ई०), भीष्म (१९२५ ई०), सीता वनवास धर्मी बालक उर्फ गरीब की दुनिया (१९३० ई०), भारतीय बालक उर्फ समाज का शिकार (१९३१ ई०) तथा दिल की प्यास (१९३२ ई०)। ये सभी नाटक हिन्दी की अमूल्य निधि हैं। हिन्दी की सेवा करने वालों में आग़ा साहब का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इस्लामी संस्कृति के साथ ही भारतीय संस्कृति को इतने व्यापक नज़रिये से आग़ा साहब ने देखा और परखा था कि आज के क्षुद्र एवं संकीर्ण युग-बोध के गाल पर वह एक करारा तमाचा है। इस्लामी और भारतीय संस्कृतियों के समन्वय, सर्वत्र भारतीय नारी के आदर्शों एवं भारतीय मूल्यों की स्थापना, देश की ज्वलंत समस्याओं के क्रान्तिदर्शी समाधान के द्वारा उन्होंने राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में कदम उठाकर अग्रणी का कार्य किया। अफसोस है कि हमारी विश्वविद्यालयी शिक्षा और उसके पाठ्यक्रम ने इस महान प्रतिभा को अपने यहाँ आज तक स्थान नहीं दिया।

'हश्र' फिल्म जगत में

तीसरे दशक में ही मूक फिल्मों का दौर चल पड़ा। बाद में बोलती फिल्में भी आयीं। फिल्मों के लिए भी आग़ा साहब ने नाटक लिखे। शीरीं फरहाद, औरत का प्यार, यहूदी की लड़की श्रवण कुमार, किस्मत का शिकार, चण्डीदास, दिल की आग, भक्त कबीर और रुस्तम-सोहराब इस दिशा में लिखे गये महत्त्वपूर्ण नाटक है। यहूदी की लड़की ने अपने युग में कीर्तिमान स्थापित किया था।

सन् १९३४ में आग़ा साहब ने हश्र पिक्चर्स की स्थापना की और भीष्म प्रतिज्ञा के लिए काम करते-करते २८ अप्रैल, १९३५ को संध्या साढ़े छः बजे इस दुनिया से महाप्रयाण कर गये।

आग़ा साहब का सम्पूर्ण जीवन नाटकों के लिए समर्पित था। वे कई भाषाओं के जानकार थे। संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, अँग्रेजी और बँगला भाषाएँ उन्होंने सीखीं थीं। बँगला में भी एक नाटक उन्होंने लिखा था। उन्होंने रंग-नाटकों के लिए जो कार्य किया, वह अनुपम है।

जीवन का बहुआयामी स्वरूप, युग-बोध की संश्लिष्ट चेतना, भाषा का व्यावहारिक रूप, नाटकों का अंतरंग और बहिरंग, संवादों का सही गत्यात्मक रूप और गीतों की संरचना तथा भिन्न-भिन्न रसों-भावों का सटीक समावेश 'हश्र' की अपनी विशेषताएँ हैं। हरीश भादानी की पंक्तियाँ हैं :–

> ज़िन्दगी यों तो बहुत ही खूबसूरत है।
> सर झुकाया जाय, ऐसी एक मूरत है॥

जनार्दन भट्ट

पारसी रंगमंच और हिन्दी-नाटक

[इसमें कोई दो राय नहीं कि पारसी या पारसी-हिन्दी नाटक मंडलियों की दृष्टि अपने व्यवसाय पर रही है, किन्तु उन्होंने हिन्दी (और उर्दू को भी) कुछ रंग-नाटक तथा रंग-नाटककार दिये, जिनकी चर्चा और समादर बेताब युग (१८७६ से १९१५ ई० तक) और विस्तारित बेताब युग (१९१६ से १९३५ ई० तक) में ही होने लगा था। अब तो इन नाटककारों की कृतियों का मूल्यांकन उनके सही परिप्रेक्ष्य में होने लगा है, किन्तु सामान्यतः बेताब युग की नाटक मंडलियों तथा उनके नाटकों से क्षुब्ध और उन्हें हेय मानने वाले हिन्दी के साहित्यकार उन्हें हिन्दी और उर्दू, दोनों के शत्रु मानते थे, किन्तु आग़ा 'हश्र' के एक नाटक **'आँख का नशा'** देखने के बाद उनकी यह धारणा बदल गयी। वे आग़ा 'हश्र' को 'हिन्दी-नाट्य-सम्राट्' की उपाधि देने को भी प्रस्तुत हो गये। तो पढ़िये, आग़ा 'हश्र' के समकालीन हिन्दी के विद्वान जनार्दन भट्ट का लेख 'पारसी रंगमंच और हिन्दी नाटक', जो 'माधुरी', लखनऊ में सन् १९२८ के एक अंक में छपा था। **—सम्पादक**]

हिन्दी एक दिन राजभाषा बनेगी

इन दिनों बंगाल और दक्षिण भारत नाटक के केन्द्र हैं। नाटक ही इनका शगल है, नाटक ही इनका मनोरंजन। बंगाल के नाटककारों ने नाटक लिखकर बँगला साहित्य की जो उन्नति की है, वह किसी से छिपी नहीं है। दिन-प्रति-दिन नये-नये नाटक, जो पढ़ने और खेलने में समान रुचिकर हैं, छपते और प्रचलित होते जाते हैं। बँगला-साहित्य-भण्डार ऐसे-ऐसे नाटकों से परिपूर्ण है। दक्षिण में पूना और नासिक जैसे छोटे-छोटे स्थानों में मैंने दो-दो, तीन-तीन नाटक कम्पनियाँ खेल करते देखी हैं। जनता में क्या स्त्री, क्या पुरुष, सब समान रुचि से अभिनय देखते हैं, उनमें दिलचस्पी लेते हैं, टीका-टिप्पणियाँ करते और पत्रों में भाव-भाषा की स्तुतियाँ तथा निन्दा निकालते रहते हैं। यही नहीं, विद्वान लोग भी इसमें भाग लेते हैं, दोष-गुण की विवेचना करते और इस तरह अपने साहित्य के अंग को पूरा करते हैं। उत्तरी भारत में, प्रधानतः संयुक्त प्रांत में, पहले तो लिखने की भाषा

और है, और बोलने की भाषा और। आप पंजाब से बिहार तक चले जाइए, आपको भिन्न-भिन्न भाषा और भिन्न-भिन्न बोलियों का सामना करना पड़ेगा। नाटक साहित्य का आभूषण है। जब भाषा ही नहीं, तो साहित्य कैसा ! और, भाषा भी लिखने की अलग और बोलने की अलग। इन सब कठिनाइयों के कारण हिन्दी भाषा की उन्नति एक कठिन समस्या हो रही है। पर इतनी सरल, मधुर, सहज और सुन्दर दूसरी भाषा के न होने के कारण देशवासियों का ध्यान इसी भाषा की ओर आकर्षित हो रहा है। यह एक शुभ लक्षण है। इसलिए इसको एक दिन राजभाषा बनना पड़ेगा।

पारसी कम्पनियाँ हिन्दी-उर्दू की शत्रु

किन्तु कुछ पारसी कम्पनियों ने ही मानो यहाँ नाटकों का ठेका-सा ले रखा है। दूसरे लोगों में न तो इतना साहस है, और न इतनी धीरता कि व्यवसाय-रूप में अच्छे-अच्छे नाटक खेल कर उनके द्वारा धन और यश प्राप्त करें। इन पारसी कम्पनियों ने पहले तो कुरुचिपूर्ण, आशिक-माशूक के उर्दू नाटक खेलकर खूब धन कमाया, पर जब जनता का ध्यान हिन्दी नाटकों की ओर गया—यहाँ तक कि उर्दू-नाटक देखने वाली मुसलमान जनता भी हिन्दी-नाटक पसन्द करने और अपनाने लगी, तब तो इन पारसी-कम्पनियों ने अपना रुख इधर की ओर फेर दिया। इनका ध्येय रुपया पैदा करना है। ये कम्पनी वाले हिन्दी के उतने ही शत्रु हैं, जितने उर्दू के। इन लोगों के पास धन है तथा अन्य साधन भी। ये चाहें, तो अच्छे-अच्छे हिन्दी तथा उर्दू के नाटक बनवा सकते और उनको खेल कर जनता को मनोरंजन के साथ-साथ लाभ भी पहुँचा सकते हैं। पर चूँकि ये एक-मात्र व्यवसायी हैं, रुपया खींचना ही इनका काम है, अतः ये कभी नहीं चाहते कि जनता का ध्यान सुरुचि की ओर खिंचे। यदि ये अपने को विदेशी न समझते, यदि इनको जनता के साथ कुछ भी अनुराग होता, तो ये निश्चय ही इस ओर ध्यान देते। अब ये पारसी-कम्पनियाँ हिन्दी नाटक करने लग गयी हैं, अच्छे-अच्छे सामाजिक, ऐतिहासिक और धार्मिक नाटक न करके बेसिर-पैर के नाटक, जैसे—**वामन-अवतार, गणेश-जन्म, उषाहरण** इत्यादि बनवा और लाखों रुपये सीन-सीनरी में नष्ट कर, मेमों को नचवा, जनता के धन और समय का अपहरण करती हैं, जिसको देखने से तारीफ नाटक की नहीं, वरन् सीन-सीनरीं, नाच-रंग और ऊपरी तड़क-भड़क की होती है।

रुपया पैदा करना ही उद्देश्य

कलकत्ते की एक बड़ी प्रसिद्ध पारसी कम्पनी के सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध नाटककार से मुझसे बातचीत हुई। जब मैंने उनसे कहा कि आप अच्छे शिक्षापूर्ण सामाजिक नाटक क्यों नहीं लिखते, जिससे जनता को लाभ पहुँचे और उनकी

कुरुचि बदले, तो उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की और साफ शब्दों में कहा कि ये कम्पनी वाले कहते हैं–'हम यहां रुपया पैदा करने आए हैं. कुछ साहित्य-भण्डार भरने नहीं। देशोद्धार और समाज-सुधार का हमने ठेका नहीं ले रखा है। हमे तो जिसमें रुपया मिलेगा, वही करेंगे।' यह है उनका मनोमालिन्य ! कैसा उद्दंड जवाब हैं ! कैसी निडरता है ! ये वही नाटक कम्पनियां हैं, जो बड़े बाजार के, खासकर मारवाड़ियों के रुपयों से चलती हैं। यदि वे आज इनका आदर न करें, तो इनका एक दिन वहां ठहरना असम्भव हो जाय। पत्र-पत्रिकाओं की खरी-खरी टिप्पणियों पर बिगड़ जाने वाले स्वाभिमानी मारवाड़ियों का ध्यान मैं इस ओर आकर्षित करता हूँ।

हिन्दी नाटकों का श्रेय पारसी कम्पनियों को

अब प्रश्न यह है कि नाटक कैसे होने चाहिए। हिन्दी में नाटक का अभाव है। जो बने भी हैं, सो ऊट-पटाँग। किसी के सिर का पता नहीं है, तो किसी के पैर का पता नहीं। बनाने वाले हिन्दी भाषा के धुरन्धर विद्वान जरूर हैं, पर अपनी ज़िन्दगी भर में चार आने खर्च करके कोई नाटक नहीं देखा। खेलने की कौन कहे। इनके बने हुए नाटक पढ़ने-योग्य हो सकते हैं, पर खेलने लायक नहीं। इसका श्रेय तो इन्हीं, अच्छे-बुरे जैसे भी हों–पारसी कम्पनियों को ही देना चाहिए, जिनकी बदौलत हिन्दी मे कुछ ऐसे ड्रामा हो गये हैं, जो स्टेज में खेले जा सकें।

हिन्दी के प्रधान रंग-नाटककार

इन हिन्दी नाटककारों में पं० नारायणप्रसाद 'बेताब', श्रीयुत् हरिकृष्ण 'जौहर', पं० राधेश्याम 'कथावाचक' और पं० तुलसीदत्त 'शैदा' प्रधान हैं। इनके रचे हुए नाटक पारसी कम्पनियों के लिए निश्चय ही बड़े लाभदायक हैं, कोई-कोई जनता के लिए भी। गलती से कहिए या इन लोगों की अनभिज्ञता के कारण, कुछ दिनों से कलकत्ते की धर्मतल्ला-स्थित पारसी कम्पनी में एक सामाजिक नाटक खेला जा रहा है। नाटक क्या है, जादू है मनुष्य के चरित्र का जीता-जागता उदाहरण है। नाम है उसका '**आँख का नशा**'। उसका अभिनय देखकर निश्चय ही मेरी आंखों में नशा छा गया। इस तुच्छ लेखक ने हजारों तो नहीं, सैकड़ों रुपये इन कम्पनियों की भेंट किये है, पर ऐसा सुन्दर नाटक कभी नहीं देखा था। प्लाट मामूली, सीन-सीनरी कुछ नहीं, ड्रेस साधारण, पर भीड़ बेशुमार। भाषा ओजस्विनी और चित्ताकर्षक, तुकबन्दी का नाम नहीं, शब्दों की योजना कमाल की, न कोई कविता न कोई छंद, गाने पाँच या छः से ज्यादा न होंगे। पर आश्चर्य और महाआश्चर्य ! लिखा हुआ एक मुसलमान का !! नाटक देखकर मैं मन्त्रमुग्ध-सा हो गया। मुझे विश्वास न हुआ कि एक मुसलमान द्वारा यह नाटक लिखा गया होगा। सम्भव हैं, उपज

उसकी हो, और लिखाया गया हो किसी साहित्यिक मर्मज्ञ से, क्योंकि आजकल एक प्रथा-सी चल गयी है कि चीज दूसरे की हो, पर उसे अपनी कह देना कोई बड़ी बात नहीं है। मन में उत्कण्ठा हुई कि उनसे मिलें और देखें कि हिन्दी में टाँग अड़ाने वाले मियाँ हैं कैसे ? जी न माना और ढूँढ़ते-ढूँढते इनके मकान में जा पहुँचा।

आग़ा 'हश्र' से भेंट-वार्ता

लुङ्गी बाँधे, नंगे बदन एक मियाँ दिखलाई पड़े, जो रंग के गोरे, शरीर के सुडौल थे। चेहरे की मस्ती, बदन की गठन और सारे अंगों की फड़कन देख कर मालूम होता था कि मस्त हाथी झूम रहा है। आँखों से ज्योति निकल रही थी, एक से कम, दूसरे से ज्यादा। मैंने जाते ही पूछा—'क्या आपका ही नाम आग़ा मुहम्मद 'हश्र' काश्मीरी है ?' विस्मित हो, रुखाई से उत्तर दिया जैसे कोई तकाज़गीर को देख घबड़ा जाय, और उसको टरकाना चाहे। पर जब उनको मेरे आने का अभिप्राय समझ में आ गया, तो जी खोल कर मिले। उर्दू-लिपि में लिखा हुआ स्वरचित हिन्दी नाटक सुनाने लगे। नाटक सुनकर मेरा संदेह ही निवृत्त नहीं हुआ, वरन् हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न हुई कि एक मुसलमान ऐसी सुललित और अलंकृत भाषा में हिन्दी नाटक लिख सकता है, और हम लोग हिन्दी-भाषा-भाषी और अहम्मन्य विद्वान होकर भी अच्छी हिन्दी नहीं लिख सकते।

श्रीयुत् आग़ा मुहम्मद 'हश्र' काश्मीरी से बातचीत करने पर ज्ञात हुआ कि इन्होंने सब मिलाकर हिन्दी के दस* नाटक लिखे हैं। वह दुःख प्रकट करते हुए बतलाने लगे कि चूँकि लोग उन्हें मुसलमान समझ हिन्दी लिखने का अधिकारी नहीं समझते, अतः वह अपने नाटक छपाने का साहस नहीं करते, न अपना नाम ही प्रकाशित करते हैं। हम हिन्दी-साहित्य-प्रेमियों की ओर से उनको विश्वास दिलाते हैं कि यह उनकी गलत धारणा है, उनके रचे हुए हिन्दी नाटकों को हिन्दी-प्रेमी सादर ग्रहण करेंगे और निःसंकोच हो प्रकाशित करेंगे। विशेष परिचय पाने पर इनके सम्बन्ध में हम फिर कभी लिखेंगे, इस समय इनके आँख का नशा नाटक के विषय में कुछ कहना आवश्यक समझते हैं।

'आँख का नशा' का कथानक

नाटक का प्लाट सुन्दर है। युगल एक धनी-मानी युवक है। उसकी स्त्री सरोजनी एक सती-साध्वी और पति-परायणा नारी है। युगल की सोहबत बेनी प्रसाद नामक एक वेश्यागामी से हो गई थी। उसने उसको 'कामलता' नाम की एक

---

* आग़ा 'हश्र' ने कुल २८ नाटक लिखे, जिनमें १४ हिन्दी के नाटक हैं। सन् १९२८ तक उन्होंने हिन्दी में कुल दस ही हिन्दी के नाटक लिखे/रूपान्तरित किये थे, शेष नाटक उसके बाद लिखे। —प्रस्तोता।

वेश्या के मोह-जाल में फंसा दिया। एक धनी युवक को पाकर कामलता वेनी का तिरस्कार करने लगी। तिरस्कार से विक्षुब्ध हो बेनी ने अपनी नवजात लड़की को, जो कामलता से उत्पन्न हुई थी, माँगा। बहुत वाद-विवाद के पश्चात् यह निश्चय हुआ कि तीन वर्ष तक लड़की कामलता के पास रहे, बाद को बेनी उसे ले जाय। अविश्वास के कारण वेनी ने अपनी लड़की के हाथ पर अपना नाम 'बी० पी०' गुदवा दिया। युगल का एक चचेरा भाई माधव था। वह भी इसी के साथ रहता था, पर वह युगल की तरह चरित्र-भ्रष्ट न था। वह हर प्रकार से युगल को समझाता-बुझाता और सीधी राह पर लाने की कोशिश करता। घर कामलता को युगल से बहुत-कुछ प्राप्ति की आशा थी। उसने एक दिन जाल रचा। युगल के सामने अपनी माता से लड़ गयी। युगल ने माँ-बेटियों को हर तरह से समझाया, पर वहाँ तो दूसरा ही प्रपंच था, झगड़ा कैसे शान्त होता। वह रोने और युगल से अपनी रक्षा की प्रार्थना करने लगी। युगल का दिल पसीज उठा, और उसे अपने बाग़ वाले मकान में ले जाकर रखा। विरहिणी सरोजनी को माधव द्वारा ज्ञात हुआ कि युगल ने कामलता को लाकर पास वाले बाग़ के मकान में रखा है। विरह-व्याकुल सरोजनी अपने पति को समझाने-बुझाने के लिए बाग़ में पहुँची। युगल को न पा कामलता के पास गयी, और उससे बहुत अनुनय-विनय की (यह दृश्य बहुत ही भावपूर्ण है), पर सब व्यर्थ ! सरोजनी उसे मनाने और कामलता उस पर बिगड़ने लगी। युगल भी आ उपस्थित हुआ। दोनों ने अपनी-अपनी तरफ खींचने का प्रयत्न किया, पर कामलता का जादू चल गया। युगल सरोजनी पर बहुत बिगड़ा, और कामलता से माफी माँगने के लिए उसे बाध्य किया। पति-परायणा सरोजनी पति की आज्ञा शिरोधार्य कर कामलता से माफी माँगने वाली ही थी कि माधव, जो छिपा हुआ सब काण्ड देख रहा था, प्रकट हो गया। उसने युगल और कामलता, दोनों को फटकारा और कामलता से ही अपनी छुरी के बल पर माफी मँगवायी।

अन्त में कामलता के फेर में पड़ युगल ने अपने घर की सारी सम्पत्ति फूँक डाली और उसे कामलता से भी हाथ धोना पड़ा। कामलता फिर बेनी के साथ रहने लगी। कर्ज के बोझ से लदा हुआ युगल एक रोज कामलता के यहाँ पहुँचा, और उसको बेनी से प्रेम करते देख क्रोध से पागल हो गया। बेनी और युगल में द्वन्द्व-युद्ध शुरू हुआ। क्रोध में आकर बेनी ने अपनी पिस्तौल छोड़ दी, जिससे कामलता सदा के लिए ठण्डी हो गयी। अब तो बेनी घबराया। युगल वहाँ था ही, उसने अपनी बला युगल के माथे मढ़ने की गर्ज से अपनी पिस्तौल वहीं छोड़ दी और साफ निकल भागा। खून की खबर सुन पुलिस आ पहुँची और युगल को खूनी

समक्ष गिरफ्तार करने को होती है कि माधव वहाँ आ जाता है और सफाई से युगल को निकाल भागता है ।

वर्षों बाद, कामलता के गर्भ से उत्पन्न हुई बेनी की वही लड़की अब यौवन को प्राप्त हुई । नाम उसका कामिनी पड़ा । सदारंग सफ़रदाई के वश में रहने के कारण उसे भी वेश्या का अधम जीवन व्यतीत करना पड़ा ! पर वह इस काम से घृणा करती थी । एक दिन कामिनी कोठे पर बैठी हुई थी कि जाते हुए बेनी की निगाह उधर पड़ी । उसकी सुन्दरता पर बेनी लट्टू हो गया । कोठे पर आकर उसने सदारंग को पहचान लिया, परन्तु अपनी लड़की को न पहचान सका । सदारंग जानबूझ कर कुछ न बोला, और बेनी शराब के प्याले उड़ाने लगा और कामिनी बाई का नाच देखने लगा । अन्त में कामिनी को आलिंगन करते समय उसके हाथ पर खुदे हुए 'बी० पी०' पर उसकी निगाह पड़ी । वेश्या के वेश में अपनी ही पुत्री को अपने आगे खड़ी देखकर वह लाज के आँसुओं में डूबने-उतराने लगा । उत्तेजित हो बेनी ने सदारंग तथा कामिनी, दोनों को पिस्तौल से मार दिया ।

सरोजनी रोज देव-मन्दिर जाया करती थी । एक दिन युगल को भिखारी के वेश में, एक कोने में बैठा देख उसने पहचान लिया । सेठ उधारचन्द्र युगल की खोज में पुलिस लेकर पहुँच गया, और गिरफ्तार कराने ही वाला था कि यकायक बेनी ने आकर स्वयं खूनी होना स्वीकार कर लिया । युगल छूट जाता है, सरोजनी को उसका पति मिल जाता है ।

इस नाटक की भाषा सरल और सुन्दर है, अलंकार और व्यंग्योक्तियों से परिपूर्ण है । इस तरह के कितने ही वाक्यालंकार इस नाटक में मोती की तरह जड़े हुए हैं, जो इसकी शोभा को दूनी कर रहे हैं, जैसे–'अपने रूप और जवानी की दुकान चलाने के लिए जिस दिन यह बाजार में बैठी, उस दिन पाँच हजार तो इसकी एक मुस्कराहट से वसूल कर लूँगी ।' 'पान मुख को लाल कर सकता है, पर पेट नहीं भर सकता', 'रूप के सरोवर में मैं अब पत्थर की तरह डूबकर नहीं, वरन् काई की तरह ऊपर छाकर रहना चाहता हूँ ।' 'रूप और यौवन से सींचकर छल और कपट की दीवार खड़ी करो, मैं इस दीवार के पीछे अनन्त काल तक पिशाची नाच नाचा करूँगी', इत्यादि । पाठकों के मनोरन्जनार्थ इस नाटक का एक सीन अपने स्मरण के अनुसार लिखता हूँ, जिससे इस पर खासा प्रकाश पड़ जायेगा ।

'आँख का नशा' का एक दृश्य

कामलता–क्या देखते हो प्रीतम, कभी शराब के प्याले की तरफ, और कभी मेरे मुख की ओर ?

युगल–जब मैं तुम्हारे मुख की ओर देखता हूँ, तो यह मालूम होता है कि जवानी के प्याले में सौन्दर्य की मदिरा रस और रंग के साथ खेल रही है। नहीं समझ में आता, पहले किस पिऊँ–ग्लास की मदिरा या रूप की ?

कामलता–प्यारे, पीओ और खूब पीओ। एक को होठों से, दूसरी को आँखों से। (युगल चला जाता है) ये कामी पुरुष कितने झूठे और निर्लज्ज होते हैं ! अखबारों, लेक्चरों, नाविलों में, नाटकों में, समाज में, सब जगह हम वेश्याओं को बाजार की घृणित कुतिया कहते हैं, और फिर एक झूठी मुस्कराहट के लिए उसी कुतिया को 'हृदयेश्वरी' और 'सुन्दरी' कहकर अपना थूका हुआ आप ही चाटते हैं।

(सरोजनी का प्रवेश)

सरोजनी–(स्वगत) प्रेम की अस्थिरता मुझे यहाँ तक खींच लायी, किन्तु अब आगे पाँव नहीं उठते। छिः ! छिः ! मुझे यहाँ न आना चाहिए था। (कामलता को देखकर) क्या तुम्हीं कामलता हो ?

कामलता–हाँ, तुम कौन ?

सरोजनी–पहले सरोजनी, अब अभागिनी।

कामलता–पहचान गयी। तुम्हारे पति से यह नाम सुन चुकी हूँ। किन्तु यह क्या कहा ? ऐसा तेज, ऐसा रूप और अभागिनी ?

सरोजनी–इसे रूप न समझो। यह मेरे जले हुए भाग्य की राख है, जिसे विधाता ने मेरे मुख पर मल दिया है। कामलता ! क्या तुम नारी हो ?

कामलता–तुम क्या समझती हो ?

सरोजनी–यदि तुम नारी हो, तो एक अभागिनी नारी के दुःख को ज़रूर समझोगी। जानती हो, कौन-सी वस्तु छिन जाने पर नारी का चेहरा मुरझाये हुए पीले पत्ते की तरह सूख जाता है ? जानती हो, किस वस्तु के अभाव से सारा संसार चिता के समान धक-धक जलता हुआ दिखायी देता है ? कामलता, जिस वस्तु के अपनाने के लिए हिन्दू नारी देवताओं को रात-दिन पुष्पाञ्जलि चढ़ाती है, जिस वस्तु के सामने हिन्दू अबला स्वर्ग की सम्पत्ति को भी तुच्छ समझती है, उसी वस्तु के लिए मैं तुम्हारे पास प्रार्थना लेकर आयी हूँ। तुम नारी हो, तब क्या एक दुखिया नारी पर दया न करोगी ?

कामलता–यदि हो सका तो। कहो क्या कामना है ?

सरोजनी–जो सोहाग की शोभा है, माथे का तिलक है, भाग्य का सिन्दूर है, हृदय का राजा है, उसकी कामना के सिवा एक हिन्दू नारी की क्या कामना हो सकती है ? मैं एक बड़े घर की कुल-वधू होकर, भिखारिणी की तरह, तुम्हारे सामने हाथ फैलाती हूँ। भिक्षा दो। मुझे मेरे पति की भिक्षा दो।

कामलता–क्या तुम्हारा पति तुम्हें दे दूँ ?

सरोजनी–हाँ, भिखारिणी का धन भिखारिणी को दे दो, और आज संसार में प्रमाणित कर दो कि जैसे हीरा परनाले की कीचड़ में गिरकर भी अपनी चमक नहीं छोड़ता, वैसे ही भारत की अभागिनी नारियाँ पतित होने पर भी पुण्य की महिमा नहीं भूल जाती।

कामलता–ठहरो, मुझे सोचने दो। (स्वगत) इसकी दुःख-भरी पुकार से मेरी सोयी हुई दया करवट लेने लगी। क्या मैं उसे झकझोर के जगा दूँ ?

सरोजनी–क्या सोच रही हो ? मेरा धन, सुख, मान, नींद, चैन, कर्म, मोक्ष, लोक, परलोक, जो कुछ है, पति है। उनके बिना मेरा इस संसार में कुछ नहीं, किन्तु तुम्हारे लिए सब कुछ है, क्योंकि मैं धर्म-बन्धन से बँधी हुई घर की स्त्री हूँ और तुम स्वतन्त्र वेश्या।

कामलता–क्या कहा–'वेश्या' ? ओह ! मैं दया करने चली थी, तुमने ठीक समय पर थप्पड़ मारकर मेरी भूल मुझे सुझा दी। निश्चय मैं एक वेश्या हूँ। पर सुनो, एक समय था, जब मैं भी धर्मपरायणा थी पवित्र थी, कलंक के स्पर्श से बचना और पुण्य की शरण में जीवन बिताना चाहती थी। किन्तु तुम्हारे ही भाइयों और बेटों ने, तुम्हारे ही समाज के भद्र पुरुषों ने, मेरे और स्वर्ग के बीच में पाप की दीवार खड़ी कर दी। मैं कामना और यत्न करने पर भी देवी न बन सकी। क्या बनी ? एक वेश्या ? जानती हो, क्यों वेश्या बनी ?

सरोजनी–हमें यह पाप की कहानी न सुनाओ।

कामलता–सुनो, सुनो, दुनिया में कौन है, जिससे भूल नहीं हुई ? स्त्री-जाति भी कामी पुरुषों के लोभ और धोखे में फँस कर भूल कर बैठती है, किन्तु अपनी भूल का ज्ञान होने पर जब वे भविष्य में पवित्र जीवन बिताने के लिए दो वस्त्र और एक मुट्ठी अन्न का सहारा ढूँढ़ती हैं, तब वही दया और उपकार का उपदेश देने वाले गूँगे और बहरे बन जाते हैं। समाज की चौकठ से, गृहस्थ के घर से, अनाथालय और विधवाश्रम के दरवाजे से दुतकारे जाने के बाद, निरुपाय होकर, वे जिस कलंक-रूपी राक्षस से हाथ छुड़ाकर भागी थीं, अन्त में उसी के चरणों में जा गिरती हैं, और वेश्या बन जाती हैं। यदि यह पाप है, तो इस पाप का दोष उस समाज पर है, जो पाप को बुरा कहना तो जानता है, किन्तु पाप का उद्धार करना नहीं जानता।

सरोजनी–मैं तुमसे बहस करना नहीं चाहती, केवल अपने प्राण-पति को चाहती हूँ। एक भिखारिणी तुम्हारे हृदय के दरवाजे पर आवाज़ दे रही है। दो ! दो ! इसे दया की भिक्षा दो।

कामलता–समय कैसा बलवान है ! शिव की जटा में निवास करने वाली गंगा को भी पृथ्वी पर उतरना पड़ा है। जो समाज अज्ञानता की प्रथम भूल पर भी दया नहीं करता है, आज उसी समाज की पतिव्रता स्त्री हाथ पसारकर, एक वेश्या से दया की भीख माँग रही है। नहीं ! नहीं ! समाज के किसी पुरुष और किसी नारी ने हम पर दया नहीं की। हम भी किसी पर दया नहीं करेंगे। हम वेश्या हैं, घर की नारियों का सोहाग, उनके बेटों, भाइयों और पतियों का जीवन नष्ट करना–यही हमारा धर्म है।

सरोजनी–नहीं, नहीं, दान देने की शक्ति रखकर भिखारिणी को दरवाजे से न लौटाओ। मैं लोक-परलोक की सम्पत्ति, ब्रह्माण्ड का राज्य नहीं माँगती। केवल सागर से एक बिन्दु, सूर्य से एक किरण, कुबेर से एक पैसा और अनन्त सुख में खेलती हुई नारी से एक दया की दृष्टि माँगती हूँ। तुम लाली और पाउडर के द्वारा रात-दिन बीमारी और बुढ़ापे से क्षीण होते जाने वाले रूप की रक्षा किया करती हो, क्या आज अपने दया-धर्म की रक्षा न करोगी ?

कामलता–घर की हर एक स्त्री हम वेश्याओं की शत्रु है। शत्रु पर दया नहीं की जाती। तुम भी नारी हो, तुम भी रूप वाली हो, तुम भी प्रेम-भरा गुस्सा और हँसी मिला हुआ रोना जानती हो। यदि तुम्हारे होंठों में समझाने और रूठे हुए को मनाने की शक्ति है, तो अपने पति को मेरे बाहु-बन्धन से छुड़ा ले जाओ। आज देखना है कि किसमें अधिक बल है–स्त्री के प्रेम में या वेश्या के प्रेम में ?

सरोजनी–इतनी कठोरता ! इतना अभिमान ! अच्छा, मैं भी देखती हूँ कि पाप पुण्य का चेहरा लगाकर कहाँ तक प्रेम और विश्वास को धोखा दे सकता है ? राक्षसी ! तुम अपने सारे छल और बल से भी, स्त्री और स्वामी के जन्म-जन्म का बन्धन कभी नहीं तोड़ सकती। आज हो, कल हो, दस वर्ष के बाद हो, किन्तु वह दिन निश्चय आयेगा, जब मेरे प्रभु हृदय की प्यास बुझाने के लिए तुम्हारे रूप की मरु-भूमि से त्राहि-त्राहि कहते हुए घर के आनन्द-सरोवर की ओर दौड़ेंगे और तुम्हें उसी तरह छोड़ देंगे, जिस तरह लोग मन्दिर में प्रवेश करते समय गंदी जूती को बाहर छोड़ देते है।

युगल–(वेग से आकर) प्रिये! बादल घिरे आ रहे हैं, चलो भीतर......(सरोजनी को देखकर मन में) ऐं, यह क्या ? पाप की प्रतिमा के सामने पुण्य की मूर्ति खड़ी है ! बोल विश्वासघातक, बोल। अब इसे तू क्या उत्तर देता है ? (सरोजनी से) यहाँ तुम कैसे आयी ?

इसके उपरान्त सरोजनी तथा कामलता भरसक प्रयत्न युगल को अपनी-अपनी ही तरफ चलाने का करती हैं। पर सरोजनी असफल रहती है, और युगल द्वारा

कामलता से क्षमा माँगने के लिए बाध्य की जाती है। पति-परायणा सरोजनी ज्यों ही क्षमा माँगने के लिए 'क्ष—' शब्द का उच्चारण करती है कि युगल का छोटा भाई माधव, जो छिपा हुआ सब काण्ड देख रहा था, प्रकट हो जाता है, और कहता है—

माधव—सावधान। क्या करती हो? जिस दिन पतिव्रता पाप के आगे माथा झुकावेगी, उसी दिन सतीत्व का महत्त्व पृथ्वी से नष्ट हो जायेगा, और धर्म के मन्दिर की दीवाल हिल जायगी। भारत अपनी दुर्दशा पर चीख मारकर रो उठेगा।

सरोजनी—दासी क्या करे? पति की आज्ञा स्वीकार करना इस दासी का धर्म है।

माधव—घर की लक्ष्मी को दासी समझना, और जिस प्रेम पर उसका अधिकार हो, उस प्रेम को, पर-स्त्री को दे देना, क्या यही पतिदेव की महानता है?

युगल—तुम लोगों ने मेरे सुख की सृष्टि में प्रलय मचा दी। मेरे शान्ति-कुञ्ज में पहले यह आँधी बनकर आयी, अब तुम वज्र बनकर आये हो। मालूम हुआ, तुम दोनों मेरा सुख नहीं देख सकते।

माधव—सुख! कहाँ है सुख? क्या इस शराब की बोतल में सुख है? क्या सेंट और लवेण्डर से महँकती हुई इस कुलटा की टेढ़ी भौं और माँग में सुख है? धोखा न खाइए। आप आँख के नशे को, जवानी के पागलपन को सुख समझते हैं? किन्तु सुख का देवता श्मशान-भूमि में नहीं, सत्य के मन्दिर में निवास करता है, और सुख की गंगा पाप की लंका में नहीं, धर्म-रूपी काशी में बहती है।

युगल-तर्क करने से हठ और हठ से क्रोध बढ़ता है, इसलिए जाओ। मैं अपने जीवन का रास्ता आप पहचानता हूँ।

माधव—नहीं जीवन के रास्ते को पहचानना तो क्या, आप उसे देख भी नहीं सकते।

युगल—क्यों?

माधव—क्योंकि इसने अपने रूप और छल के हाथों से आपकी आँखें बन्द कर रखी हैं। यदि आप देख सकते, तो साफ़ दिखाई देता कि यह विश्वास है, यह धोखा; यह प्रेम है, यह लालसा; यह सेवा है, यह स्वार्थ है; यह जीती है पति के लिए, और यह जीती है अपने सुख के लिये; इसे धर्म प्यारा है, और इसे धन प्यारा है।

कामलता—तुम कौन हो, जो आते ही सावन के बादलों की तरह बरसने लगे?

माधव- मैं दर्पण हूँ, किन्तु वह शीशे का दर्पण नहीं, जिसमें तुम अपने बालों के घूँघर आँखों का काजल और गालों का पाउडर देखती हो। मैं वह दर्पण हूँ, जिसमें तुम्हें अपना असली रूप दिखाई देगा—वही रूप, जिसे तुम बाज़ार में बेचा करती हो—वही रूप, जो वेश्या के चेहरे पर कोढ़ की सफेदी और पतिव्रता के चेहरे पर ईश्वर का आशीर्वाद दिखाई देता है।

युगल—तुम मेरे छोटे भाई हो, इसलिए मुझे उपदेश देने का अधिकार तुम्हें नहीं है।

माधव–छोटा और बड़ा क्या ? यदि सच्ची बात और कल्याणकारी उपदेश दीवार पर लिखा हो, तो उसे भी ग्रहण करना चाहिए। ईश्वर ने पाप और अधर्म की रक्षा के लिए आपको रुपया नहीं दिया है। आज इस दरिद्र भारत देश में लाखों विधवाएँ अन्न और वस्त्र के लिए, लाखों अनाथ बच्चे पालन-पोषण के लिए, लाखों बेरोजगार आदमी एक वक्त रोटी के लिए तरस रहे हैं। उन रोती हुई आत्माओं के बदले इन हँसती हुई पाप की मूर्तियों को रुपया देना धन, धर्म और देश की हत्या करना है।

'हश्र' को 'हिन्दी नाट्य-सम्राट' की उपाधि

अस्तु, यह सुललित और अलंकृत भाषा का हिन्दी नाटक यदि प्रकाशित हो, तो एक अलौकिक ग्रन्थ समझा जायगा और नाटक के अंग को पूरा करेगा। ऐसे प्रतिभाशाली लेखक को 'हिन्दी नाट्य-सम्राट' की उपाधि दी जाय, तो अतिशयोक्ति न समझी जायगी। लोगों की धारणा है कि यह नाटक उक्त आगा साहब का लिखा हो ही नहीं सकता। कारण यह बतलाया जाता है कि न तो वह हिन्दी लिख सकते हैं, न पढ़ ही सकते हैं। कुछ भी हो, यदि यह भाव और भाषा उनकी है, तो इसके लिए वह स्तुत्य हैं, चाहे वह अरबी में लिखें या लैटिन में। उपन्यास-सम्राट श्रीयुत प्रेमचन्द्र जी भी, ऐसा सुना गया है, पहले अपनी रचनाएँ उर्दू में लिखते थे। खैर, मान लिया जाय कि वह दूसरों से लिखवाते हैं। पर मुझे विश्वस्त सूत्रों से पता चला है कि कलकत्ते की प्रसिद्ध धनी नाटक कम्पनियाँ श्री आगा 'हश्र' को उनके नाटकों का मूल्य दस हजार रुपये तक देती हैं। क्यों नहीं वही लेखक स्वयं पहुँच कर धन उपार्जन करते और एक झूठे आदमी की पोल खोल देते ? मैं यह बात निष्पक्ष भाव से लिख रहा हूँ, और नाटक-प्रेमियों से इसके सम्बन्ध की रहस्य-भरी बातों के जानने का उत्सुक हूँ। मैं उनके और भी हिन्दी नाटकों की समालोचना क्रमश: करूँगा, और जैसा कुछ है, पाठकों के सामने उपस्थित करूँगा।

नाटक की भूमिकाएँ

नाटक सुन्दर और भावपूर्ण हो और पात्र-गण सुघर और कुशल, तो सोने में सुगन्ध आ जाती है। इस नाटक में वही बात है। सब पात्र-गण अपना-अपना पार्ट बहुत ही उत्तमता से अदा करते हैं। खासकर बेनी प्रसाद का पार्ट, जो मुसलमान सज्जन करते हैं, वह बहुत ही अच्छा करते हैं। नाम है उनका श्री मुहम्मद ईशाक। ऐसा उत्तम और स्वाभाविक पार्ट करते मैंने किसी को नहीं देखा हैं। दूसरा अत्युत्तम नाट्य-कला-द्योतक पार्ट कामलता वेश्या का मिस शरीफा द्वारा होता है, जिसके देखने से ज्ञात होता है कि उक्त महिला नाट्य-कला में कितनी प्रवीण है। तीसरा पार्ट युगल का एक पारसी सज्जन, जिनका नाम श्रीयुत दादाभाई

सरकारी है, करते हैं। लगभग साठ वर्ष के होने पर भी आप नवयुवक का पाठ करते हैं, और खूब करते हैं। सरोजनी का पार्ट श्रीयुत् नर्मदाशंकर (उनकी आवाज़ उनके अनुकूल न होने पर भी) बहुत अच्छा करते हैं। बाकी पार्ट भी—जैसे सदारंग सफ़रदाई, राजकुँवरि (वेश्या की खाला), सेठ उधारचन्द्र और कामिनी के-अच्छे होते हैं। सबसे निकृष्ट और अस्वाभाविक पार्ट सुप्रसिद्ध मास्टर मोहन का होता है। उनका एक साँस में अपना पार्ट कह जाना तथा चेहरा बनाना नाट्य-कला और स्वाभाविकता के सर्वथा प्रतिकूल है। बेनीप्रसाद का पार्ट करने वाले ऐसे सुघर ऐक्टर को करीब सौ रुपये मिलना और माधव का पार्ट करने वाले मास्टर मोहन को करीब सात सौ मिलना, यह कम्पनी वालों की गुण-ग्राहकता का द्योतक है! मैं ऐसे सुघर ऐक्टरों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ और कम्पनी के मालिक से सविनय निवेदन करता हूँ कि वह सदा ऐसे-ही-ऐसे नाटक बनवाकर खेलें, और जनता का मनोरञ्जन करते हुए धन और यश प्राप्त करें।

('माधुरी', लखनऊ, वर्ष ७, खंड १, संख्या ४, १९२८ ई॰)

—प्रस्तोता : डॉ॰ अज्ञात

———

डॉ० चन्द्रलाल दुबे

'हश्र'-युगीन नाटकों की मंचन-प्रक्रिया

[पूर्वाभ्यास और मंचन की तैयारी पारसी-हिन्दी रंगमंच का एक अनिवार्य अंग था, जिसमें महीनों लग जाते थे। यही कारण था कि उस युग की प्रस्तुति में जो समग्रता और पूर्णता के दर्शन होते रहे हैं, आज अव्यावसायिक रंगमंच की प्रस्तुतियों में प्रायः उनका अभाव रहता है। नाटक-रचना के उपरान्त भूमिका-वितरण तथा सम्वाद-वाचन से लेकर सम्पूर्ण वाचिक, आंगिक तथा आहार्य अभिनय तक सभी कुछ पर पूर्वाभ्यास के मध्य अन्तिम रूप से मालिक-निर्देशक की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक रहता था। इस पूर्व-स्वीकृति के उपरान्त ही नाटक मंच पर प्रस्तुत किया जाता था। सभी कलाकारों के सम्वादों पर तालियों की गड़गड़ाहट और गानों पर 'वन्स मोर' की धूम मच जाया करती थी। सामाजिकों का यह संरक्षण ही तत्कालीन नाटक-मण्डलियों की शक्ति रहा है। —सम्पादक]

थियेट्रिकल कम्पनियों के जमाने में हर नाटक-मण्डली का अपना नाटककार अर्थात मुंशी हुआ करता था। मुंशी जी कम्पनी के अभिनेताओं एवं अभिनेत्रियों को सामने रखकर ही अपने विशिष्ट पात्रों का सृजन करते थे। जैसे-जैसे लेखन-कार्य करते जाते थे, वैसे-वैसे निर्देशक-मालिकों को सुना-सुनाकर दृश्यों को 'पास' करा लेते थे। जब पूरा नाटक इस तरह तैयार हो जाता था, तब मंचन के लिए पूर्वाभ्यास (रिहर्सल) प्रारम्भ किया जाता था। नाटक पांडुलिपि के रूप में ही रहता था, न कि मुद्रित रूप में।

पूर्वाभ्यास

पूर्व-नियोजन के अनुसार निर्देशक सर्वप्रथम कम्पनी के अभिनेताओं-अभिनेत्रियों में भूमिकाएँ बाँट देता था। अभिनेता नाटककार के साथ बैठकर अपने संवाद दुहराता था। इसमें शुद्ध उच्चारण की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। आवश्यकतानुसार नाटककार कभी-कभी संवादों में भी संशोधन कर देता था। इस प्रकार अभिनेता अपने संवाद दुहरा-दुहरा कर रट लेता था और संवादों का आशय भी समझता जाता था। प्राम्प्टिंग की सुविधा न रहने के कारण अभिनेताओं को अच्छी तरह से कथोपकथनों को याद करना पड़ता था। त्रुटि होने पर पार्ट खोने या कभी-कभी

नौकरी खोने का भी डर बना रहता था। सभी नट दिन में पूर्वाभ्यास के लिए जुट जाते थे। खड़े होकर आरोह-अवरोह के साथ संवाद सुनाते जाते थे।

इस वाचिक अभिनय के उपरान्त आंगिक अभिनय की ओर ध्यान दिया जाता था। इसमें अंगसंचालन, स्थान-परिवर्तन आदि गतिसूचक अभिनय सिखाया जाता था। फिर प्रसंगानुसार सभी अभिनेताओं को मंच पर एकत्रित कर सम्पूर्ण अभिनय कराया जाता था। इसमें सापेक्ष्य गतिसंचालन तथा प्रवेश-प्रस्थान पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इस समय सभी प्रकार के अभिनय करके दिखाना पड़ता था। यह पूर्वाभ्यास महीनों चलता था। इस समय निर्देशक अथवा मंचव्यवस्थापक रंगशाला के सबसे पीछे के भाग में बैठकर दर्शक की हैसियत से निरीक्षण करता था। आवश्यकतानुसार निर्देशक सुधार लाने के लिए सूचनाएँ देता रहता था।

गीतों का अभ्यास

संगीत तो पारसी रंगमंच का आवश्यक तत्त्व था। नट को हारमोनियम के साथ बैठकर पदों/गीतों की तर्ज आदि सीखकर रियाज करना पड़ता था। निर्देशक की अन्तिम स्वीकृति पाने के बाद ही यह पूर्वाभ्यास प्रारम्भ होता था।

सीन-सीनरी तथा परिधान

इसी बीच निर्देशक अन्य सहयोगी निर्देशकों की सहायता से नाटक के लिए आवश्यक नयी सीन-सीनरी की कल्पना एवं नियोजन करके पेण्टर द्वारा उसकी तैयारी करवा लेते थे। कम्पनी का जैसे अपना पेण्टर होता था, वैसे ही निजी दर्जी भी होता था। दर्जी कपड़े सीने की तैयारी में लग जाता था।

समग्र पूर्वाभ्यास

पूर्वाभ्यास में विभिन्न कोणों से सर्वांग अभिनय पर ध्यान केन्द्रित रहता था। अभी तक अलग-अलग इकाई के रूप में पूर्वाभ्यास कराया जाता था। अब समस्त नाटक को एक इकाई मानकर पूर्वाभ्यास होता था। सीन-सीनरी, वेशभूषा, नृत्य, संगीत सभी अवयवों के साथ साभिनय पूर्वाभ्यास कराया जाता था। समस्त नाटक का सम्पूर्ण प्रदर्शन मंच पर होता था। दर्शक पर गहरा प्रभाव डालने की दृष्टि से नाटक को भरसक अपने आप में पूर्ण बनाने की दृष्टि से जोर लगाया जाता था। जब तक मालिक और निर्देशक 'हाँ' नहीं कहते थे, तब तक अन्तिम स्वरूप प्रदान करने में जी-तोड़ मेहनत करते थे। जब मालिक और निर्देशक से अन्तिम प्रदर्शन (ग्रांड रिहर्सल) के लिए अनुमति मिल जाती, तभी दर्शकों के सम्मुख नाटक का आरंगण होता था। इस अवस्था तक आने के लिए महीनों लग जाते थे और हजारों रुपये खर्च हो जाते थे।

नेता द्वारा उद्घाटन

प्रथम प्रदर्शन के अवसर पर कभी-कभी किसी नेता को आमन्त्रित कर पहले खेल का उद्घाटन कराया जाता था। सामान्य रूप में कम्पनी का स्वामी ही 'ड्राप' उठाने के पूर्व छोटी-सी पूजा-विधि सम्पन्न करता था, जिसके बाद ही 'ड्राप' उठता था।

कोरस

मुख्य पर्दे के उठते ही सभी नाटकों में प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में सामान्यतः 'कोरस' गवाया जाता था। परदे के उठते ही सभी कलाकार पूरी वेशभूषा और बनाव-शृङ्गार से सजधज कर किसी देवी-देवता की स्तुति में प्रार्थना-गीत गाते थे। कहीं-कहीं सूत्रधार और नटी आते थे और नाटक को प्रारम्भ करते थे। आगा 'हश्र', काश्मीरी का प्रसिद्ध नाटक **बिल्वमंगल** कृष्ण और नारद के वादविवाद से शुरू होता है। स्वर्ग में इन दोनों की बातचीत दर्शकों को नाटक के मुख्य विषय से परिचित कराती है। वे एक प्रकार से नट और नटी के कर्तव्य को ही पूरा करते हैं। इसके बाद नाटक प्रारम्भ हो जाता था। नाटक का प्रारम्भ इतना मोहक रहता था कि प्रेक्षक मुग्ध रह जाते थे।

संवाद का महत्त्व

दर्शकों की संख्या हजारों की तादाद में होने के कारण सामान्यतः नट को ऊँची आवाज में ही संवाद बोलना पड़ता था। पारसी रंगमंच के नाटकों में संवादों पर रचना की दृष्टि से भी विशेष ध्यान दिया जाता था। संवाद इतने महत्त्वपूर्ण होते थे कि इन्हीं के सहारे दर्शक रंगमंच से बंधे रह जाते थे। आकर्षक, चमत्कार दर्शाने वाले दृश्य भी अवश्य रखे जाते थे। नृत्य दिखलाने का प्रचलन ज्यादा था। पारसी-रंगमंच का अभिनेता गायक भी होता था और नृत्य की भी जानकारी रखता था।

कृत्रिम अभिनय तथा 'वन्स मोर'

आजकल के नाटकों में जिस तरह स्वाभाविक अभिनय होता है, इसके विपरीत उस काल के नाटकों में अत्यभिनय पर जोर दिया जाता था। यह कृत्रिम अभिनय ही पारसी रंगमंच की जान थी और उस समय के प्रेक्षकों को यही भाता भी था। पारसी रंगमंच के नाटकों के मंचन में 'वन्स मोर' का विशेष स्थान था। जो भी संवाद, नृत्य या गीत प्रेक्षकों को अभिभूत करता था, उस पर गड़गड़ाहट से तालियाँ पीटी जाती थीं और 'वन्स मोर' की आवाजें गूँज उठती थीं। फिर अभिनेता के लिए यह अनिवार्य बन जाता था कि वह प्रेक्षकों की इच्छा की पूर्ति करे। पूर्वाभ्यास के समय ही निर्देशक को इसका अन्दाजा लग जाता था कि किन-किन

स्थानों पर 'वन्स मोर' की माँग होगी । अभिनेता भी 'वन्स मोर' लेने के लिए अभिनय-कला के प्रदर्शन में अपनी पूरी ताक़त लगा देता था ।

'कुएं' का महत्त्व

पारसी रंगमच के चमत्कारी दृश्यों के प्रस्तुतीकरण का रहस्य राधेश्याम कथावाचक के शब्दों में इस प्रकार है—'स्टेज के बीच में एक कुआं भी रहता था, जिसका रास्ता 'सुरंग' बना कर भी रखा जाता था, बिजली की रोशनी भीतर रहती थी । पृथ्वी में धँस जाना या पृथ्वी से निकल आना इस कुएँ द्वारा होता था । देवी-देवताओं का प्रकट होना या अन्तर्धान होना तो इस 'कुएं' द्वारा ही प्रायः रखा जाता था । इसके अतिरिक्त एक मशीन भी ऐसी रहती थी कि जिस पर बिठाकर पार्ट करने वाले को ऊपर उठाया या नीचे गिराया जाता था ।

स्टेज मैनेजर के कर्त्तव्य

पर्दा उठाने-गिराने या संगीत-निर्देशन के सम्बन्ध में स्टेज-मैनेजर नाटक के समय क्या करता था, इसका वर्णन भी राधेश्याम कथावाचक ने किया है : 'ड्रामा सीन के पास स्टेज-मैनेजर रहता था । वह एक चकरी घुमाया करता था, जो लकड़ी की थी—पहियेनुमा होती थी और जिसकी आवाज़ ऐसी निकलती थी, मानो कोई चीज़ फट रही है । सीन ट्रांसफर के समय यही चकरी घुमाई जाती थी । स्टेज-मैनेजर ही ड्राप सीन उठाने-गिराने की घंटी भी बजाया करता था । डोरवाली हल्की-सी घंटी का सम्बन्ध रंगमंच के ऊपरवाले बांसों के मचान से भी रहता था, जहाँ पर्दा खींचने वाले एक-दो आदमी हाजिर रहते थे । स्टेज-मैनेजर की घंटी पर ही वे पर्दे उठाने-गिराने का काम करते थे । इन हाजिर रहने वाले कर्मचारियों की नौकरी भी बड़ी जिम्मेदारी की थी । बिजली का एक ऐसा स्विच भी स्टेज-मैनेजर के पास रहता था, जिसका बटन दबाते ही हारमोनियम मास्टर के आगे की हल्की-सी बत्ती जल जाती थी कि गाने की तर्ज शुरू करो या इस गाने की 'वन्स मोर' दी जाती है, फिर गाना होने दो ।

नाटक के प्रत्यक्ष मंचन में इतनी सजीवता रहती थी कि प्रेक्षकों को इसका पता भी नहीं चलता था कि तीन-चार घंटे कैसे व्यतीत हुए ।

अ० कु० 'नैरंग'

'हश्र' के प्रथम नाटक 'आफ़ताबे मोहब्बत' पर एक नज़र

[एक चुनौती को स्वीकार कर अठ्ठारह वर्ष के एक लड़के ने 'अहसन', लखनवी की **चन्द्रावली** के मुकाबले **आफताबे मोहब्बत** नाटक लिख डाला, जिसने उनके परवर्ती नाटकों पर भी प्रभाव डाला। यह लड़का था–आग़ा 'हश्र', तत्कालीन नाट्य-जगत का उदीयमान आफ़ताब (सूर्य) !

विद्वान लेखक ने 'हश्र' के इस प्रथम नाटक की भाषा, संवाद तथा गीत-शैली पर यथेष्ट प्रकाश डाला है।—**सम्पादक**]

आग़ा 'हश्र' ने अपना प्रथम नाटक **आफताबे मोहब्बत** सन् १८९७ ई० में १८ वर्ष की आयु में लिखा। इस नाटक के लिखने का कारण यह है कि उस ज़माने में 'अहसन', लखनवी का नाटककार के रूप में बहुत नाम था और जब वे बनारस आये, तो लोगों ने आग़ा साहब को उनके सामने पेश किया कि इन्हें भी नाटक लिखने का शौक है। इसके बाद किसी समय 'अहसन' साहब ने कहा–'लौंडा है, नाटक लिखना क्या जाने।' 'अहसन' के **चन्द्रावली** की बहुत धूम थी। आग़ा साहब ने इसी **चन्द्रावली** की तर्ज पर एक नाटक लिखा और उस नाटक का नाम भी **चन्द्रावली** के मुकाबले में **आफताबे मोहब्बत** अर्थात् प्रेम-सूर्य रखा।

नज्जू खाँ का ऐतिहासिक बयान

नज्जू खाँ साहब मरहूम बनारस के गवैयों में थे और उन्हें अपनी जवानी में नाटक में अभिनय करने का शौक भी था। उनके साथ १७ दिसम्बर सन् १९६४ को मेरे द्वारा किया गया इण्टरव्यू रोज़नामा **आज़ाद**, बनारस में छपा। उन्होंने जो बयान दिया, उसके टुकड़े की एक नकल इस प्रकार है :—

"मैं आग़ा 'हश्र' मरहूम (जन्म १८७९ ई०) से कई वर्ष बड़ा हूँ। बनारस में बुवा साब की कम्पनी शाह मियाँ जी के बाग़ में नाटक खेलती थी। यह बाग़ कबीर चौरा अस्पताल से सटा हुआ है, जो इस समय राधास्वामी बाग़ कहा जाता है। अहसन साहब, लखनवी ने ड्रामा **दस्तावेज़े मोहब्बत** बनारस में लिखा। इस ड्रामे का कथानक **ज़हरे इश्क** से लिया गया है। सन् १८९५ में बनारस में छपा। एक कम्पनी बाहर से बनारस आयी और नखास पर जहाँ साखू के गोले बिकते हैं,

ठहरी । उस वक्त अहसन साहब चन्द्रावली लिख चुके थे । बड़े रामदास ने चंद्रावली का पार्ट किया था । वह और भी पार्ट करते थे । अहसन साहब बनारस में पुरानी अदालत वाले नैयर साहब के मकान पर दहलू की गली में ठहरे थे । सब लोग उनसे मिलने के वास्ते वहां जाते थे । आग़ा 'हश्र' ने अपना पहला ड्रामा आफताबे मोहब्बत मेरे सामने लिखा ! मैंने उस ड्रामे में पार्ट भी किया था । कड़कैत होने के कारण मेरे खानदान का शायरी और नाटक से लगाव था । मेरे मामू हिदायत खाँ साहब बरेलवी ने मच्छरहट्टा के फाटक में मन्दिर के पीछे वाले मकान में एक कम्पनी कायम की थी । उस वक्त तक थियेटर में हारमोनियम नहीं था, सारंगी बजती थी । बड़े मन्ने खाँ साहब (जो बाद को नामी गवैये हुए और राजा साहब, अलवर के मुलाज़िम थे) इस कम्पनी में सारंगी बजाते थे । मुजाविर हुसैन काश्मीरी लखनवी (नक्क़ाल) के लडके लाड़ले मुश्ताक और बुनियादू इस कम्पनी में ऐक्टर थे । यादअली साहब ऐक्टर और एक ऐक्ट्रेस राबिया (नैपालिन) भी थी । मैं भी उस कम्पनी में पार्ट करता था । मैंने उस कम्पनी में शाहज़ादी और पुखराज परी का और हीरोइन शम्सलका के पार्ट भी किये थे । खेल का नाम याद नहीं । करीब सत्तर वर्ष पूर्व की बात है । यह कम्पनी चुनार भी गयी थी । वहाँ टिकट बाँटने वाले ने किसी वजह से जहर खाकर खुदकुशी कर ली । हर शख्स इधर-उधर हो गया और कम्पनी खत्म हो गयी ।''

उपर्युक्त बयान से उस समय की ड्रामानिगारी और बनारस में थियेटर कम्पनियों के शौक पर काफी रोशनी पड़ती है । इसी वातावरण में आगा 'हश्र' ने अपना नाटक आफ़ताबे मोहब्बत लिखा । इस बात के सुबूत में कि 'हश्र' ने चन्द्रावली की जिद्द में आफ़ताबे मोहब्बत उसी बयाँ में लिखा, दो नमूने पेश किये जाते हैं :–

१-चन्द्रावली

बाब पहला, सीन पहला

(दरबार राजा राम मोहन)

चोबदार–(राग खमाच, तीन ताल, गत : न घी धिन्ना)

शाही दरबार है, महफ़िल बहार है ।
ऊँची सरकार है, दौलत मदार है ।।
शाहों का शाह देखो, मन्शिफ मिज़ाज देखो ।
राजों का राज देखो, शौकत निसार है ।।
शादी की धूमधाम, खुर्रम हैं खासो-आम ।
इशरत की सुबहो-शाम, हरसू गुलजार है ।।

हुस्नो-जमाल में, हर एक कमाल में ।
ख़ूबी इक़बाल में, 'अह्सन' सरकार है ।।

आफ़ताबे मोहब्बत ·

पहला एक्ट पहला सीन
(हुमायूँ शाह का दरबार, रामिश्गरों का नाचना-गाना)

चोबदार— रोशन दरबार है, आला सरकार है ।
नूरुल अनवार है, महफ़िल गुलज़ार है ।
आला हसब देखो, वाला नसब देखो ।।
दारा लक़ब देखो, सबका सरदार है ।।
इशरत का जोश है, जो है मदहोश है ।
मस्तो-बेहोश है, हर एक सरशार है ।।
बज़्मे पुरनूर है, हर एक मसरूर है ।
दुख-ग़म काफ़ूर है, हरसू बहार है ।।

२—चन्द्रावली

रामिशगरी— राजा, जोबन बरसन लागे ।
राजा, रिमझिम-रिमझिम बरसे आज जोबन,
छत्र सीस पर घूम-घूम,
नभ दमकत, चमकत, मलक, फलक, तके झूम-झूम,
राजा, जोबन बरसन लागे ।

आफ़ताबे मोहब्बत **गाना**

महफ़िल रोशन चमके नूर ।
ग़म कम हरदम दुख हो दूर ।।
तेरी शाह, है धूम – धूम,
दुश्मन हो ग़ारत, मुल्क–मुल्क में धूम;
सखर खुशतर, बरतर जमाल, जग में बेहतर,
सजे मुकुट सर पर, सर पर सुल्तान के,
इन्साफ की शोहरत घर–घर;
तेरी जान दिन-रात रखे नित शादमान दाता ।।

नाटक की ज़बान

यों तो नाटक की ज़बान उस वक्त तक साफ हो चुकी थी, मगर 'हश्र' ने १८ वर्ष की आयु में जो ज़बान लिखी, वह अपना जवाब नहीं रखती ।

१–बादशाह हुमायूँ अपने दरबार में कहता है कि खुदा ने उसे सब दिया है। एक औलाद भी दी है, जिसकी शादी की फ़िक्र है और ऐसी लड़की की तलाश है, जो हर तरह लायक हो। वज़ीर दरबारी ज़बान मे अर्ज़ करता है—

वज़ीर– ए ज़ीनते तख़्ते सुल्तानी वे फ़रेदूँ शौकत जमशेद सानी ए फ़ख्रेसलातीं, दुनिया में एक से एक बढ़कर हैं हसीं·····

जहां में हुस्ने खुदादाद का काल नहीं।
वह कौन जा है, जहाँ पर कि खुश जमाल नहीं॥

आज मे गुलाम इस अम्र का मुतालाशी रहेगा, जब गोहरे-मक़सूद हाथ आयेगा, फौरन हुज़ूर में पेशकश करेगा।

ऐसी दरबारी ज़बान आग़ा 'हश्र' ने अपने नाटक **किंग लियर** तक लिखी है। उसके बाद प्लाट और ज़बान, दोनों घरेलू और ऊँचे तबके की हो गयी। शायरी बयान और तखील (कल्पना) में आग़ा 'हश्र' ड्रामेटिक ज़बान के बादशाह माने जाते हैं, जिसका नमूना **आफ़ताबे मोहब्बत** से शुरू होता है—

मल्का गौहर अपनी सहेली रीहाँ, नस्रीं, नर्गिस, सोसन के साथ बाग़ की सैर को जाती हैं और बाग़ और फूलों की तारीफ़ करती है—

मल्का गौहर–देख ओ रीहाँ, अजब है कुदरते सुबहान, जिसको देखकर अक्ल दंग हैं, क़ाफ़िया होश का तंग है—जिस फूल को देखती हूँ, अपन रंग-ढंग में फूला नहीं समाता। जिस शजर पर नज़र डालती हूँ, बाग़बाने हक़ीक़ी (ईश्वर) के करम से सर नहीं उठाता·····

बहार आयी है हरसू शादी ये इशरत का सामाँ है।
खुशी फिरती है बुलबुल, हर कोई मसरूर शादाँ है॥

रीहाँ-सच है हुज़ूर ! बनाकर ज़र हर इक गुन्चा लुटाता है गुलेतर का।
नस्रीं–गुमाँ है लाल - ए - पुर दाग़ पर मेहरे मुनव्वर का॥
नर्गिस–सदा - ए - शोरे कूकू है कहीं सर्वे लबेजू पर।
सोसन–कहीं नग़मा सन्जीए, अनादिल नख्लेदिल जू पर॥
रीहाँ–मुज़य्यन कुल ज़मीने-बाग़ फ़र्शे मखमली से है।
नस्रीं-सदा आती मुबारकबाद की हर इक कली से है॥

'हश्र' ने अपने इस पहले ही ड्रामे में औरतों की जो ज़बान और उनके मुहावरे लिखे हैं, उनका जवाब शायद 'अहसन' साहब ही क्या, बल्कि उस वक्त तक **फसानाए आज़ाद** में भी नहीं मिलेगा। एक नमूना अवलोकनीय है —

शाहज़ादा कौकब अपने मसखरे नैरंग के साथ इस बाग़ में भूल से चला आता है। सहेलियाँ देखती हैं और आपस में बात करती हैं कि ये कौन घुस आया,

कुछ दिल में ख़ौफ़ न लाया । शाहज़ादा कौकब और नैरंग दूर पर खड़े हैं । नैरंग कौकब से कहता है–'देखिए, हँड़ियाँ पक रही हैं, बस ख़ामोश रहिए । ज़रा देखिए तो इन सबों का लंडूरा बटेर कहाँ बढ़कर लात मारता है !'

रीहाँ–अच्छा बी नर्गिस, जाइए, ज़रा ख़बर तो लाइए ।

नर्गिस–ए है बीबी, मैं नौज जाने लगी–ना बीबी, मैं न जाऊँगी, न मालूम कौन है मुवा ? इन्सान है या शैतान ?

रीहाँ–वारी नन्हीं नादान, चल दूर दफ़ान, पीछे शैतान, क्या चोचले बघारती है ! लो बीबी, इतनी नादान मेरी जान है कि एक नामहरम को जाकर रोकने से इन्कार है । दो-दो बात करनी दुशवार है ।

नर्गिस–एलो, नखरे की ख़ूबी–सलामती से आप भी चल बिकती हैं–ए वाह, मुँह लगाई डोमिनी गाये ताल बेताल ।

रीहाँ–चल चखे ! ओ आवारा, बहुत देखी हैं तुझ-सी नाकारा–ए ख़ुदा की शान, गलियों की ख़ाक उड़ाने वाली बनी हैं भोली-भाली !

नर्गिस–ऐंजी, तुम्हीं न चली जाओ, क्यों दूसरे को इतनी सुनाओ । चोंच सँभालो । भाएँ-बाएँ-शाएँ मुँह से न निकालो । मेरे भी मुँह से कुछ निकल जायेगा, जिसका पीछे से बखेड़ा होगा ।

बेहतर न होगा अब जो बकीं ओल-फोल तुम ।
बस बातें करना देखो, ज़रा मुँह सँभाल कर ।।

रीहाँ– ये भभकियाँ दिखा न मुझे दूर चल चखे ।
मुझको भी कोई और न ख़ीला ख़्याल कर ।।

शाहज़ादी गौहर–अरे ओ मस्तानियों, गँवानियों, तुम सबों का अजब हाल है, कुछ और भी ख़्याल है ? अरे, ओ नस्रीं, जा, तू देख तो कोई शख़्स ग़ैर है, जिसका मतलब सैर है या आली दिमाग़ है (यह ज़बान काफ़ियाबन्दी की है) या अपने वालदैन के घर का चिराग़ है ।

नस्रीं–बहुत ख़ूब, लौंडी जाती है और अभी ख़बर लाती है (नस्रीं की यह ज़बान दरबारी है) ।

पहले एक्ट और चौथे सीन में शाहज़ादी गौहर और शाहज़ादी माहजबीं की (जो कहीं और रहती है) आपस में बातों का नमूना दृष्टव्य है :—

गौहर–(शाहज़ादी माहजबीं के आने पर) अल्लाह, आज किधर चाँद हुआ ए बहन, तुम कब आयीं ?

माहजबीं–आज ही तो आयी हूँ गौहर, या अल्लाह ! ऐसा भूल गयीं कि कभी झूठों ख़बर नहीं लेतीं । अल्लाह की सूँ, तुमसे तो बोलने को जी नहीं चाहता ।

माहजबीं–ऐंये क्यूँ खुदा वास्ते को खफ़ा हुई जाती हो ?

गोहर–ए चलो भी, वह खूब देख लिया ।

माहजबीं–उइ अल्लाह, देख क्या लिया है ?

गोहर–बस-बस, रहने दो जी न जलाओ। ये ठण्डी गर्मियाँ मुझे एक आँख नहीं भातीं। ज़रा तो आँखों में मुरव्वत होनी चाहिए ।

वाकिया ये है कि आग़ा 'हश्र' की इस तस्नीफ़ **आफ़ताबे मोहब्बत** का नाम 'होनहार बिरवा के चिकने चिकने पात' होना चाहिए। **आफ़ताबे मोहब्बत** पढ़ने के बाद यह एहसास होता है कि १८ वर्ष की उम्र के लेखक में नाटक लिखने, अहलियत और तरक्की करने की कुव्वत जरूर है। आग़ा 'हश्र' के इसके बाद के लिखे हुए नाटकों में ज़बान, बयान और शैली पढ़कर **आफताबे मोहब्बत** की याद जरूर आ जाती है। खुद आग़ा 'हश्र' भी अपने इस पहले ड्रामे से प्रभावित नज़र आते हैं। **आफताबे मोहब्बत** में माहजबीं खुद तो कौकब से शादी करती है, मगर कौकब को राजी करके उसकी शादी गौहर से भी करा देती है और यहाँ पर सौतिया डाह का कोई सवाल ही नहीं। यह था सन् १८९७ का ज़माना। इसी चीज़ को आग़ा 'हश्र' ने सन् १९३२ में अपने नाटक **दिल की प्यास** में लिखा है। मदन की बीवी कृष्णा यह देखकर कि उसका पति मनोरमा को प्यार करता है, मनोरमा का हाथ मदन के हाथ में मिला देती है। मगर यह ज़माना सन् १८९७ का नहीं है, सन् १९३२ का है। औरतों की फितरत बदल चुकी है, इसलिए मनोरमा कृष्णा का कोई अहसान नहीं मानती, बल्कि मदन से उसकी झूठी शिकायत करके उसे मदन के घर से बाहर निकलवा देती है। आरम्भ की तस्वीर अन्त में कितनी बदली नज़र आती है। **आफताबे मोहब्बत** में है एहसान मानने वाली सौत और बदलते हुए ज़माने के साथ-साथ एक नागिन सौत !

नाटक की कुछ ग़ज़लें

आफ़ताबे मोहब्बत में सन् १८९७ से पहले की 'हश्र' की लिखी पाँच-छः ग़ज़लें भी हैं। इन ग़ज़लों को पढ़ने के बाद यह मालूम होता है कि बनारस में उर्दू कविता और ग़ज़ल का क्या रंग था और ग़ज़ल की बनारसी ज़बान कैसी थी। उस वक्त तक आग़ा 'हश्र' बनारस से बाहर नहीं गये थे। उन पर इन ग़ैर-बनारसी उस्तादों, यथा दाग़, अमीर आदि का कोई असर नहीं पड़ा। मैंने आग़ा 'हश्र' को कभी इन उस्तादों के कलाम की ज्यादा कद्र करते हुए नहीं पाया। ग़ज़लों में से कुछ नमूने पेश किये जाते हैं। ये ग़ज़लें प्लाट के रंग के साथ-साथ चलती हैं।

१– बेवफ़ाओं के ख़ुदा पाले न डाले दिल को।
मौत आई जो किया उनके हवाले दिल को ।।
तुम नहीं क़द्र समझते तो न समझो साहब ।
हम भी कर देंगे किसी बुत के हवाले दिल को ।।

२– दिल के जाने का कि जाने जार का ग़म कीजिए ।
रोइए किस-किस को और किस-किस का मातम कीजिए ।।
नाउम्मीदी कह रही है, अब तो मर जाना है ख़ूब ।
शौक़ कहता है तवक्कुफ़ और कुछ दम कीजिए ।।

३– हसरते दीद में ज़ालिम जो कहीं दम निकले ।
नाउम्मीदी मेरा करती हुई मातम निकले ।।
बात का पास हसीनों को नहीं है ए 'हश्र' ।
ख़ूब देखा इन्हें, पाबन्दे वफ़ा कम निकले ।।

इन ग़ज़लों से साफ़ जाहिर है कि कलाम किसी कम उम्र शायर का है।

———

डॉ० विद्यावती ल० नम्र

'हश्र' के कुछ लोकप्रिय हिन्दी-उर्दू नाटक

'हश्र' साहब ने लगभग तीन दर्जन* नाटक लिखे, जिनमें से एक-दो को छोड़कर सभी अभिनीत हुए हैं—सारे भारतवर्ष में एक-दो बार नहीं, हजारों बार। उन्होंने उर्दू में भी लिखा और हिन्दी में भी, परन्तु मैं हिन्दी-उर्दू का भेद न रखकर उनके कुछ नाटकों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न कर रही हूँ।

भक्त सूरदास

यह ऐतिहासिक नाटक है, एक सर्व-ख्यात कथानक पर आधारित है। इसमें २१ गाने हैं। सूरदास तथा चिन्तामणि वेश्या की भक्ति की कसौटी है—नवधा भक्ति, जिसके प्रकारों में से स्मरण तथा आत्म-निवेदन, ये दो मुख्य रूप से आये हैं। मुख्य कथानक को पुष्ट करने के लिए सामाजिक समस्याओं का समावेश किया गया है, जैसे—बिल्वमंगल के पिता अपनी वसीयत पतोहू को देते हैं, ढोंगी साधुओं की भक्ति की कसौटी, सेठ हरिदास और उनकी पत्नी सावित्री की प्रतिज्ञा कसौटी, पातिव्रत धर्म तथा उसकी रक्षा, वेश्या तथा वेश्यागामी की विभिन्न समस्याएँ आदि।

कथानक-गुम्फन सुन्दर है। भाषा में उर्दू शब्दों का प्रयोग नहीं जैसा ही है। अधिकांश कथोपकथन लम्बे हैं। वे या तो पात्र की मनोभावना व्यक्त करते हैं या फिर जीवन-दर्शन पर प्रकाश डालने वाले उपदेशात्मक हैं। कर्म, कर्त्तव्य और उपदेश आदि भारतीय तत्त्वज्ञानानुसार सारे नाटक में पाये जाते हैं। देखिए :—

> यहाँ कर्त्तव्य, कारण, कर्म से हर बात होती है।
> समय पर दिन निकलता है, समय पर रात होती है॥

बिल्वमंगल को समझाते हुए भगवान कृष्ण कहते हैं :—

> स्वर्ग के मिलने का यह ढंग और यह युक्ति नहीं।
> जाति की सेवा करो, सेवा बिना मुक्ति नहीं।
> न जग त्यागो, न हर को भूल जाओ जिन्दगानी में।
> रहो दुनिया में यों जैसे कमल रहता है पानी में॥

---

* अभी तक 'हश्र' के अधिकृत नाटकों की संख्या २८ ही प्रमाणित सिद्ध हुई है।

—सम्पादक

न यह हो जान की फाँसी, न वह गर्दन का फंदा हो ।
इधर हो धर्म का सौदा, उधर दुनिया का धंधा हो ।।

नारी-सौन्दर्य पर मरने वाले विल्वमंगल को धिक्कारते हुए, लाश को दिखाते हुए चिन्तामणि कहती है–'इस लाश को देखो । यह औरत भी कभी मेरी ही तरह सुन्दर रही होगी, परन्तु आज वह आँखों का जादू, गालों की सुर्खी, होंठों की मुस्कराहट और सीने का तनाव, हाथ-पाँव की गदराहट, जिस्म की गोलाई और चमक-दमक से भरपूर खूबसूरती और जवानी कहाँ है ? वह तारीफ़ करने वाली ज़बानें और चाहने वाले दिल कहाँ हैं ? कैसी डरावनी, घिनौनी, बदबूदार सूरत है ! क्या इसी का नाम खूबसूरती है ? कौवे, चील, गीदड़, जो किनारे से अपनी तरफ आती हुई लाश को देखा करते हैं, क्या ये ही इस खूबसूरत औरत के आशिक हैं ? धोका ! धोका !! धोका !!!

विलासी जीवन बिताने वाले, शारीरिक सौन्दर्य को ही सब कुछ समझने वाले कुमार्गियों को आँखें खोलने के लिए उपर्युक्त संवाद बड़े ही मार्मिक और सत्य को सामने रखने वाले हैं । चिन्तामणि की विल्वमंगल को समझाने की शैली भी बड़ी सुन्दर है —

चिन्ता–तुम्हारा धर्म क्या है ?
विल्व –हिन्दू ।
चिन्ता–हिन्दुओं में उत्तम जाति कौन ?
विल्व०–ब्राह्मण ।
चिन्ता–अगर ब्राह्मण को जूठा खाना, दूसरे के मुँह का उगला हुआ निवाला दिया जाये, तो क्या ब्राह्मण वह खायेगा ?
विल्व० शिव, शिव ! ब्राह्मण मर जायेगा, मगर जूठे खाने की तरफ़ आँख भी न उठायेगा ।
चिन्ता–तो अब विचारो और न्याय करो कि जब ब्राह्मण जूठा खाना, दूसरे का उगला हुआ निवाला नहीं खा सकता, तो एक बाजारू वेश्या, जिसके आँख, नाक, गाल, मुँह, होंठ, अंग-अंग को दूसरों ने जूठा कर छोड़ा है, जो उसी हड्डी के मानिन्द है, जिसको कि सैकड़ों कामी कुत्तों ने निचोड़ा है, तो ब्राह्मण उसे क्यों अपनाता है ?

जिसकी ऐसी नीच अवस्था, जिसका ऐसा हाल है ।
जात का वह ब्राह्मण, पर कर्म से चाण्डाल है ।।

गानों पर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि उनमें कई तो प्रचलित लोकगीत हैं, जैसे 'आगरे रो घाघरो मँगा दे रंजा देवरिया' और 'मोहे मधुबन श्याम बुलाय

गवो रे'। पात्रों की कसौटी के लिए विविध रूपों में भगवान श्रीकृष्ण और नारद मुनि हैं। हरदास की पतिव्रता पत्नी प्रतिज्ञा-पालन हेतु स्वामी की आज्ञा मानकर स्वयं को विल्वमंगल की वासना पूर्ण करने के लिए समर्पित करती है, किन्तु पातिव्रत के प्रभाव से वह अपनी आँखें फोड लेता है, क्योंकि आँखें ही पतित होने के मुख्य द्वार हैं। भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान श्रीकृष्ण चिन्तामणि और विल्वमंगल को दर्शन देते हैं। इस प्रकार नाटक की सुखान्त समाप्ति होती है।

आँख का नशा

यह सामाजिक नाटक है। इसमें बताया गया है कि धनी का बेटा बाप के मरने की प्रतीक्षा करता है, शराब और वेश्या पर पितृ-सम्पत्ति पानी की तरह बहाता हैं। कोई कमाने और जोड़ने के लिए पैदा होता है, तो कोई उड़ाने के लिए। जुगल और सरोजिनी नाटक के नायक और नायिका हैं। जुगल का मित्र बेनी खलनायक है। वह जुगल को कुमार्गी बनाता है। माधो जुगल का शुभचिन्तक हितैषी, सम्बन्धी है। कामलता और राजकुँवरि वेश्याएँ हैं। दुलारी एक कुटनी है, जो सरोजिनी को फँसाती है। बेनी से उत्पन्न कामलता की बेटी कामिनी की कलाई पर बचपन में ही ये दो अक्षर 'बी० पी०' गोद दिये गये थे। उसे वेश्यावृत्ति पसन्द नहीं, किन्तु सामाजिक लाचारी से करनी पड़ती है। बेनी को यह पता नहीं कि कामिनी उसीकी लड़की है और अनजाने में वह कामिनी को अपनी पत्नी बनाने के लिए तैयार होता है। हाथ पर दो अक्षर देखकर हैरान-परेशान हो जाता है। उसका मन धिक्कार और घृणा की आवाजों से गूँजने लगता है। धरती पर उसे नरक का नंगा नाच नजर आने लगता है। कामलता के सारंगिये सदारंग ने बेनी को हमेशा यही बताया कि कामिनी मर गयी है। भेद खुलने पर वह कामिनी तथा सारंगिये को गोली मार देता है। वह कहता है—'पाप का नाटक हँसी से शुरू हुआ और आँसुओं पर समाप्त हो गया। एक पाप के दरवाजे पर मरी, एक नरक की गोद में मरा और एक फाँसी के तख्ते पर मरेगा। वेश्या और वेश्यागामियों का अन्त में यही परिणाम होता है।' माधो के संवाद सत्य को लिए उपदेशात्मक हैं।

बरबाद होकर जुगल भिखारी हो जाता है। कामलता और उसकी माँ राजकुँवरि उसे लूटकर कहीं का नहीं रहने देतीं। मन्दिर पर भीख माँगते हुए सरोजिनी उसे पहिचान लेती है। अफीम का व्यापारी कुन्दन मारवाड़ी जुगल को कामलता के खून के अपराध में गिरफ्तार करवाता है, तो अचानक बेनी वहाँ पहुँचकर अपना अपराध स्वीकार करता है और खुद हथकड़ी लगवा लेता है। ब्राह्मण के पाँच हजार रुपये दबाने के जुर्म में माधो मारवाड़ी को भी गिरफ्तार करवाता है। जुगल

और सरोजिनी से बेनी क्षमा माँगता है । बड़े ही नाटकीय ढंग से नाटक समाप्त होता है । सन्देश यह है कि 'सत्यमेव जयते नानृतम् ।'

नाटक में उठायी गयी समस्याएँ आये दिन सामने आती रहती हैं, किन्तु उनका गुम्फन तथा नाट्यपूर्ण समावेश नाटककार की सफलता है । नाटक में कुल बारह गाने हैं और शेरो-शायरी को कोई स्थान नहीं मिला है। कथोपकथन छोटे तथा गतिवान हैं । यथार्थवाद की झलक हमें प्रथमांक के दृश्य ३ में मिलती है, जहाँ एक ओर से विक्टोरिया गाड़ी और दूसरी ओर से ट्राम रंगमंच पर आती और टकरा जाती है । यहाँ पर हास्यरस का उदाहरण देखिये :—

मुसाफिर १–आदमी गिरने से चोट नहीं खाता, तो लड्डू खाता है ? बाप रे बाप, साँस बन्द हुई जाती है । बाबू जी, ज़रा नाड़ी तो देखिए, मैं जीता हूँ या मर गया ?..... भाई, मुझे कलकत्ता आये आठ दिन हो गये, मगर अभी तक यह मालूम न हो सका कि इसका मुँह किधर है । पुलिस, पुलिस ....

पुलिस– क्या है, क्या है ?

मुसाफिर १–इस बेदुम और बेमुँह वाली गाड़ी ने मुझे गिराया है, इसे हथकड़ी लगाकर पुलिस स्टेशन पर ले चलो ।

इस प्रकार का हास्य उत्तम कोटि का नहीं कहा जा सकता ।

तांत्रिक बनकर बेनी सरोजिनी को फँसाकर तहखाने में ले जाता है और उसका शील भंग करना चाहता है, हाथापाई होती है, वहाँ पहुँचकर माधो उसकी रक्षा करता है । नाटक में जहाँ-जहाँ संघर्ष, बुराई की चरम सीमा, अमंगल और पतनावस्था आती है, भगवान कृष्ण की तरह माधो वहाँ पहुँचकर स्थिति को सँभाल लेता है । सामाजिक नाटकों में पौराणिक नाटकों का यह प्रभाव खलता है । पतिव्रता स्त्री की भगवान सदैव सर्वत्र रक्षा करते हैं ।

भाषा के प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए कुछ संवाद प्रस्तुत हैं :—

माधो–मैं प्यार का पवित्र प्रसाद छोड़कर बाज़ार की जूठी थाली पर मक्खी बनकर नहीं गिरता । शर्म उन्हें चाहिए, जो रण्डी के घर में जेब का पैसा खर्च करके बेवकूफ़ बनने आते है और उसके पाँव दबाते हैं..... याद रखिए, घर की कुल-कामिनी से मिला हुआ सुख देवताओं का वरदान है । आज इस भारतवर्ष में लाखों विधवाएँ अन्न और वस्त्र के लिए, लाखों अनाथ बच्चे पालन-पोषण के लिए, लाखों बेरोजगार एक वक्त रोटी के लिए और लाखों गौएँ पेटभर चारे के लिए तरस रही हैं । इनकी रोती हुई आत्माओं के बदले इन हँसती हुई पाप की मूर्तियों को रुपया देना धन, धर्म और देश की हत्या करना है ।

ये वाक्य धर्मपत्नी की पवित्रता और राष्ट्रीयता के द्योतक हैं ।

कामलता को फटकारते हुए माधो कहता है–'अपमान उसका होता है, जिसके पास इज्जत है। चोरी उसकी होती है, जिसके पास धन है। तुम इतनी तुच्छ हो कि तुम्हारे रूप की पूजा करने वाले भी तुम्हें लालसा से देखते है, इज्जत से नहीं देखते। नारी का बखान रूप से नहीं, गुण से होता है। नारी की इज्ज़त काजल-पाउडर से नहीं, धर्म और सत्यता से होती है।'

इन वाक्यों से यह सिद्ध होता है कि नारी की महत्ता धर्म-पालन और सत्य के अनुसरण से बंधी हुई है, नकली सौन्दर्य से नहीं। हम यह जानते हैं कि 'हश्र' साहब ने अपनी विवाहिता पत्नी को दिल से प्यार किया था और मर कर भी उसकी कब्र के पास ही सोये। पतिव्रता स्त्री की बात आते ही वे अपने को ऐसे उद्‌गारों से बचा नहीं पाते और इस तरह उनका व्यक्तित्व पात्रों द्वारा बरबस व्यक्त हुए बिना नहीं रहता।

कैसे हथकण्डों से रण्डियाँ लोगों को उल्लू बनाती हैं, उसका एक दृश्य देखते ही बनता है—

राजकुँवरि–अरे चुप चुप, जुगल आ पहुँचा। अरी चल चल, किसी भाग्यवान का भाग्य चुराकर लायी थी, जो मेरी कोख से जन्म लिया। हरामजादी खाल से बाहर हुई जाती है।

कामलता–देख बुढ़िया, देख, तू भींगी हुई जूती की तरह बढ़ती ही जाती है। मुँह बन्द कर, नहीं तो सिर का एक-एक बाल नोचकर गंजी बँदरिया बना दूँगी।

(जुगल आकर हैरन से छुपकर देखता है)

राज०–अरे वाह, हाथी के मस्तक पर मेंढ़की नाचेगी। देख-देख, मुझे बुढ़िया न समझ। ऐसा घूँसा जड़ूँगी कि मुँह तो दिखाई देगा, लेकिन मुँह पर नाक नहीं दिखाई देगी। सदारंग जी, तुम आदमी धर्मात्मा हो, गले की कंठी छूकर कहो कि किसका दोष है?

कामलता-दोष की बच्ची, मामा से क्या पूछती है, अपनी मौसी से पूछ। हराम का खा खाकर कितनी फूलती जा रही है। अर्थी भारी हो जायेगी, मर, मर, जल्दी मर।

जुगल–यह क्या?

कामलता–देखो जी, मेरा शरीर रण्डी के रक्त-मांस से बना है, किन्तु मेरा दिल रण्डी का नहीं है।। बुढ़िया ने तो कई बार मारकर बुझाना चाहा, लेकिन इस पाप के मन्दिर में अभी तक धर्म का दिया जलता है। हम बेवफ़ा नहीं हैं। जिस बाबू का हाथ पकड़ते हैं, उसका श्मशान तक साथ देते हैं।

कामलता जुगल की पत्नी बनकर उसके साथ जाती है और पैसे समाप्त होने पर बेनी के साथ नाटक रचाने लगती है। जुगल प्रेम-दृश्य को अपनी आँखों से देखता है, तो उसका खून खौलने लगता है और वह उबल पड़ता है—'आज मैंने अपनी आँखों से देख लिया कि चाहे सोने की थाली में देवताओं का प्रसाद परोस दो, किन्तु वेश्या का मन सड़क की कुतिया की तरह जूठा खाये बिना नहीं भर सकता। जा, निकल जा·····

कामलता—अरे चल चल, बड़ा आया शरीफ़! तू क्या लात मारेगा? मैंने तेरे-जैसे कई शरीफ़ों को अपने कोठे से नौकरों के हाथ से झाड़ू मरवाकर नीचे उतार दिया है।

रण्डियों की बातों का ढंग, बातें, भाषा, चरित्र, छल-कपट आदि उपर्युक्त संवादों से स्पष्ट हो जाते हैं। समझदार हो, तो ऐसा देखकर सँभलने लगे, मगर देखा गया है कि ९९ प्रतिशत किस्सों में कुत्ते की दुम टेढ़ी। नाटक में कुल बारह गाने हैं।

सीता वनवास

सन् १९२६ में महाराजा चरखारी ने 'हश्र' साहब से यह नाटक लिखवाया तथा अभिनीत भी कराया। फिर मादन ने चरखारी से कम्पनी खरीद ली और नाटक को पं० 'बेताब' से सन् १९२९ में पुनः लिखवाया। मूल नाटक प्राप्त न होने से आलोचना करना सम्भव नहीं है। हाँ, इतना अनुमान लगा सकती हूँ कि यद्यपि 'हश्र' साहब नाटक लिखने में बड़े कुशल थे, तथापि हिन्दुओं के पौराणिक-धार्मिक साहित्य एवं इतिहास के विद्वान न थे। सम्भव है, इसीलिए 'बेताब' जी जैसे निपुण शिल्पी की आवश्यकता पड़ी। यह कार्य सन् १९२९ में कलकत्ता में हुआ था। 'बेताब' द्वारा की गयी इस शल्यक्रिया से 'हश्र' साहब ने न तो अपने स्वर्णों पर क्रोध किया और न प्रसाद-स्वरूप गालियाँ ही दीं। 'बेताब' जी ने अपने सीता वनवास नाटक के सम्बन्ध में लिखते हुए लिखा है कि 'पूर्वार्ध आग़ा 'हश्र', काश्मीरी उत्तरार्ध पं० नारायण प्रसाद 'बेताब'। उनकी हस्तलिखित कापी में लाल पेंसिल से लिखा है—'हश्र'। प्रथमांक के दृश्य २ और ३ पर ही यह शब्द लिखा है, जब कि कुल आठ दृश्य हैं। दूसरा अंक मूक है, कथोपकथन नाममात्र को ही हैं।

भीष्म प्रतिज्ञा

महाभारत की प्रख्यात कथा पर यह नाटक आधारित है। राजा शान्तनु का गंगा को आठवें पुत्र देवव्रत को मारने से रोकना अर्थात् गांगेय (आठवें वसु) का जीवित रहना। शान्तनु का धीवर-कन्या सत्यवती पर मोहित होना। गांगेय का पितृ-दुःख दूर करने हेतु आजन्म ब्रह्मचारी रहने तथा राज्याधिकार छोड़ने की

भीषण प्रतिज्ञा करके आमरण राज्य सँभालने की प्रतिज्ञा करना। काशीराज की कन्याओं–अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका का स्वयम्वर में हरण करना, हस्तिनापुर के राजा विचित्रवीर्य से उनका विवाह करना। अम्बा मन से शाल्वराज का वरण कर चुकी है और वह अपनी मनोभावना भीष्म के सामने रखती है, तो वे उसे शाल्वराज के पास पहुँचा देते हैं। वह अम्बा को कहनी न कहनी सब कुछ कहकर अस्वीकार कर देता है। भीष्म भी उससे विवाह नहीं करते, परशुराम के आग्रह पर भी नहीं। अम्बा भीष्म को शाप देकर आत्महत्या करती है। पुनर्जन्म में अम्बा शिखण्डी बनकर कुरुक्षेत्र-युद्ध में मृत्यु का कारण बनती हैं और इस प्रकार अपने जीवन की बरबादी का प्रतिशोध प्रतिहिंसा से लेती है। बाण-शैया पर पड़े हुए भीष्म को देवगण जय-माला लिये स्वर्ग के द्वार पर खड़े नजर आते हैं। इस प्रकार नाटक का अन्त होता है।

सुन्दर गति से कथानक आगे बढ़ता है। शान्तनु के संवाद लम्बे हैं। युद्ध-भूमि में शकुनि का स्वगत उसके स्वभाव का सुन्दर उदाहरण है। हास्य का पुट परस्पर की बातों में ही आ जाता है। अलग से हास्य-उपकथानक की योजना नहीं है। राजा शाल्व के महल में शराब का दौर रखा गया है, जहाँ चापलूसी, व्यंजना तथा हास्य अच्छे नज़र आते हैं। देखिए—

शाल्व-एक राजा के नौकर से लड़ते देखकर सब क्षत्रिय हँसेंगे, इसी विचार से मैंने भीष्म को छोड़ दिया।

राज्यमद नं० ३–महाराज ने अच्छा ही किया। छोटे आदमी के सामने हार मान लेने में ही बड़े आदमी की जीत है।

राज्यमद ४–ठीक कह रहे हो। एक बार कुत्ते ने काट खाया था। मेरे दिल में आया कि मैं भी कुत्ते को काट खाऊँ, मगर अपनी इज्जत का ख्याल करके क्षमा कर दिया और कह दिया–'कुत्ते महाशय, चले जाओ।'

राज्यसद १–अन्नदाता, कन्या लेकर भागते समय मैंने तो–'खड़ा रह भीष्म!' कह कर उसे घेर ही लिया था, किन्तु वह हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाने लगा, इसलिए तलवार छीनकर उसे छोड़ दिया।

शाल्व–क्या, छोड़ दिया?

राज्यसद १–हाँ, महाराज, आपकी तरह मुझमें भी दोष है कि दया जल्दी आ जाती है।

शाल्व–और तुमने भीष्म की तलवार छीन ली थी?

राज्यसद १– हाँ, अन्नदाता, जल्दी छीनने में तलवार उल्टी पकड़ ली थी, इसीलिए देखिए, हाथ भी कट गया है।

शाल्व-अच्छा, तो वह तलवार कहाँ है?

राज्यसद १–अब क्या कहूँ, महाराज ! वहीं पर एक गरीब ब्राह्मण खड़ा था, मैंने वह तलवार उसे दान मे दे दी थी।

नाटक में चरित्र-चित्रण अच्छा हुआ है। परशुराम, भीष्म, अर्जुन और अम्बा के संवाद उनके चरित्र को खोलते जाते हैं। रस-निष्पत्ति भी आनन्द दिये बिना नहीं रहती। संवादों में गति एवं तेजी है, गत्यवरोध एवं शैथिल्य कहीं नहीं जान पड़ता। कुल ११ गाने हैं।

धीमरराज का स्वगत (अंक १, दृश्य ६) बहुत ही लम्बा है, किन्तु उसके विचार-मन्थन को प्रकट करने के लिए ऐसा करना आवश्यक प्रतीत होता है। वह अपनी परिस्थिति तथा उसके साथ देवव्रत के व्यवहार पर विचारमग्न है–उसका यह स्वगत भीष्म के चरित्र को ऊँचा उठाता है।

नाटक में आद्योपान्त संघर्ष ही संघर्ष है, कभी मानसिक, कभी वाह्य, कभी सत्ता-विषयक, कभी प्रतिहिंसा-हेतु मन तुष्टि को लेकर। इन सब संघर्षों के मूल में देवव्रत अर्थात् भीष्म-प्रतिज्ञा ही नजर आती है। सभी द्वन्द्वों ने नाटक को प्रभावशाली एवं गतिमान बना दिया है और नाटक का नाम भी कथानक के अनुरूप है।

नाटक समाप्त करने पर प्रतीत होता है कि 'हश्र' ने उर्दू शब्द-प्रयोग से सन्यास लेकर ही नाट्य-रचना की है। भाषा क्लिष्ट हिन्दी नहीं है, सरल एवं सुन्दर है। गानों के उपरान्त शेरो-शायरी कहीं भी नहीं है।

संस्कृत नाटकों की भाँति इस नाटक में राजा शान्तनु का मित्र शिवदत्त विदूषक के रूप में आया हुआ है। यह पात्र सारे नाटक में दिखायी नहीं देता, बल्कि प्रथमांक के अन्त में समाप्त हो जाता है। पात्र को थोड़ा मूर्ख भी बताया गया है, जिससे हास्य-निर्माण होता है। उदाहरणार्थ—

शान्तनु–शिवदत्त, हरिणों के भागने का दृश्य तुमने भी देखा ?

शिवदत्त–नहीं पृथ्वीनाथ !

शान्तनु–तुम तो साथ ही थे, फिर क्यों नहीं देखा ?

शिवदत्त–इसलिए कि मैं क्षत्रिय नहीं, ब्राह्मण हूँ। ब्राह्मण भोजन की थाली में लड्डू और पेड़े का सर टूटते हुए देख सकता है, किन्तु जीव-हत्या नहीं देख सकता।

(शान्तनु की मत्स्यगंधा से बातचीत, शिवदत्त भी साथ है।)

शान्तनु–सत्यवती, आहा ! शिवदत्त, कैसा मीठा नाम है !

शिवदत्त–बहुत मीठा, नाम लेते समय यह मालूम होता है कि गण्डेरी खा रहे हैं।

शान्तनु–फूल की उत्पत्ति काहरे पर। शिवदत्त, देखा ब्रह्मा जी से कितनी बड़ी भूल हुई ?

शिवदत्त--महाराज, किसी की भी भूल नहीं है। यह इसके बाप का अपराध है। कोयल का पिता कौवा नहीं होता। एक धीमरराज को तुम जैसी रूपवती कन्या के बाप बनने का क्या अधिकार था ? महाराज, आप क्षत्रिय और यह शूद्र !

शान्तनु--प्रेम की आँखें रूप और गुण देखती हैं, जात-पाँत नहीं देखतीं। सत्यवती, कहाँ चलीं ? (हाथ पकड़कर) ठहरो, तुम्हें मेरे प्रेम को 'हाँ' शब्द की भिक्षा देनी होगी।

शिवदत्त इसका नाम है गले-पड़ू प्रेम।

अछूता दामन

भक्त सूरदास में भी पतिव्रता नारी का अमिट प्रभाव है और इस नाटक में भी पतिव्रता नायिका अनवरी को अदृश्य शक्ति के रूप में तहसीन आकर बचाता है। अनवरी का दामन पवित्र या अछूता रह जाता है। भगवान की कृपा में उसका पूरा विश्वास है। भारतीय पतिव्रता की नजर में भगवान के पश्चात् पति का स्थान है और अनवरी अपने इस साक्षात् भगवान की हर एक बात पूर्ण श्रद्धा से शिरोधार्य करती है, इसीलिए भगवान का भी यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपने भक्तों की सहायता करे, चाहे वह कितने ही महासंघर्षों से टकरा रहे हों। नायिका को ध्यान में रखकर ही नाटक का नाम **अछूता दामन** रखा गया प्रतीत होता है।

अनवरी के पति अफ़ज़ल को कुमार्ग पर चलाने वाले अब्बू, असद आदि हैं, जिनमें असद मुख्य खलनायक का रोल अदा करता है। यह अनवरी का आशिक भी है, यद्यपि अनवरी इसे मन से धिक्कारती रहती है। अनवरी का शील-भंग करने के प्रयत्न में यह कोई कसर उठा नहीं रखता। अन्त में यह अनवरी को उड़वाकर एक तहखाने में डालता है, जहाँ उसकी बेटी इकबाल को भी फँसाकर ले आया जाता है। अनवरी को शरणागत करने के लिए इकबाल को मारने की धमकी देता है, परन्तु पतिव्रता अनवरी अपनी इज्जत और शील को बच्ची से भी ज्यादा कीमती समझती है और कहती है—'बला से, हमेशा माँ बेटी पर सदके हुआ करती है। आज यह समझूँगी कि मेरी बेटी माँ की इज्जत पर कुर्बान हो गई।

मेरी हर नाज़बरदारी का बदला दे दिया इसने।
पिया था दूध मेरा, कर दिया हक़ आज अदा इसने ॥

अगर शौहर की इज्जत और अपनी आबरू पर आँच आती हो, तो औलाद क्या, दुनिया की दौलतो-हुकूमत भी कोई चीज नहीं।'

यहाँ यह उल्लेख करना अनुचित होगा कि पं० 'बेताब' के ज़हरी साँप नाटक का प्रथम अंक भी ऐसा ही है, बल्कि 'हश्र' के सीन से अधिक ज़ोरदार 'बेताब' की नायिका खुरशीद नवाब (खलनायक-नायिका का पालक पिता) से कहती है—

खुरशीद– यह खाल हो पसन्द तो खींच अपनी खाल दूँ।
आँखों पे हो निगाह तो आँखें निकाल दूँ॥
जुल्फ़ों में दिल जो हो तो अभी बाल दूँ।
झुलसा लगाऊँ इसको बला सर से टाल दूँ॥
असमत मेरी नहीं है, यह शौहर का माल है।
बस इस पराई चीज़ का देना मुहाल है॥
जब तक कि जेबे तख्त हो खल्क आफहीं नहीं।
सुनते रहोगे मेरी जबां से नहीं-नहीं॥

उपर्युक्त भावाभिव्यक्ति में नायिका के पातिव्रत्य, जागृति और जान पर खेलकर भी चारित्रिक पवित्रता और दृढ़ता, ये सब उसके महत्त्व तथा खलनायक की नीचता को प्रदर्शित करते हैं, जिससे पाठक एवं दर्शक, दोनों की सहानुभूति खुरशीद के प्रति अपने आप खिच जाती है।

खलनायक की इस धमकी से कि वह उसके दूध पीते बच्चे का सर तलवार की मूठ से तोड़ डालेगा, तो भी वह टस से मस नहीं होती। ख़ुदा से अपनी सहायता करने की प्रार्थना करती है। माँ का हृदय रोता और चीखता है, फिर भी वह कहती है—

'बला से, मेरे शौहर की बला से, मेरी असमत की बला से, मेरी इज्ज़त की बला से–

तोड़ दे जालिम, मेरा सर तोड़ दे, दिल तोड़ दे।
पर ख़ुदा के वास्ते पहले ये आँखें फोड़ दे॥

सर फोड़ दिया जाता है और इसी दृश्य पर ड्राप होता है।

महाराष्ट्र के प्रख्यात नाटककार स्व० रामगणेश गडकरी ने अपने नाटक पुण्य प्रभाव में जहरी साँप का यह दृश्य लिया है। तीसरे अंक का प्रवेश १ तथा प्रवेश ५ में वसुन्धरा वृन्दावन से कहती है—

'माझ्या पातिव्रत्या साठीं साऱ्या जगावर, स्वर्गातल्या तेहतीस कोटि देवांवर सुद्धा मी उदक सोडीन। पितरांच्या उद्धारा साठीं च पुत्राचा जन्म असतो वृन्दावन, भूपालाचा नांवा साठी वसुन्धरेच्या पातिव्रत्या साठीं-आर्य पतिव्रतांच्या पुण्य परम्परे साठी–माझा दीनार वीर मरणाला तैयार आहे····· माझ्या पातिव्रत्या पुढ़े मला कशाची हि किंमत नाहीं।* (पुण्य प्रभाव, पृ० १०७–१०८, ९वीं आवृत्ति)

* मेरे पातिव्रत्य के लिए सारे संसार पर, स्वर्ग के तैंतीस करोड़ देवताओं पर भी मैं पानी छोड़ सकती हूँ। पितरों के उद्धार के लिए पुत्र का जन्म होता है। हे वृन्दावन, भूपाल के नाम के लिए, वसुन्धरा के पातिव्रत्य के लिए, आर्य पतिव्रताओं की परम्परा के लिए, मेरा दीनार वीर मृत्यु के लिए तैयार है। मेरे पातिव्रत्य के सामने मुझे सब कुछ हेच है। —नम्र

जहरी सांप २७ जून, १९०६ ई० को बम्बई में पारसी नाटक कम्पनी, बम्बई ने प्रथम बार अभिनीत किया था। रामगणेश गडकरी का **पुण्य प्रभाव** तथा 'हश्र' का **अछूता दामन**, दोनों **जहरी सांप** के अभिनय के कई वर्षों बाद स्टेज पर आये हैं। अतएव 'हश्र' तथा मराठी रंगमंच, दोनों 'बेताब' से प्रभावित हुए हैं तथा उनके इस प्रख्यात नाट्यदृश्य को लेशमात्र फ़र्क के साथ अपने नाटकों में रख लिया है, यह मैं निःसंकोच कह सकती हूँ।

यह तीन-अंकी सुखान्त नाटक है, जिसमें शराब से तबाही और सत्यानाश का सुन्दर चित्रण है। वातावरण मुस्लिम समाज का है।

सारांश यह है कि 'हश्र' ने शेक्सपियर के कई नाटकों को हिन्दी भाषा में लिखा। सामाजिक, पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों की रचना की। हिन्दी-उर्दू दोनों में खूब लिखा। उनके नाटक शेरो-शायरी से भरपूर भी हैं और अछूते भी। भाषा का प्रयोग पात्रानुकूल हुआ है, परन्तु कॉमिक निम्न स्तर के हैं। मुख्य कथानक गहन हैं तथा कॉमिक हल्के। अधिकांश नाटकों में वेश्या-शराब प्रकरण मौजूद है। नाटकों में गति और उठान के साथ चरित्र-चित्रण भी उपयुक्त ढंग से हुआ है। व्यावसायिक हिन्दी रंगमंच और नाट्य-साहित्य में वे अपना अपूर्व स्थान रखते हैं।

———

डॉ० कृष्ण मोहन सक्सेना

आग़ा 'हश्र' की नाट्य-भाषा और संवाद-योजना

भाषा भावों की अनुगामिनी होती है। यह अनुगमन-कार्य जितना सजग, स्वाभाविक और संवेदनापूर्ण होता है, उतना ही भावों के साधारणीकरण में सुगमता होती है। नाटकों में प्रयुक्त भाषा तथा अन्य साहित्यिक विधाओं की भाषा में मूलभूत अन्तर यह है कि नाट्य-भाषा का गठन और सौष्ठव कुछ इस प्रकार का होता है कि वह नाट्य-कथ्य की परिकल्पना के अनुरूप भावाभिव्यक्ति करने में सक्षम हो। नाटक में शब्द-प्रयोग का भी बन्धन होता है। कम शब्दों में पूर्ण बिम्बानुभूति इस प्रकार की जाती है कि कथानक के सुस्पष्ट विकास में व्यवधान न उपस्थित हो और घटनाओं तथा पात्रों की मनः-स्थितियों, कार्यकलापों तथा चरित्र का स्वतः स्पष्टीकरण हो जाय। अतः यह कहना उचित होगा कि नाट्य-भाषा की रचना एक दुरूह कार्य है। एक रंगधर्मी नाटककार के मानस में सदैव यह प्रतिध्वनित होता रहता है कि उसे ऐसी भाषा का प्रयोग करना है, जो रंगमंच पर सफल सिद्ध हो।

मुंशी आग़ा मुहम्मद शाह 'हश्र' काश्मीरी (१८७९–१९३५ ई०) अपने समय के एक सिद्धहस्त नाटककार थे और आज के परिवेश में भी उनका महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं हुआ है। आज भी उनके नाटक सफलतापूर्वक पारसी अथवा वस्तु-परक शैली में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। कथ्य की दृष्टि से भी उनके नाटकों में बासीपन अभी नहीं आया है।

आग़ा 'हश्र' की सफलता का रहस्य यही है कि उन्होंने प्रभावशाली रंग-भाषा दी। उन्होंने २८ नाटकों की रचना की, जिनमें १४ नाटक उर्दू तथा १४ नाटक हिन्दी के हैं। यह स्वाभाविक है कि उर्दू नाटकों में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का बाहुल्य है, तो हिन्दी नाटकों में शुद्ध हिन्दी भाषा प्रयुक्त हुई है। आग़ा 'हश्र' अरबी-फ़ारसी, उर्दू-हिन्दी, बँगला, मराठी तथा अँग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे। इन भाषाओं का ज्ञान उन्होंने अपने अध्यवसाय द्वारा विभिन्न प्रान्तों में अपने प्रवास के दौरान अर्जित किया था, जिसका समग्र प्रभाव उनकी रचनात्मक भाषा पर पड़ा है। प्रत्येक भाषा के रचे-पचे शब्दों का ही उन्होंने प्रयोग किया है।

पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग करने में आग़ा 'हश्र' को सफलता मिली है। स्थानीय शब्दावली का भी प्रभावव्यंजक प्रयोग उन्होंने किया है और इस प्रकार

एक समर्थ नाट्य-भाषा की संरचना कर विभिन्न पात्रों के परिवेश और चरित्र का निर्माण किया है। 'नाटक' निबन्ध में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा है–'जिस पात्र का जो स्वभाव हो, वैसी ही उसकी बात भी विरचित हो। पात्र की बात सुनकर उसके स्वभाव का परिचय ही नाटक का प्रधान अंग है।' इस अवधारणा का आगा 'हश्र' ने अक्षरश: पालन किया है और भाषा के वैविध्य द्वारा कथ्य को गति, आरोह-अवरोह तथा चित्रमयता से परिपूर्ण बनाया है।

संवाद-योजना भाषायी संरचना की ही परिणति है। संवादों में भाषा एक नाटकीय अन्दाज़ तथा जीवन्त रूप ग्रहण करती है। 'हश्र' का नाटक हिन्दी में हो या उर्दू में, एक प्रवाह, एक आवेश, ओज तथा भावों का उत्तरोत्तर विकास उनके संवादों में बराबर पाया जाता है।

आगा 'हश्र' की संवाद-योजना को मुख्यत: छ: भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१–भावावेगपूर्ण संवाद

'हश्र' के नाटकों में भावावेगपूर्ण संवादों की भरमार है, जो दर्शकों को रससिक्त करने में पूर्णत: सहायक हैं। एक वाक्य के उपरान्त दूसरा वाक्य, एक भाव के बाद दूसरा भाव इस प्रकार प्रस्फुटित हुआ है कि समग्र संवाद मन पर अमिट छाप छोड़े बिना नहीं रहता और दर्शक को सोचने समझने के लिए बाध्य कर देता है। डॉ० अज्ञात का कथन है कि 'हश्र' के भावावेगपूर्ण संवादों में भावों का एक के बाद एक नयी उपमा या दृष्टान्त, उपमा या दृष्टान्त की लड़ियों के द्वारा उत्तरोत्तर उठान, ऊपर उठते हुए विमान की तरह होता है और सहसा अन्तिम कड़ी पर आकर वे विमान की तरह 'डाइव' करते और प्रेक्षक के मन-मस्तिष्क पर प्रहार कर उसे झकझोर जाते हैं।[१]

सीता वनवास में राम हरिजनों की मर्यादा, मनुष्यता और महाप्रयोजनीयता का बखान करते हैं और उनका संवाद दीर्घ-सूत्री होने पर भी भावों की उठान और प्रहार-शक्ति के कारण प्रभविष्णुता की दृष्टि से अत्यन्त सक्षम है—

राम–क्या ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के समान शूद्र पुरुष स्त्री से जन्म नहीं लेते? मनुष्य समाज में पलकर बड़े नहीं होते? मनुष्यों जैसे रूप, गुण, स्वभाव, हृदय, बुद्धि, ज्ञान-विवेक नहीं रखते? अमीरी-गरीबी, मान-अपमान, अमृत-विष, श्राप और आशीर्वाद का भेद नहीं समझते? वर्तमान की उन्नति और भविष्य का सुख नहीं चाहते? फिर शक्ति और शिक्षा के अभाव के सिवाय उनमें और दूसरे मनुष्यों में क्या भेद है? शत्रुघ्न, जिसकी जड़ खोखली हो, वह वृक्ष, जिसके स्तम्भ बोदे हों,

१. डॉ० अज्ञात से अभी हाल में किये गये एक साक्षात्कार के आधार पर।

वह छत, जिसकी नींव हिल रही हो, वह घर, जिसके नीचे के भाग में आग लगी हो, वह जहाज और जिस देश में थोड़े-से आदमी उच्च जाति में जन्म लेने के कारण अपनी मातृभूमि के करोड़ों बच्चों को बलहीन, शिक्षाहीन, अधिकारहीन दास बना कर सदा अपने पैरों के नीचे रखना चाहते हों, वह देश कभी दीर्घ समय तक सिर ऊँचा किये हुए अपनी जगह पर स्थित नहीं रह सकता। इसलिए शूद्रों को भी मनुष्य-समाज का महाप्रयोजनीय अंश जानो, उनके साथ न्याय करो और उनकी पुकार को भी मनुष्य की पुकार समझो।[1]

विल्वमंगल उर्फ भक्त सूरदास नाटक में विल्वमंगल के अनेक संवादों में सहज प्रवाह, भाव-लालित्य, कवित्व और अलंकरण, विरोधाभास तथा व्यंग्य, वाक्-गाम्भीर्य क्रमशः आगे बढ़ता हुआ सामाजिक के मन-मस्तिष्क पर छा जाता है। विल्वमंगल नारी-जाति की विराट् वशीकरण-शक्ति और उसके प्रभाव की चर्चा करता हुआ नहीं थकता—

विल्वमंगल—दुनिया का हर एक चोर, हर एक डाकू चुपचाप आकर छापा मारता है। मगर सुन्दर स्त्री एक ऐसी निडर और एक ऐसी बेधड़क डाकू है, जो अपने कपड़ों की सरसराहट और झांझर के झनकार से शोर मचाती हुई आती है और बड़े-बड़े योद्धाओं और शूरमाओं को लूटकर चली जाती है। इंद्र-जैसा देवता, विश्वामित्र-जैसा तपस्वी, गोरख-जैसा योगी, कपिल-जैसा महामुनि जब अहिल्या, मेनका, रम्भा और मत्स्यगन्धा के सामने महाशक्तिवान होकर भी अपने गौरव की रक्षा न कर सके, तो एक साधारण संसारी आदमी इन सुन्दर शक्तियों का किन हथियारों से मुकाबला कर सकता है? बादल खुल गये थे, तूफ़ान थम गया था, समुन्दर शान्त हो गया था, एकाएक एक सुन्दर स्त्री की आँख मे रहने वाली बिजली सोती हुई लहरों को जगाती और झिझोड़ती हुई तड़पकर निकल गयी और गम्भीरता अधीरता से और शान्ति अशान्ति से बदल गयी। अभागे विल्वमंगल! पाँव तुझे उजाले और आनन्द के तरफ ले जा रहे थे, परन्तु आँखों ने तेरे लिए दुःख, धिक्कार और नरक का रास्ता तजवीज किया। क्या अब भी इन आँखों को अपना दोस्त समझता है? क्या अब भी इनको प्यार करता है? बेवकूफ़! यह हमेशा दोस्तों को दुश्मन और दुश्मनों को दोस्त साबित हुई हैं। यह दिल के किले की दग़ाबाज चौकीदार हमेशा दग़ा देती है। भेष बदले हुए दुश्मनों को इन्हीं खिड़कियों से अन्दर दाखिल करती है और आत्मा का राज लुटा देती है।[2]

भीष्म प्रतिज्ञा नाटक में गंगा जब कहती है कि पुरुष का क्या यही महत्त्व है कि वह नारी को धमकी दे, इस पर शान्तनु का अंतःस्थल नारी के प्रति भावना-

---

१. 'हश्र', सीता बनवास, पृ० १३। २. 'हश्र', भक्त सूरदास, पृ० ६९–७०।

मय हो जाता है, अत: ऐसी स्थिति में मनोद्‌गार सरस एवं आत्मीयतापूर्ण हो जाते हैं—

शान्तनु–जब दया धर्म का कोलाहल नहीं सुनती, माना कर्त्तव्य की पुकार नहीं सुनती, चरणों में बैठकर विनय करने वाले पति की प्रार्थना नहीं सुनती, तब तुम्हारे हृदय में पुत्र-स्नेह उत्पन्न करने के लिए क्या उपाय करूँ। मैं धमकी नहीं देता, प्रार्थना करता हूँ कि कोमल अंगनी कहलाती हो, तो हृदय को भी कोमल बनाओ।[1]

२–दार्शनिकता से युक्त संवाद

भीष्म प्रतिज्ञा नाटक में युधिष्ठिर के संवाद द्वारा आग़ा 'हश्र' ने अपने दार्शनिक विचारों को व्यक्त किया है—

युधिष्ठिर–मनुष्य क्या है, विचारों का बनाया हुआ घरौंदा। विचार ही उसे बनाते और विचार ही उसे नष्ट कर देते हैं। धर्म और अधर्म, कोमलता और कठोरता, नम्रता और अभिमान, त्याग और स्वार्थ ये सब विचार-सागर की सीधी-उल्टी बहने वाली लहरों के नाम हैं। मनुष्य के हृदय में जिनके हाथों से अच्छे-बुरे विचारों के बीज बोये जाते हैं, उनमें प्रथम माता है, दूसरा गुरु, तीसरे जवानी के मित्र हैं। माता और गुरु ने अच्छे भी बीज बोये हों, तो अपने फलने-फूलने से पहले ही स्वार्थी मित्र अपनी जहरीली साँसों से मुरझा देते हैं। दुर्योधन के विचार भी इसके खुशामदी मित्रों के होंठों के ताल पर नाच रहे हैं और कौरवों-पाण्डवों के युद्ध का परिणाम यह पिशाची नाच आँसू-भरी आँखों से देख रहा है।[2]

सीता वनवास नाटक में गुरु वशिष्ठ जीवन-जगत की व्याख्या करते हुए राम को कर्त्तव्य का बोध कराते हैं—

गुरु वशिष्ठ–रघुवीर, यह जगत स्वार्थ-परोपकार, भोग-त्याग, सुख और दुःख की युद्ध-भूमि है। इस रण-क्षेत्र में जो व्यक्ति छाती पर पाँव रखकर भी अपने कर्त्तव्य-मार्ग पर अटल रहता है, उसी को कर्मवीर और महापुरुष कहते हैं। तुम आदर्श राजा हो मर्यादापुरुषोत्तम राम! इसलिए दशरथ-कुलदीप, अपने आपको पहचानो और कर्त्तव्य-पालन के सिवा संसार का सुख-दुःख सब कुछ भूल जाओ।[3]

३–कवित्वपूर्ण संवाद

आग़ा 'हश्र' के नाटकों में कवित्वपूर्ण संवाद यत्र-तत्र चाँदनी की भाँति विस्तीर्ण हैं, जो पाठकों तथा दर्शकों को अभिभूत कर देते हैं। ये संवाद कविता-सा

१. 'हश्र', **भीष्म प्रतिज्ञा** पृ० १३। २. 'हश्र', **भीष्म प्रतिज्ञा**, पृष्ठ ८२–८३।
३. 'हश्र', **सीता वनवास**, पृ० २९।

आनन्द प्रदान करते हैं, वहीं इतने सरल-सहज हैं कि रसानुभूति में किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित नहीं होता।

सीता वनवास को आरम्भ करते हुए 'हश्र' ने प्रातःकाल का प्राकृतिक वर्णन सरस काव्यमय भाषा में प्रस्तुत किया है—

माण्डवी—माथे पर चन्द्रमा का शीशफूल, गले में तारों का हार और अंग-अंग में चाँदनी के बेल-बूटों से जगमगाती हुई शुक्ल पक्ष की साड़ी पहिने कई दिनों की जागी हुई दुल्हन के समान पृथ्वी गहरी नींद में सो रही थी। इस आलस्य-निद्रा से जगाने के लिए मलय पवन से सुगन्धित प्रातःकाल की प्रतिमा ने अपनी सुनहली अँगुलियों से गुदगुदाना, पक्षियों ने गुनगुनाना और कलकलमयी नदियों ने कोमल स्वरों से गाना शुरू किया।[1]

लव और कुश के पूछने पर कि हम दोनों कौन हैं, माँ सीता अपने हृदय की अभिव्यक्ति काव्य-पूर्ण भाषा में करती हैं—

सीता—तुम मेरी पूर्व जन्म की प्रार्थना हो, इस जन्म का आशीर्वाद हो, नारी-हृदय का मधुर स्वप्न हो।[2]

प्रार्थना, आशीर्वाद और स्वप्न का मानवीकरण दर्शनीय है और इनसे अधिक उपयुक्त शब्दों में माँ अपने पुत्रों का वर्णन कैसे कर सकती है!

भक्त सूरदास नाटक में पति द्वारा उपेक्षित रम्भा को प्रकृति की मादकता, बसंत-बहार और उसका समस्त ऐश्वर्य निरर्थक प्रतीत होता है—

रम्भा—(स्वत:) बसंत ऋतु की सुगन्ध से पुष्प-धाम महक रहा है, लताएँ झूम रही हैं, फूल बरस रहे हैं, भँवरों की गूँज, कोयल की कूक, पपीहे की पुकार से रस-धाराएँ बह रही हैं, परन्तु एक दुःख में डूबे हुए को इनसे क्या सुख? (भक्त सूरदास, पृ० ९)

इसी नाटक में एक स्थल पर बिल्वमंगल अपनी पत्नी के रूप-यौवन की प्रशंसा करते हुए कहता है—'रम्भा! तुम सुन्दर हो, अति सुन्दर हो, संगीत, कविता और चित्रकारी, इन तीनों के सम्बन्ध से जो सुन्दर से सुन्दर वस्तु उत्पन्न हो सकती है, उसमें भी अधिक सुन्दर हो। सूर्य की तरह तेजस्वी, चन्द्रमा की तरह प्रकाशमान, इन्द्रधनुष की तरह मनोहर, भारत की तरह मान्य और गंगा के समान पवित्र हो।[3]

भीष्म प्रतिज्ञा में अम्बा का संवाद काव्यात्मकता से ओत-प्रोत है—

अम्बा—राम के पास राज था, बल था, यश था, ज्ञान था, सब कुछ था। फिर भी सीता के न होने से अयोध्या की धरती पर सरजू नदी के साथ राम के आँसुओं की

---

१. 'हश्र', सीता वनवास, पृ० ३। २. 'हश्र', सीता वनवास, पृ० ४।
३. 'हश्र', सूरदास, पृ० १२।

भी एक सरजू बहा करती थी। गांगेय, स्त्री से घृणा न करो। स्त्री के काले बादल में सुख का चमकता चन्द्रमा है।[1]

४–पद्य संवाद

नाटक में पद्य या काव्य का परम्परित रूप में प्रयोग होता रहा है। इससे कथानक-प्रवाह में गति और अभिव्यक्ति में प्रखरता आती है। मर्मस्पर्शी पद्य हृदय में अनुकूल भावों के संचार मे सहायक बनते हैं। पारसी रंगमंच का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य यह है कि जो बात गद्य मे कही जाती है, उसके प्रभाव को गहराने या घनीभूत बनाने के लिए ही पद्य-संवाद प्रस्तुत किये जाते हैं। इस प्रकार ये संवाद पारसी शैली की सम्पूर्ण संवाद-योजना के अंग बन गए हैं। प्रेक्षागृह का आख़िरी दर्शक भी यदि गद्य के माध्यम से भावों को आत्मसात् नहीं कर पाता है, तो पद्य रस रूप में उनका भावन करने में समर्थ हो जाता था।

सीता बनवास में ऐसे गद्य-पद्य-मिश्रित संवादों की भरमार है। राम गुरु वशिष्ठ के समक्ष सीता के प्रति प्रेमानुभूति पहले गद्य में प्रस्तुत करते हैं और फिर उसी को पद्य द्वारा प्रभावोत्पादक बनाते हैं—

राम—ऐसे कि इस हृदय को, जिसमें सीता के प्रेम का समुद्र लहरें मार रहा है, शाप देकर मरुभूमि बना दीजिए अथवा अपने तपोबल से राम की छाती में एक प्रेम-शून्य हृदय पैदा कर दीजिए।

आप और कुल जग समझता है कि सीता वन में है।
चीर कर छाती दिखाऊँ वन में या इस मन में है॥
यह हृदय-मन्दिर उसी वनवासिनी का धाम है।
जानकी में जान होगी, राम जब तक राम है॥[2]

भक्त सूरदास में रम्भा अपनी आन्तरिक प्रेम-भावना पहले गद्य में प्रस्तुत करती है और तत्पश्चात् उसके केन्द्रीय भावों को चार पंक्तियों में गाकर तीव्रता प्रदान करती है—

रम्भा—मगर मेरे तो सब कुछ सिर्फ आप ही हैं, देखें, मेरी तरफ देखें—जिस प्रकार पृथ्वी अपने सारे नगरों, पर्वतों और समद्रों को साथ लिए सूर्य देवता के इर्द-गिर्द घूम रही है, उसी तरह मेरी आत्मा भी अपनी सारी इच्छाओं और कामनाओं के साथ इर्द-गिर्द चक्कर खाती है और जब आप मुँह फेर लेते हैं, तो उसमें रात आ जाती है—

सुख और चैन भी हैं आप, करार भी हैं आप।
मेरे आधार भी हैं आप, सिंगार भी है आप॥

---

१. 'हश्र', **भीष्म प्रतिज्ञा, पृ० १०।** २. 'हश्र' **सीता बनवास, पृ० ३१-३२।**

जो आप मेरे तो, मारा जहान मेरा है।
वर्ना कुछ भी नहीं, सब तरफ अंधेरा है ॥[1]

मधुर मुरली में कृष्ण-भक्ति को प्राय: काव्य-परिधान दिया गया है, क्योंकि कृष्ण लीला को जन-मानस परम्परित रूप में काव्य द्वारा ही आत्मसात् करता रहा है —

ललिता— यह धुन तो न थी मुरली में कभी,
यह गुण तो न थे गिरधारी में,
यह प्रीति की रीति कहाँ सीखी,
यह फूल थे किस फुलवारी में ?
तुम जीवन-ज्योति हो कान्हा,
इस जग की पाप-अँधियारी में,
कुछ श्याम के नाम की लाज रखो,
बदनाम न हो नर-नारी में ॥[2]

५—व्यंग्यपूर्ण संवाद

'हश्र' के नाटकों में यथास्थित भारतीय समाज की विभिन्न परिस्थितियों के प्रति व्यंग्य प्रयुक्त हुए हैं, जिससे तत्कालीन समस्याओं की जानकारी मिलती है। ये संवाद सीधे हृदय को मथने वाले हैं और आज के परिवेश में भी इनका महत्त्व पूर्ववत् ही है।

भक्त सूरदास नाटक में कमला नारी-जाति की स्थिति पर प्रखर व्यंग्य करती है—

"भारत देश में विवाह के नाम से दासी बनाकर स्त्री-जाति की जो दुर्दशा की जाती है, उसे देखकर कोई अबला गृहस्थाश्रम में जाने से डरती हो, तो तुम उसके विचार पर आश्चर्य क्यों करती हो ?"[3]

इसी प्रकार कमला पाखण्डी साधुओं पर व्यंग्य करती है—

'हमारे भारत का आधा नाश तो अविद्या और फूट ने किया है। आधा सत्यानाश इन साधु-रूपी ठगों की लूट ने किया है। इन पाखण्डियों में भी न धर्म है, न शर्म है, न आनन्द है, न बात है, न ध्यान है, न ज्ञान है। गरीब भारत-निवासी खून-पानी एक करके कमाते हैं और यह उन्हें मूर्ख बनाकर लूट-लूट कर खाते हैं।"[4]

भीष्म प्रतिज्ञा में शिवदत्त गौरवर्ण के पीछे मदमत व्यक्तियों के प्रति गहरा व्यंग्य करता है—'मैं नहीं समझता कि लोग स्त्री के गोरे-गोरे रंग पर क्यों जान देते

१. 'हश्र', भक्त सूरदास, पृ० १९। २. अब्दुल कुद्दूस 'नैरग', आग़ा 'हश्र' और नाटक, पृ० १६१। ३. 'हश्र', भक्त सूरदास, पृ० ९। ४. 'हश्र', भक्त सूरदास, पृ० ५८।

है ! अरे भय्या, गोरा-सफेद रंग ही चाहिए, तो चूना फेरी हुई दीवार पर आशिक हो जाओ। काली-काली बड़ी-बड़ी आँखें चाहिए, तो भैंस की आँखों को प्यार करो। स्त्री से प्रेम न करोगे, तो क्या मुक्ति नहीं होगी ?"

खूबसूरत बला में आधुनिक नारी के प्रति व्यंग्य किया गया है—

"भई वाह, अब तो सिंगल से डबल हो गये। लोग कहते हैं कि डर्बी की लाटरी और पटाखा-सी जोरू किस्मत से मिलती है। हमको तो घर बैठे फैशनेबुल बीवी मिल गयी। मगर इतनी बात जरूर है कि वह पुरानी जोरू आठ रुपये में महीना भर खर्च चलाती थी और यह आठ सौ उठाती है, फिर भी खर्च कम बताती है।"[२]

वृद्ध-विवाह के परिणामों को व्यक्त करने वाला यह गीतात्मक संवाद **भगीरथ गङ्गा** में कॉमिक के रूप में प्रयुक्त किया गया है—

ढूंढ़े साठ बरस में सोलह बरस की नार।
ऐसे मूरख निरलज्ज, खूसट पर फिटकार ।।
लठिया टेक के पठिया ढूँढ़े, होय जग में हेटी।
बुड्ढा वर और युवा कन्या जैसे बाप और बेटी ।।
पर-सेवा करने को जैसे बोझा बैल उठाए।
सूम का धन, बुड्ढे की जोरू औरों के काम आए ।।[३]

हिन्दुस्तान कदीम व जदीद में 'हश्र' ने भारतभूमि की महिमा-गान के साथ व्यंग्य द्वारा समस्याओं पर प्रहार किया है—

"रवि-बेटा ! माता और मातृभूमि दोनों का एक दर्जा है। जैसे माता-जैसी कोई स्त्री नहीं, वैसे ही जन्मभूमि-जैसी कोई भूमि नहीं। इसलिए विलायत कितना ही अच्छा हो, हमारे लिए भारत से कभी अच्छा नहीं हो सकता।

प्रभा—भारत ! यही भारत !! जहाँ रात-दिन रोटी और पेट में मारा-मारी रहती है, जहाँ साल में बारह महीने अकाल और छह महीने बीमारी रहती है।"[४]

६—संक्षिप्त अर्थपूर्ण संवाद

विस्तृत भावावेगपूर्ण संवादों के साथ ही 'हश्र' द्वारा संक्षिप्त किन्तु अर्थपूर्ण व्यंजनात्मक संवादों का भी नियोजन किया गया है, जो विभिन्न मनःस्थितियों को कुशलता के साथ अभिव्यक्त करते हैं। **भक्त सूरदास** में रम्भा-विल्वमंगल के टुकड़े-टुकड़े संवाद पात्रों की मनःस्थिति को सांकेतिक किन्तु प्रभावी रूप में व्यक्त करने में सक्षम हैं :—

---

१. हश्र, **भीष्म प्रतिज्ञा**, पृष्ठ ३०। २. अब्दुल कुद्दूस 'नैरंग", **आगा 'हश्र' और नाटक**, पृष्ठ ११३। ३. वही, पृष्ठ १६३। ४. वही, पृष्ठ १७०।

रम्भा–मेरे जेवर हैं।
विल्व०–जो एक रण्डी के यहाँ गिरो पड़ा है।
रम्भा–मेरे धर्म हैं।
विल्व०–बिगड़ा हुआ।
रम्भा–मेरे नसीब हैं।
विल्व०–फूटा हुआ।
रम्भा–मेरी आशा है।
विल्व०–टूटी हुई।[1]

भीष्म प्रतिज्ञा के छोटे संवाद चुस्त, अर्थपूर्ण और भावाभिव्यक्ति में अत्यधिक सहायक हैं—

परशुराम–युद्ध नहीं कर सकता। देवव्रत, क्या ये क्षत्रिय के शब्द हैं ?
भीष्म–भगवान, ये क्षत्रिय के शब्द नहीं, एक शिष्य की प्रार्थना है।
परशुराम–प्रार्थना का ही नाम वीरों की भाषा में कायरता है। बस विवाह या युद्ध।[2]

दिल की प्यास के छोटे संवादों द्वारा भारतीय एवं पाश्चात्य सभ्यता के संघर्ष को निरूपित किया गया है—

प्रताप–पिताजी, आपने कहा था कि जल्दी अंग्रेजी पढ़ लो, मैं तुम्हें विलायत भेजूँगा। सुनिए, मैं विलायत नहीं जाऊँगा।
मदन–क्यों, क्या इसलिए कि फ़ीका खाने वाले देश में घासीराम के चने और रामधन हलवाई की दुकान के पापड़ नहीं मिलते ?
प्रताप–माताजी कहती हैं कि उस देश से वापस आकर अपने देश को भूल जाते हैं।
मदन–तुम्हारी माता ठेठ हिन्दुस्तानी हैं। उनके पास रूप है, बुद्धि नहीं, इसलिए मैं उन्हें खूबसूरत बेवकूफ़ कहता हूँ।[3]

निष्कर्ष : 'हश्र' के अनेकानेक संवाद भाव तथा भाषा की दृष्टि से इतने उत्कृष्ट हैं कि इनकी नाटककार जयशंकर प्रसाद के संवादों से तुलना करने पर यह स्पष्ट आभासित होता है कि 'हश्र' के संवाद साहित्यिक सौष्ठव में प्रसाद से किसी भी प्रकार पीछे नहीं हैं—चाहे प्रकृति-चित्रण हो या दार्शनिक चिन्तन, मानव-मन की

---

१. 'हश्र', भक्त सूरदास, पृ० १३–१४। २. 'हश्र', भीष्म प्रतिज्ञा, पृ० ७८।
३. अब्दुल कुद्दूस 'नैरंग', आग़ा 'हश्र' और नाटक, पृ० २३७।

गहराइयों का अनुसन्धान हो या कल्पना की ऊँची उड़ान, सर्वत्र 'हश्र' की पैठ और अभिव्यक्ति पाठक-प्रेक्षक के मन पर गहरी छाप छोड़ती है।

पारसी-हिन्दी रंगमंच के अधिकारी-विद्वान डॉ० अज्ञात के अनुसार " 'हश्र' के संवादों के सभी गुण खूबसूरत बला के संवादों में भी पाये जाते हैं—चुस्ती, हाज़िर-जवाबी, विनोद, व्यंग्य, कवित्व एवं अलंकरण, ओज और भावावेग।"* इस उद्धरण में उल्लिखित संवाद-वैशिष्ट्य 'हश्र' के सभी नाटकों में कमोवेश रूप में विद्यमान है।

———

* डॉ० अज्ञात, भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास, पृ० २३५।

डॉ० भानुशंकर मेहता

आग़ा 'हश्र' और भारतीय नारी

[नारी के दो रूप हैं-उदात्त और उद्धत। उदात्त नारी प्रेममयी, ममतालु, लज्जालु, शालीन, करुणामयी, त्यागिनी और उत्सर्गमयी होती है, जबकि उद्धत नारी स्वार्थ, ईर्ष्या, दर्प, कठोरता एवं कटुता से पूर्ण और लज्जाविहीन होती है। आग़ा 'हश्र' ने नारी के उदात्त और उद्धत, दोनों स्वरूपों का चित्रण किया है, किन्तु उनका मन नारी के उदात्त चरित्र के अंकन में ही रमा है। गणिका के द्वारा भी सती-साध्वी नारी के उदात्त चरित्र की प्रशंसा कराई गयी है। डॉ० भानुशंकर मेहता के प्रस्तुत लेख में भारतीय नारी के इसी गरिमामय एवं आदर्श स्वरूप को रेखांकित किया गया है। —सम्पादक]

आग़ा 'हश्र' के नाटकों के पहले दौर में ग्यारह नाटक आते हैं। इनमें **आफ़ताबे मोहब्बत, मारे आस्तीं और दोरंगी दुनिया** दरबारी शैली के और **मुरीदे शक, असीरे हिर्स, दामे हुस्न, सफेद खून, सैदे हवस** और **ख्वाबे हस्ती** अंग्रेजी नाटकों पर आधारित थे। सन् १९०८ में 'हश्र' ने अपना दसवाँ नाटक **खूबसूरत बला** लिखा।

कॉमिक द्वारा नंगे फैशन पर प्रहार

इस समय तक नाटक कम्पनियों में काम करते और बम्बई में रहते 'हश्र' को दस वर्ष हो गये थे। इस एक दशक में पश्चिम के फैशन से बुरी तरह प्रभावित 'मुम्बई' के बहुत ही करीब से दर्शन किये थे। एक ओर 'हश्र' के मन पर अपने पुराने शहर बनारस और उसकी रूढ़ परम्पराओं की छाप थी, दूसरे स्वयं उनका परिवार मजहबपरस्त सीधी-सादी जिन्दगी का कायल था। इन दो विपरीत रास्तों पर चल रहे समाज के बीच खड़े 'हश्र' के मन में अवश्य संघर्ष हुआ होगा। इसी भावभूमि पर **खूबसूरत बला** का कॉमिक काबिलेग़ौर है। औरतों और वह भी अपने देश की गौरवमयी नारी पर पश्चिम के नंगे फैशन की, निर्लज्ज आचरण की परत चढ़ते देख 'हश्र' के शराफ़त और सादगी-पसंद मन में गहरी वितृष्णा जागी थी, जो इस कॉमिक में बोल उठी है। उन्होंने देखा था कि विलायती फैशन में रँगी मेम साहब किस कदर फ़िज़ूलखर्च और बेवफ़ा होती हैं और इसी बला को उन्होंने अपने

कॉमिक में पेश किया है। फैशनपरस्ती से पीड़ित मिस्टर खैरसल्ला के संवाद में 'हश्र' अपनी बात कहते हैं—

☐ पुरानी जोरू आठ रुपये में महीना भर खर्च चलाती थी और यह आठ सौ उठाती है, फिर भी खर्च कम बताती हैं······ हम कमाते हैं, वह उड़ाती है······।
☐ मेम साहब एक बन्दर को छुरी-काँटे से खाना सिखा रही हैं।
☐ गालियाँ देनी हों, तो अँग्रेजी में दीजिये।
☐ शौहर छूटे तो छूटे, मगर क़ायदा फैशन न छूटे।
☐ शौहर होकर बीवी से मुआफी मांगूँ ?–यह भी आजकल का फैशन है।
☐ मगर घर में आने के बाद (शौहर को) जोरू बनकर रहना होगा।

इस कॉमिक में 'हश्र' ने आज़ादीपसन्द मेम साहबों के अनेक लटके–क्लब जाना, डांस करना, फ़िजूलखर्ची मरदानी पोशाक, मर्दों को बेवकूफ बनाना, नौकरी करना, लीडरी करने की ख्वाहिश आदि पेश किये हैं और इनके बुरे नतीजों की ओर भी इशारा किया है।

बेज़ुबान लड़की की वकालत

इसी समय 'हश्र' ने अपने छोटे भाई को एक खत लिखा था–लड़की के लिए शौहर तलाशने की बाबत और इस खत में उनका नज़रिया (भारतीय नारी के प्रति) और स्पष्ट होता है, क्योंकि शायद 'बला' को देखकर लोगों को यह भ्रम हो सकता है कि 'हश्र' दक़ियानूस है, औरतों को आगे बढ़ता देखना नहीं चाहता। इस ख़त में 'हश्र' ने भारत की सीधी-सादी बेज़ुबान लड़कियों की वकालत की है, जो अंधे माँ-बाप द्वारा रूढ़ और गलत परम्पराओं पर बलि चढ़ा दी जाती हैं। वे लड़की के लिए सफेदपोश (फिर चाहे ६० वर्ष का बूढ़ा ही क्यों न हो), दौलतमन्द (भले ही दुश्चरित्र हो), खानदानी या हम-क़ौम (भले ही जाहिल हो) या डिग्रीधारी (मगर बेसलीका) शौहर नहीं चाहते। उनकी कसौटी है–कैरेक्टर, सच्चरित्रता ! शिष्ट स्वभाव, शिष्ट विचार। शिष्ट युवक ही उनकी दृष्टि में नायाब जवाहिर है।

इस प्रकार विदेशी फैशन की हवा से बिगड़ रही औरत पुरातन रूढ़ परम्पराओं की कुरीतियों के अन्दर पिसती बेज़ुबान नारी, ये दोनों ही रूप 'हश्र' के नाटकों में बारम्बार नये रंगों में आते रहे हैं।

नारी की वफ़ा और बेवफ़ाई

उनके अगले नाटक **सिलवर किंग या नेक परवीन** में यही विचारधारा और आगे बढ़ी है। इस नाटक में शराबी और जुआरी की वफ़ादार बीवी की दुर्दशा दिखाई गयी है और पत्नी की नेकी तथा वफ़ा का दर्शक पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इस नाटक के कॉमिक में तस्वीर का दूसरा पहलू पेश किया गया है। मिरज़ा

चोंगा की बीवी जुल्फन 'खाती भी है, गुर्राती भी है', जिससे त्रस्त होकर मियाँ चीख उठते हैं- वाह, क्या जोरू मिली है–समझ उलटी और मिज़ाज बिल्कुल सड़ा हुआ..... मैं अपना ढोल पीटता हूँ, तो वह अपनी डफली बजाती है..... मैं पूरब चलने को कहता हूँ, तो वह पश्चिम जाती है।' ज़रा दोनों औरतों का अंदाज़े गुफ्तगू देखें—

परवीन– मेरा राहत-महल प्यारे, तुम्हारे दिल का कोना है।
मेरा ज़ेवर फ़क़त तुम हो, न चाँदी है न सोना है॥

जुल्फन–अभी तुम्हारा जनाजा यहीं धरा हुआ है, मैं समझी थी कि किसी छकड़े या बैलगाड़ी पर लदकर अदालत पहुँच गया होगा।

आदर्श नारी की कल्पना

इसी नाटक में अफ़ज़ल अपनी बेटी को दुआ देता है, जो दरअसल नाटककार के अपने आदर्श का नमूना है और किसी भी बेटी के लिए मौज़ूं है—

तेरी खूबी, तेरी इज्ज़त, तेरा इकबाल दूना हो।
तू औरों के लिए दुनिया में, नेकी का नमूना हो॥

नाटकों के दूसरे दौर में 'हश्र' ने पहली बार हिन्दी या हिन्दू-समाज के लिए रुचिकर नाटक लिखे, जैसे बिल्वमंगल और भगीरथ गंगा। ज्ञातव्य है कि इसी दौर में स्वामी मुरारी देव और पं० जगतनारायण से 'हश्र' की मैत्री हुई और इनके सत्संग में उन्होंने हिन्दू धर्म-साहित्य पढ़ा, जिससे भारतीय नारी के आदर्श और चरित्र की गरिमा से उनका परिचय हुआ। निश्चय ही आदर्श हिन्दू नारी की तस्वीर उन्हें अच्छी लगी, क्योंकि शायद ऐसा ही एक खाका उन्होंने अपने मन में भी बना रखा था। इसी दौर में उनका विवाह हुआ और अपनी कल्पना के अनुरूप ही उन्हें सीधी-सादी नेक पत्नी मिली। 'हश्र' के जीवन में अनेक औरतें आयीं, पर प्यार उन्होंने सिर्फ अपनी बीवी से ही किया। दुःख की बात यह है कि उनका यह स्वर्ग, उनके प्यार की दुनिया सिर्फ पाँच साल ही रही। पवित्र रोशनी फैलाकर 'शमए शबिस्ताने वफ़ा बुझ गयी।'

आइए, इस दौर के नाटकों में 'हश्र'-चित्रित नारी-पात्रों की एक झलक देखें। साथ ही यह भी स्मरणीय है कि दूसरा दौर सन् १९१३ से १९२० तक का है और इस समय पहला महायुद्ध हुआ, भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम ने जलियाँवाले बाग़ में कुरबानी देकर एक नयी करवट ली थी।

सन् १९१३ मे 'हश्र' ने यहूदी की लड़की लिखा, जिसमें उन्होंने गुलाम और बरबाद क़ौम की तस्वीर पेश की है। ऐसा प्रतीत होता है कि युवा 'हश्र' के दिल में उस समय राष्ट्रीयता का एक अनूठा तूफ़ान उठ रहा था। वह

सिर्फ भारत की आज़ादी की ही नहीं, समूचे एशिया या तमाम गुलाम राष्ट्रों की बात सोच रहे थे, क्योंकि इसी साल उन्होंने अपनी मशहूर इंक़लाबी नज़्म 'शुक्रिया-ए यूरप' लिखी थी। **यहूदी की लड़की** में रोमन शासन में शोषित यहूदी क़ौम का खाका खींचने के बहाने उन्होंने पराधीन भारत की बात कही है।

अनमेल विवाह का विरोध

इसी दौर के अन्य नाटकों **भगीरथ गंगा**, **भारत रमणी** आदि में 'हश्र' ने पत्नी के कर्तव्य, वीरता और दिल की कोमलता दिखायी है। **भगीरथ गंगा** के कामिक में बूढ़े द्वारा युवा लड़की से शादी करने की हवस 'ढूँढ़े साठ बरस में सोलह बरस की नार' की अच्छी खबर ली गयी है। 'सूम का धन, बुड्ढे की जोरू औरों के काम आये' कहकर 'हश्र' ने अनमेल विवाहों के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठायी है।

पत्नी को 'फारवर्ड' बनाने पर व्यंग्य

'हश्र' के नाटकों का तीसरा दौर (१९२१–१९२५ ई०) उस युग का प्रतिबिम्ब है, जब भारत में असहयोग, स्वदेशी और 'बायकाट' आंदोलनों की शुरुआत हो रही थी। 'हश्र' ने स्वयं विलायती वस्त्र त्याग कर खद्दर पहन लिया था। इस दौर के नाटकों में 'हश्र' का ध्यान नयी पीढ़ी–पुत्र की ओर था। **हिन्दुस्तान क़दीम व जदीद** में श्रवणकुमार की मातृ-पितृ-भक्ति, अकबर की आज्ञाकारिता के साथ ही हिन्दू-मुस्लिम एकता और गोवध-बन्दी का एलान भी किया गया है। इस नाटक के तीसरे अंक 'आज' में ग़रीब-अमीर, विलायती शिक्षा और तहज़ीब, बुर्दाफ़रोशी, मुकदमेबाजी के अभिशाप, खद्दर और स्वदेशी की उपयोगिता-जैसे सामयिक विषयों पर प्रकाश डाला गया है। विलायत से लौटकर प्रभाशंकर अपनी पत्नी राधा को घूँघट त्यागकर बेशरम, 'फ्री' बनने की सलाह देता है। विलायती हवा में खोये मर्दों की कामना है–'आह, वह दिन कब आयेगा, जब हमारी स्त्रियाँ भी हमारे साथ होटलों में आकर ब्रांडी के पेग उड़ायेंगी और घुटने तक का घाघरा और आधे सीने की जैकेट पहनकर पति के सामने हर पुरुष के संग नाचकर विलायती सोसाइटी में हमारी इज़्ज़त बढ़ायेंगी ·····।' मगर उन्हें अफ़सोस है कि 'भारत की औरतें कभी सुधर नहीं सकतीं', क्योंकि 'इनकी माताएँ इन्हें बचपन में ही अपने दूध के साथ सीता और सावित्री का चरित्र घोलकर पिला देती हैं।'

वेश्या-वृत्ति पर प्रहार

'हश्र' ने इसी दौर में कलकत्ता की दुनिया देखी थी और फलस्वरूप उन्होंने प्रभाशंकर के मुँह से देश की औरतों की दुर्दशा पर मार्मिक टिप्पणी की है–'हाय, हाय, किस मुँह से कहूँ। हाँ, सुनो–उसी भारत के सिर्फ एक शहर कलकत्ता में

चालीस हज़ार स्त्रियाँ गरीबी और भूख से लाचार होकर केवल पेट पालने के लिए गलियों और कोठों पर वेश्या का धन्धा कर रही हैं। सोचो, अपने गरीबाँ में मुँह डालकर सोचो, क्या यह देश की अन्तिम दुर्दशा नहीं है ?..... अगर आज इन दीन-दरिद्र अबलाओं का कोई पालन-पोषण करने वाला होता, तो इस कलंक से हमारा और तुम्हारा मुँह कभी काला न होता।'

अपने अगले नाटक तुर्की हूर में 'हश्र' ने एक आदर्श नारी का चरित्र प्रस्तुत किया है। नायिका रशीदा पतिपरायणा भी है और स्वावलम्बी भी। पिता के घर की सुख-सम्पदा त्यागकर वह अपने शराबी पति के साथ अभावों और गरीबी की ज़िन्दगी स्वीकार करती है, मेहनत-मजूरी करके पति का और अपना पेट भरती है। इस नाटक के चंद संवाद इस सन्दर्भ में गौरतलब हैं—

रशीदा—(बाप के यह कहने पर कि वह अपने शराबी पति को छोड़ दे) छोड़ दूँ ? अब्बाजान, कैसे छोड़ दूँ ! शादी का रिश्ता दो खुदगरज़ आदमियों की शिरकत में शुरू किया हुआ व्यापार नहीं है..... मेरी दुनिया, मेरी जन्नत इनके पाँवों के नीचे है..... यह ठोकर भी जो मारें, चूमूँगी कदम इनके।

इसी नाटक के कॉमिक की वेश्या शमीम के विचार भी देखें। नाज़िम शमीम के लिए बीवी का हार छीन लाया है। उसका कहना है—'बीवी मर जायगी, तो दूसरी मिल जायगी, मगर तुम कहाँ मिलोगी रानी ?' और शमीम की प्रतिक्रिया यह है—'उफ़, कितनी बेवफ़ाई, अगर मैं घर की औरत होती, तो ऐसे शौहर को चौराहे पर गोली मार देती ! समझ में नहीं आता कि जो मर्द खुद इतने बेवकूफ़ हैं, वह रण्डी को किस मुँह से दगाबाज़ कहते हैं ?'

संसार चक्र में बूढ़े की जवान पत्नी के सामने कर्त्तव्य और इश्क़ तथा वासना का संघर्ष है और 'हश्र' ने इस तूफ़ान में औरत को गिरने नहीं दिया है।

आँख का नशा 'हश्र' का इन्क़लाबी कामयाब नाटक है। वेश्यावृत्ति की बुराइयों पर विचार करते हुए 'हश्र' ने एक भयंकर तथ्य ढूँढ़ निकाला कि वेश्या-गमन कभी-कभी आदमी को ऐसी वेश्या के पास भी पहुँचा सकता है, जो शायद उसकी अपनी बेटी हो। आँख का नशा में वेश्या का चरित्र बहुत विस्तार से और अपने विभिन्न रूपों में सामने आता है। बीसवीं सदी के आरम्भ में वेश्यागमन समाज का भयंकर अभिशाप बन गया था। इस बाबत 'हश्र' कहते हैं कि वेश्यागमन में 'पहले धन का नाश और फिर इज्ज़त का नाश..... वेश्या और वेश्यागामियों का अन्त में यही परिणाम होता है।'

सती नारी भारतीय नारी

'हश्र' के नाटकों के अन्तिम दौर में सीता वनवास, रुस्तम सोहराब, दिल की

प्यास जैसे नाटक आते हैं। **सीता वनवास** के आइने में भारत की सती नारी के दर्शन होते हैं—

सीता—बेटा, नारी की महानता महारानी कहलाने में नहीं, धर्म, पुण्य और सतीत्व में है।

पतिव्रत धर्म की महिमा उजागर करते हुए सीता कहती है—'नाथ, आर्यावर्त की स्त्री अपने जीवन-प्रभु के मुख पर हँसी देखने के लिए भूखी-प्यासी रह सकती है, काँटों के बिछौने को फूलों की सेज समझ सकती है, किन्तु अपने पतिव्रत धर्म का अपमान नहीं सहन कर सकती.....।' और सारा अन्याय सहन करने के बावजूद सती नारी की अन्तिम कामना यही है—'जब-जब नारी जनम मिले, आप ही मेरे स्वामी हों।'

नारी प्रेमिका से पहले देशभक्त

दूसरे नाटक **रुस्तम सोहराब** में 'हश्र' ने एक उपनाटक **इश्क़ और फर्ज** लिखा हैं, जिसमें सुहराब से प्रेम करने वाली गुर्द आफ़रीद का अनूठा चरित्र रचा है। प्रेम से फर्ज़ ऊँचा है, इस आदर्श का पालन करते हुए गुर्द आफ़रीद वतन के लिए अपने इश्क़ को क़ुर्बान कर देती है। गुर्द आफ़रीद के चरित्र के माध्यम से 'हश्र' ने नारी-चरित्र के एक विस्मयकारी पहलू को पेश किया है। उनकी मान्यता है कि नारी केवल हुस्न और मोहब्बत तक सीमित नहीं है, वह देश-प्रेम के लिए अपने प्राण दे सकती है और वीर सेनानी की तरह युद्ध भी कर सकती है।

फ्री नारी पर समर्पित नारी की विजय

अपने अन्तिम नाटक **दिल की प्यास** में एक एजुकेटेड, 'फ्री' और फैशनपरस्त औरत और एक सीधी-सादी धर्मपरायणा पति-चरणों में समर्पित नारी का मुकाबला है। कृष्णा भारतीय स्त्रियों का 'कम्प्लीट' और 'बेऐब' नमूना है, तो मनोरमा आजादी पाकर बिगड़ी लेडी का। मनोरमा का एक बयान संक्षेप में बहुत कुछ कह जाता है—

मनोरमा—तुम्हारी पहली जीवन-संगिनी कृष्णा के पास रूप भी था, स्वामी-भक्ति और जीवन की पवित्रता भी थी। तुम्हें इन चीज़ों की जरूरत होती, तो मुझसे दूसरा ब्याह न करते। मेरा-तुम्हारा ब्याह, ब्याह नहीं, दो व्यापारियों में एक सौदा था। दिल को दिल के साथ प्रेम जोड़ता है, दौलत और फैशन नहीं।

अन्ततः 'फ्री' नारी पर समर्पित नारी की विजय होती है।

'हश्र' के नाटकों के आइने में हमें भारत की पवित्र, प्रेम-भरी, स्नेहमयी, पतिभक्त, सच्चरित्र सती नारी के दर्शन होते हैं, जो स्वामी की सेवा को ही अपना

धर्म मानती है। सब कुछ सहती है, सब कुछ त्यागने को तत्पर रहती है। पति ऐबी भी हो, तो भी उसे छोड़ने को तैयार नहीं होती और दीर्घकाल तक बड़े धैर्य से पति के लौटने का इन्तज़ार करती है। इसके विपरीत फैशन में डूबी, चरित्रहीन नारी हैं, जो पतिता तो हैं, पर नाटककार ने उनके अन्तर में भी स्थापित आदर्श नारी की झलक दिखाई है। नाटककार ने उन्हें सहानुभूति प्रदान की है, क्योंकि उनकी पतिता अवस्था का ज़िम्मेदार समाज और पुरुष है। 'हश्र' के आइने में हमें बीसवीं सदी के प्रथमार्ध में विद्यमान विभिन्न नारी-चरित्रों के दर्शन होते हैं, जिनमें पत्नी, प्रेमिका, वेश्या के साथ ही देश-प्रेमी, वीर और बलिदानी भी हैं, जिन पर किसी भी क़ौम को गर्व हो सकता है। 'हश्र' का आदर्श मिस योरप नहीं, सीता, सावित्री, शकुन्तला है और ये महिमामयी स्त्रियाँ सभी जाति और क़ौम में मिलती हैं और इन्हीं से उस जाति का गौरव बढ़ता है।

समाज-सुधारक के रूप में आग़ा 'हश्र'

[साहित्यकार का अन्तस् समाज का दर्पण है, जो समाज के उत्थान-पतन, उतार-चढ़ाव, सत्-असत् पक्ष को सहज भाव से बिम्ब रूप में ग्रहण कर उसे अपने साहित्य में प्रतिबिम्बित कर देता है। साहित्य को भी इसीलिए समाज का दर्पण कहा गया है। नाटककार आग़ा मुहम्मद शाह 'हश्र', काश्मीरी ने अपने युग के समाज की 'टू कापी' अपनी कृतियों में उतार दी है, जिसका अहसास, उनके नाटकों को पढ़ते या देखते हुए, पग-पग पर होता है। इस दृष्टि से उन्हें बीसवीं सदी के प्रथम तीन दशकों का प्रतिनिधि नाटककार कहा जा सकता है।

इस कालावधि में समाज-सुधार आंदोलन उत्तरोत्तर अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। 'हश्र' ने भी समाज-सुधारकों, राजनेताओं और सन्त पुरुषों के मार्ग का अनुसरण कर अपनी कृतियों द्वारा हरिजनों के उद्धार, दहेज-प्रथा के विरोध, शराब-बन्दी, फैशन की अतिशयता, वेश्या-वृत्ति आदि के विरोध में स्वर ऊँचा किया और समाज-सुधार की लहर देश के एक कोने से उठकर दूसरे कोने तक व्याप्त हो गयी।

हिलकोरें लेती इस लहर का चित्रण किया है वत्सराज ने अपने लेख 'अछूतोद्धार के पुरस्कर्ता', आग़ा जमील काश्मीरी ने अपने लेख 'दहेज-प्रथा का घोर विरोध' तथा राजेन्द्रकुमार दवे ने अपने लेख 'जन-कल्याण के पक्षधर' में, जिन्हें आगे क्रमशः दिया जा रहा है। —**सम्पादक**]

वत्सराज

अछूतोद्धार के पुरस्कर्ता

आग़ा 'हश्र' भारतीय रंगमंच पर बीसवीं सदी के प्रथम तीन दशकों में विद्यमान रहे। यह युग नव-जागरण का युग रहा है। इस युग में नयी राष्ट्रीय चेतना बंगभंग, क्रान्तिकारी आंदोलन, स्वदेशी आंदोलन तथा बायकाट, असहयोग आंदोलन के रूप में जागृत हुई और समाज-सुधार के स्वर भी मुखर हुए। समाज-सुधारकों ने दहेज-प्रथा, वेश्या-वृत्ति, शराब, फैशन आदि के विरुद्ध आवाज़ उठायी। साथ ही जात-पाँत, धार्मिक संकीर्णता, साम्प्रदायिकता और छुआछूत की समस्याएँ भी ध्यान आकर्षित करने लगीं।

उस युग के समस्त साहित्य का अवलोकन करें, तो स्पष्ट होगा कि तत्कालीन साहित्यकार लोगों को शराबखोरी एवम् वेश्या-वृत्ति के दुष्परिणाम दिखा रहा था, जमींदारों के अत्याचारों के हवाले दे रहा था, दहेज की बलिवेदी पर कुरबान होने वाली मासूम कन्याओं की करुण कथा सुना रहा था। इसके साथ ही वह समाज से दुरदुराये, अधम और पतित कहे जाने वाले अस्पृश्य हरिजनों की दुर्दशा पर आँसू भी बहा रहा था !

समाज की समस्याओं के प्रति जागरूक नाटककार 'हश्र' भी इन सभी समस्याओं से अलग नहीं रहे। उनके नाटकों में समाज की अच्छी-बुरी तस्वीरें अपने आकर्षक रंगों में मौजूद हैं। अपने अन्तिम दौर (१९२७ से १९३२ ई०) के नाटकों में 'हश्र' ने विशेष रूप से दहेज, जमींदारों के जुल्म, फैशन की बुराइयाँ आदि विषयों पर प्रकाश डाला है। बापू के हरिजनोद्धार आंदोलन की भूमिका के रूप में अपने पौराणिक नाटक **सीता बनवास** में 'हश्र' ने अछूतों की समस्या सामने रक्खी है और बड़े सशक्त ढंग से रक्खी है।

'हश्र' मुसलमान थे, अतः वे हिन्दू-समाज की रीतियों का विरोध करें, ब्राह्मण-विरोधी हों, ऐसी बातें सोची जा सकती हैं। पर दरअसल 'हश्र' का साहित्य सिद्ध कर देता है कि वे किसी जाति या फिरके के न होकर एक आला इन्सान थे और जहाँ भी दमन या अत्याचार था, जहाँ भी इन्सान पीड़ित था, वे अपनी आवाज़ उठाते थे। एशिया, यहूदी, शूद्र सभी अन्याय और शोषण के शिकार थे, सभी गुलामी के बन्धन में पड़े पिस रहे थे, अतः 'हश्र' ने सभी की बाबत समान भाव से लिखा है। मनुष्य मात्र के उत्थान की वकालत की है।

अछूतों की बात कहने से पहले यह जानना जरूरी है कि 'हश्र' ब्राह्मण, हिन्दू धर्म तथा हिन्दू नारी की बाबत क्या कहते हैं? बारीकी से देखें, तो 'हश्र' हिन्दू धर्म और ब्राह्मण का आदर करते हैं और हिन्दू नारी के चरित्र पर तो निसार हैं। आइए, देखें, वे इनकी बाबत क्या कहते हैं—

ब्राह्मण : (नाटक बिल्वमंगल से) प्रभु, ब्राह्मण इस पृथ्वी पर तेरा प्रधान है। ब्राह्मण-हृदय तेरा स्थान है। ब्राह्मण के प्रताप से संसार में धर्म है, कर्म है, ध्यान है, ज्ञान है। जब ब्राह्मण ही अन्धा बनकर ऐसा दुराचार करेगा, तो हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति का कौन उद्धार करेगा?

प्राचीन भारत : (नाटक आज से) अगर मैं तुम्हें विलायत भेजने के बदले किसी संस्कृत पाठशाला में भेजकर भारत की प्राचीन विद्या पढ़वाता, ऋषि-मुनियों की पवित्र शिक्षा से तुम्हारी आत्मा को उज्ज्वल बनवाता, तो आज तुम आज्ञाकारी, परोपकारी, सदाचारी होते,

धर्म : (विल्वमंगल से)

वेद, गीता, उपनिषद् दिखला रहे हैं सत्यमार्ग।
धर्म-नीति कह रही है पाप से बच, दुख से भाग।।
शान्ति, आनन्द, सुख, संतोष का प्रकाश हो।
काम, क्रोध और लोभ-मोह, इन चार का जब नाश हो।।
आँख बन्द, मति मन्द है, अन्धा सब संसार।
विष का प्याला हाथ में अमृत करे विचार।।

सत्संग : है बड़ी शक्ति, बड़ा बल सत्-वचन सत्संग में।

ब्राह्मण हो या क्षत्री वैश्य हो या शूद्र, जिन बच्चों को बाल-अवस्था में बिगाड़ा और सत्संग से दूर रक्खा जायगा, उनका यही परिणाम होगा।

धर्म-प्रताप और वेश्या :

चिन्ता (वेश्या)–विल्वमंगल ! मैं निर्लज्ज हूँ, वेश्या हूँ। एक भंगी और चमार की स्त्री भी जिसे धिक्कार से देखती है, वह हूँ..... । बचपन में दिये हुए धर्म-शिक्षण के प्रताप से अब भी दुनिया की गति पहिचान सकती हूँ।

ब्राह्मण का पतन :

ऐसी गन्दी और जूठी चीज़ पर जो जान दे।
गैर-मुमकिन है कि उसको शूद्र तक भी मान दे।।
जिसकी ऐसी नीच अवस्था, जिसका ऐसा हाल है।
जात का वह ब्राह्मण, पर कर्म का चाण्डाल है।।

कल्याण का मार्ग :

जहाँ से जागे, वहीं सवेरा समझ। प्रभु पर भरोसा कर, हरि-नाम का सुमिरन कर, साधु-संतों का सहारा ले, सत् वचन, सत् विचार और सत् व्यवहार पर कमर बाँध।

अतः स्पष्ट है कि 'हश्र' जहाँ धर्म और उसके विधान का आदर करते थे, वहीं यह भी जानते थे कि जहाँ मानवता पीड़ित होती है, वहाँ धर्म नहीं होता। वे अछूतोद्धार को एक फैशन नहीं समझते थे। दिल की प्यास में समाज का मुँह चाँदी के जूते से बन्द करने की बात उन्होंने कही है–'समाज की परवाह न कीजिए। दो-चार हजार रुपये किसी विधवा आश्रम या अछूतोद्धार फण्ड में दे दूँगा, फिर कोई आवाज़ सुनाई न देगी। समाज का हाज़मा बहुत ज़बरदस्त है, वह बड़े-बड़े अपराध और बड़े-बड़े पाप हज़म कर चुका है।'

'हश्र' ने अछूतों की समस्या पर एक अछूते अन्दाज़ से प्रकाश डाला है। अछूतोद्धार की बात कोई मामूली आदमी कहे, तो क्या असर होगा, अतः 'हश्र' ने

यह बात धर्म-कर्म के स्वामी, गो-ब्राह्मण-पालक भगवान राम के मुँह से कहलवायी है। शूद्र के लिए 'हश्र' का तर्क भी गौरतलब है। भरत कहते हैं कि यह बात हिन्दू-समाज के एक अशिष्ट प्राणी ने, एक मूर्ख धोबी ने कही। राम ने पूछा—क्या वह धोबी मेरी प्रजा नहीं है, क्योंकि राजा के लिए 'प्रजा' मुख्य है, धोबी या ब्राह्मण नहीं। शत्रुघ्न कहते हैं कि शूद्र है, और **जब समाज शूद्र को मनुष्य नहीं समझता,** तब उसके बोलने को भी मनुष्य का बोलना नहीं समझना चाहिए। इस तरह 'हश्र' ने शूद्र की समस्या बिलकुल स्पष्ट शब्दों में सामने रख दी है—समाज के लिए शूद्र मनुष्य नहीं है (और धर्म के लिए शूद्र मनुष्य ही नहीं, उसका अनिवार्य अंग है, वह विश्व-पुरुष का चरण है अर्थात् वह आधार-स्तम्भ है, जिस पर यह समाज खड़ा है)। राम समस्या का समाधान सबल तर्कों से करते हैं। राम के वचन हैं—(१) क्या ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान शूद्र पुरुष औरत से जन्म नहीं लेते? (अर्थात् वे भी मनुष्य हैं और यही बात कबीर ने भी कही है—'जो तू ब्राह्मन बमनी जाया, तो और राह से क्यों नहीं आया?'); (२) फिर शक्ति और शिक्षा के अभाव के सिवा उनमें और दूसरे मनुष्यों में क्या भेद है? (अर्थात् यदि इन लोगों को शिक्षा दी जाय, अधिकार मिले, तो वे समाज के किसी भी वर्ग के बराबर खड़े हो सकते हैं। समाज ने जानबूझकर इन्हें पतित और हीन अवस्था में बाँध रक्खा है)। आगे 'हश्र' शूद्रों के उत्पीड़न, उन्हें अछूत बनाये रखने के कारण होने वाली हानि पर भी रोशनी डालते हैं-'जिसकी जड़ खोखली हो, वह वृक्ष, जिसके स्तम्भ बोदे हों, वह छत जिसकी नींव हिल रही हो, वह घर और **जिस देश में थोड़े से आदमी उच्च जाति में जन्म लेने के कारण अपनी मातृ-भूमि के करोड़ों बच्चों को बलहीन, शिक्षाहीन, अधिकारहीन दास** बनाकर अपने पैरों के नीचे रखना चाहते हों, वह देश कभी दीर्घ समय तक सिर ऊँचा किये हुए अपनी जगह पर खड़ा नहीं रह सकता।' 'हश्र' ने ठीक कहा है कि यह वर्ग समाज की जड़ है, स्तम्भ है, नींव है और इसे अछूत बनाकर खड़े रखने की बात मूर्खता है। 'हश्र' ने समाज से धर्म-नीति की बात नहीं कही है, विशुद्ध निजी स्वार्थ का तर्क दिया है। अगर देश को आगे बढ़ाना है, तो इस पिछड़े वर्ग को, इन दलित मानवों को ऊपर उठाना ही होगा। आगे बात और स्पष्ट है। राम कहते हैं—'इसलिए शूद्रों को भी महाप्रयोजनीय अंग जानो और उनकी पुकार को भी मनुष्य की पुकार समझो।' 'हश्र' के लिए अछूत केवल शूद्र या हरिजन या हिन्दू क़ौम का गिरा हुआ अंग नहीं है, मनुष्य है और जहाँ मनुष्य गिरा रहेगा, वहाँ उन्नति कैसे होगी? मशीन से कुछ पुर्जे निकाल लिये जाँय, तो क्या वह चलेगी? इसीसे कहा है कि शूद्र केवल समाज के साधारण अंग नहीं हैं, वे तो महाप्रयोजनीय अंग हैं, अतः उन्हें स्वीकार करो, उन्हें उन्नत करो, उन्हें बल, बुद्धि, विद्या और

मानवता का आदर प्रदान करो। इसी में समाज का, देश का कल्याण है। इसमें धर्म बाधक नहीं है !

यह भी ज्ञातव्य है कि सीता बनवास नाटक 'हश्र' ने सन् १९२७ ई० में लिखा था, जब बापू अपना हरिजनोद्धार आंदोलन शुरू करने जा रहे थे। राष्ट्रपिता के स्वर में स्वर मिलाकर नाटक के माध्यम से राष्ट्र के नेता के संदेश को प्रसारित कर 'हश्र' ने मानवता की और देश की अभूतपूर्व सेवा की।

आग़ा जमील

दहेज-प्रथा का घोर विरोध

आग़ा 'हश्र' काश्मीरी के नाटक केवल मनोरन्जन के लिए ही नहीं हैं, बल्कि जगह-जगह पर उनके नाटकों में ऐसी-ऐसी समस्याएँ और उनके समाधान भी हैं, जो दर्शकों को उनके मन में नयी-नयी उत्तेजना, नयी प्रेरणा भर कर सीधे और लाभदायक मार्ग पर ले चलने में कृतकार्य होते हैं। 'हश्र' समाज को अमर्यादित, चञ्चल तथा भयभीत कर देने वाली बुराइयों को देखकर, जिनके फलस्वरूप भारत-वासी उन्नति की राह से भटककर दुर्भाग्यपूर्ण दलदल में फँसे हुए हैं, अन्य समाज-सुधारकों की तरह द्रवित हृदय से उनके निवारण के लिए जीवन में सदा प्रयत्नशील रहे। शराब, जुआ, दहेज, सूदखोरी, ग़रीबी इत्यादि समाज के ऐसे घुन हैं, जिन्होंने अन्दर ही अन्दर उच्च गुणों, उच्च स्वभाव और उच्च व्यवहार को दीमक की तरह चाटकर भारतवासियों को चरित्रहीन बना दिया है। इस दुर्दशा से देश को मुक्त करने के लिए हर समाज-सुधारक अपनी-अपनी क्षमता और अनुभव के अनुकूल उन्नीसवीं शताब्दी से निरन्तर प्रयास करता रहा है। आग़ा 'हश्र' ने अपने नाटकों के द्वारा समाज की इन बुराइयों को दूर करना अपना और अपने साहित्यिक जीवन का कर्त्तव्य समझा। फलतः उन्होंने कई सामाजिक नाटक लिखे, जो रंगमंच पर आने के पश्चात् जनता की असहायावस्था को दूर करने के लिए प्रयत्नशील ही नहीं हुए, बल्कि साहित्य के अनमोल रत्न भी बन गये।

आग़ा 'हश्र' के नाटक इसीलिए प्रभावशाली और लोकप्रिय बन सके कि समाज में फैली हुई कोई-न-कोई बुराई किसी-न-किसी चरित्र के रूप में वे उसी तरह प्रस्तुत कर देते हैं, जैसा कि साधारणतः प्रत्येक दिन देखने में आता है। उन्हें देखकर प्रत्येक दर्शक अपने अन्तःकरण के समक्ष अपनी स्थिति रखते हुए उसके परिणाम को सोचता और अपने सुधार के मार्ग को ढूँढने लगता है। ऐसा मार्ग-दर्शन देना ही सच्चे समाज-सुधारक का कर्त्तव्य है।

दहेज-प्रथा

दहेज-प्रथा भारत में एक ऐसा रोग है, जिसके कारण आज भी हर परिवार का प्रधान—पिता, चाचा या बड़ा भाई गृहलक्ष्मी-जैसी कन्या, भतीजी या बहन को अपनी छाती पर लिए हुए, अपनी निस्सहाय स्थिति के विपरीत अपना सब-कुछ अर्पण कर देने के लिए प्रस्तुत होने के बावजूद डबडबाई आँखों से लड़के के पिता की 'हाँ' सुनने के लिए भिखारी के समान लड़के के घर की चौखट की परिक्रमा बार-बार करता रहता है। फिर भी लड़की के बाप को कोई सन्तोषजनक जवाब नहीं मिलता। सन् १९३० में आगा 'हश्र ने दहेज और उसके भयंकर परिणाम को सामने रखते हुए **ग़रीब की दुनिया उर्फ़ धर्मी बालक** नामक सामाजिक हिन्दी ड्रामा लिखा था, जो मैडन (मादन) थिएट्रिकल कम्पनी, कलकत्ता के मंच पर लगातार खेला गया, जिसने दर्शकों को दूर तक प्रभावित किया। इस नाटक का एक दृश्य आगे दिया जा रहा है—

'ग़रीब की दुनिया उर्फ़ धर्मी बालक' के प्रथम एक्ट का छठा सीन

(कैलाशनाथ का घर)

कैलाशनाथ—तुम्हारे कहने की जरूरत नहीं है। मैं खुद जानता हूँ, लड़कियों के विवाह न होने के कारण समाज मुझ पर नाम रखता है। मोहल्ले वाले हँसते हैं। जात-बिरादरी के लोग ताना देते हैं। किन्तु क्या प्रबन्ध करूँ? रुपये के लिए किसी धनवान के घर पर डाका डालूँ, किसी बैंक में सेंध लगाऊँ, किसी की जेब में नोटों का बण्डल देखकर उसकी पीठ में पीछे से छुरी भोंक दूँ या अभागिनी लड़कियों को हाथ-पैर बाँधकर गंगा में बहा दूँ?

पुरोहित— आपकी कन्याओं के मङ्गल के लिए एक महीने से दरवाज़े-दरवाज़े भटक रहा हूँ। लड़का वंश और स्वभाव का अच्छा हो, तन्दुरुस्त हो, पढ़ा-लिखा हो, चार पैसे कमा सकता हो और बीवी-बच्चों को सुख से रख सकता हो। ब्याह से पहले यही बातें देखी जाती हैं। ऐसे लड़के इस शहर में एक-दो नहीं, बीसियों हैं। किन्तु क्या करूँ? दूसरों के दिल में अपना दिल नहीं डाल सकता। इस सम्बन्ध के लिए किसी तरह उनके माँ-बाप राजी नहीं होते।

कैलाशनाथ—क्यों राजी नहीं होते? क्या मेरी लड़कियाँ अन्धी, लूली-लँगड़ी हैं? क्या वह रोगी हैं? क्या वह हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज को अपने आचरण से कलंकित करती हैं? क्या वह माता-पिता की भक्ति, बड़ों के आदर, छोटों से प्यार, दीन-दुखियों की सहायता, ईश्वर की पूजा, गऊ और ब्राह्मण की सेवा को पाप समझती हैं? क्या वह घूँघट निकालकर 'भागवत' और 'रामायण' का पाठ करने के बदले

आरामकुर्सी पर बैठकर 'नाविल' और नाटक पढ़ती हैं ? उल्टे बाल सँवारती हैं ? टेढ़ी माँग निकालती हैं ? मुँह पर पाउडर मलती हैं ? ऊँची साड़ी और ऊँची एड़ी का बूट पहनकर क्लबों और थिएटरों में भारत की ललनाओं का नाम हँसाती फिरती हैं ? वह दोनों गाय की तरह सीधी और पुण्यमयी गङ्गा की तरह पवित्र हैं, इस दोष के सिवा और उनमें क्या दोष है ?

पुरोहित–उनका यही दोष है कि उनका पिता कुलवान और धर्मवान है, किन्तु धनवान नहीं है ! उनका पिता लड़कियों को ब्याह में आशीर्वाद दे सकता है, लेकिन लड़के के बाप को मुँहमाँगा रुपया नही दे सकता !

कैलाशनाथ–तो इसका अर्थ यह हुआ कि लोग सुन्दर, सुशील, धर्मपरायणा कन्याओं के साथ नहीं, अपने लड़कों का ब्याह रुपयों के साथ करना चाहते हैं । उन्हें गृह-लक्ष्मी नहीं, केवल लक्ष्मी चाहिए । रूपवती नहीं, रुपयावती चाहिए । क्या अपने पुण्य, प्रेम, सत्य और स्वामिभक्ति से रुपया उनके घर को स्वर्ग बनायेगा ? क्या दुःख-बीमारी में दिन का चैतन्य और रात की नींद त्यागकर रुपया उनके लड़कों की सेवा करेगा ? यदि उन लोभियों के लिए इस दुनिया में रुपया ही सब कुछ है, तो उन्हें सनातन धर्म को त्यागकर नोट के कागज़ को अपना वेद-पुराण, टकसाल को अपना मन्दिर और रुपये को अपना ईश्वर समझना चाहिए ।

पुरोहित–महाशय, यह बहुत बुरा जमाना है । लड़कियाँ जवान हो चुकी हैं, इसलिए जैसे हो और जिस जगह हो, उनका ब्याह होना चाहिए । याद रखिए, जिस घर की तिजोरी में सोना-चाँदी रखा हो, केवल उसी घर में चोरी नहीं हुआ करती । जिस घर में रूप और जवानी हो, उस घर पर भी डाका पड़ा करता है ।

कैलाशनाथ–तुम्हारा इशारा समझता हूँ, किन्तु जहाँ रुपया नहीं है, वहाँ उपाय भी नहीं है । आह, क्या यही देश है, जिसकी गोद में दया ने जन्म लिया था ? पहले धर्म पूजा जाता था और अब धन पूजा जाता है ! पहले लोग लड़की के ब्याह को धार्मिक कर्त्तव्य समझते थे और अब व्यापार समझते हैं । पहले पूछते थे कि लड़की कैसी है और अब पूछते हैं कि लड़की के बाप के पास कितना है ? पहले लड़कों में रूप, गुण, सत्य ढूँढ़ते थे और अब गुण की जगह गहने, रूप के बदले रुपये और सत्य की जगह लड़की के बाप की सम्पत्ति ढूँढ़ते हैं ।

पुरोहित–लड़कियों की उम्र और आपकी ग़रीबी देखकर मैंने जो राय दी थी, यदि अब भी वह राय आप मान लें, तो पैसे दिये बग़ैर दोनों में से एक का ब्याह आज ही हो सकता है ।

कैलाशनाथ–हो सकता है ! और रुपये दिये बिना ! ! किसके साथ ?

पुरोहित–क्या नाम भूल गये ? केशव बाबू के साथ ।

कैलाशनाथ—उस लोभी, स्वार्थी, बूढ़े के साथ, जिसका एक पांव घर में और दूसरा चिता में है, जिसके जीवन की जड़ें उखड़ चुकी हैं, जो हवा मे रखे चिराग की तरह आखिरी हिचकी लेकर बुझा चाहता है। यदि ईश्वर ने तुम्हें भी सन्तान दी होती, तो यह शब्द कहते ही दोनों होंठ शर्म की आग में जल उठते। ये घृणित राय इसीलिए दे रहे हो कि न तुम पिता हो और न तुम्हारी छाती में पिता का हृदय है।

(केशव बाबू और श्यामलाल का प्रवेश)

केशव बाबू—कैलाशनाथ, मैं तुम्हें अन्तिम नोटिस देने आज खुद आया हूँ। डिग्री के रुपयों का क्या बन्दोबस्त किया ?

कैलाशनाथ—जमींदारी थी, जो कौड़ियों के भाव नीलाम हो गयी। मकान था, वह भी रेहन हो चुका। जिन दोस्तो की मुसीबत में तमस्सुक और परनोट लिखाये बगैर मैंने हजारों रुपयों से मदद की थी, वह रुपया पाने ही से इन्कार कर रहे हैं। फिर मैं क्या बन्दोबस्त कर सकता हूँ !

श्यामलाल—तो क्या हम ये समझाना चाहते हो कि तुम्हारे पास कुछ नहीं है ?

कैलाशनाथ— क्यों नहीं है, कर्ज का बोझ है, लड़कियों के ब्याह की चिन्ता है, गरीबी है, दुःख है आँसू हैं, रुपये के सिवा बहुत कुछ है। लेकिन इस दुनिया में दुःख का कौन खरीदार है ? आँसुओं की कहाँ कीमत मिलती है, गरीब की फूटी हुई क़िस्मत कौन मोल लेता है !

श्यामलाल—तो फिर केशव बाबू क्या करें ? इनका बाजार में लाखों का लेन-देन है और लेन-देन में हर वक्त रुपयों की जरूरत रहती है।

कैलाशनाथ—घर-गृहस्थी का थोड़ा सामान, चालीस-पचास बर्तन और मेरी स्वर्गीय धर्मपत्नी के पन्द्रह-बीस चाँदी-सोने के गहने बच गये हैं। यही सामान और गहने मैं लड़की के दहेज में देना चाहता था, अब नहीं दूँगा। भिखारी की लड़कियाँ, भिखारिनों की ही तरह ब्याही जायेंगी। जो कुछ है ले लीजिए और बाकी ऋण के लिए दया कीजिए। आपको रुपये की जरूरत है और मुझे आपकी दया की जरूरत है।

केशव बाबू—मैं तुम्हारे मकान के रेहननामे को दियासलाई दिखा दूँगा। डिग्री के हजार रुपये माफ कर दूँगा और जिन्दगी के बाकी दिन सुख से बिताने के लिए तुम्हें दस हजार और दूँगा। लेकिन इस दया के बदले मेरे साथ अपनी दोनो लड़कियों में से एक का ब्याह·····

कैलाशनाथ—बस, आगे नहीं····दौलत के लिए बूढ़े के साथ जवान लड़की का ब्याह कर देना ब्याह नहीं, ब्याह की वेदी पर लोभ की छुरी से कन्या के जीवन, जवानी

और भविष्य के सुखों का बलिदान करना है। मैं कन्या वेचकर तुमसे तुम्हारी दया खरीदना नहीं चाहता।

श्यामलाल–जानते हो, इस 'नहीं' कहने के बाद क्या होगा ?

कैलाशनाथ–वही जो करम में लिखा है।

श्यामलाल–किन्तु ऐसे धनवान के साथ अपनी कन्या का विवाह करके अपने करम के लिखे को बदल सकते हो।

केशव–प्रेम, मान, धन, सुख, कपड़ा, गहना सब कुछ मौजूद है। अपनी कन्या के लिए इससे ज्यादा और क्या चाहते हो ?

कैलाशनाथ–बस, धीरज की भी हद होती है। एक गरीब की सहनशक्ति की परीक्षा न लो।

केशव–मैं तुम्हें सोचने के लिए एक दिन का समय देता हूँ। सोचने के बाद भी यही जवाब दिया, तो फिर इस घर के बदले जेल में दिखाई दोगे।

(पुरोहित, केशव बाबू, श्यामलाल का प्रस्थान)

कैलाश–जेल ! वह मुझे जेल भेजना चाहता है, किन्तु मेरे लिए तो यह संसार ही एक जेल है। दुःख की चारदीवारी के अन्दर चिन्ता की अँधेरी कोठरी में बन्द हूँ। हाथों में कन्या-रूपी हथकड़ियाँ पड़ी हुई हैं। बूढ़ी पीठ पर गरीबी के कोड़े पड़ रहे हैं। जीवन की कैद की मुद्दत कब पूरी होगी, उसके लिए एक-एक दिन गिन रहा हूँ। ओह ! इस भारत में लड़कियों का बाप होना भी एक पाप है और किस्मत, महाजन, समाज सब मिलकर मुझे इस पाप की सजा दे रहे हैं।

(गौतमी का प्रवेश)

गौतमी–पिता जी, बहुत देर हुई, क्या आज भोजन न कीजियेगा ?

कैलाश–देखो, इस दुःख की चलती-बोलती मूर्ति को देखो। माँ के गर्भ में आने के समय ईश्वर से सौन्दर्य माँग कर लायी, देवियों का स्वभाव माँग कर लायी, धर्म, पुण्य, लाज, सत्य माँग कर लायी, किन्तु भाग्य माँग कर नहीं लायी। रूप लायी, किन्तु समाज के लोभियों के लिए रुपया माँग कर नहीं लायी। मैं समझा कि दो लक्ष्मियाँ पैदा हुई हैं। ये नहीं समझा था कि लक्ष्मियों का रूप धारण करके मेरे घर में, मेरे पुनर्जीवन के पापों ने जन्म लिया है। अभागिनी, गरीब बाप के घर में दुःख भोगने के लिए क्यों आयी ? सुख चाहती है, तो मर, जा, किसी धनवान के घर में जन्म ले।

(गौतमी का गला दबाता है, सावित्री का प्रवेश)

सावित्री–पिता जी, पिता जी !

कैलाश–आ गयी ! मृत्यु की पुकार सुनकर तू भी आ गयी !! अच्छा, दोनों के लिए एक ही चिता बनानी पड़ेगी। जिस दुनिया में रुपया दिए बगैर सुशीला, धर्म-

परायणा कन्या को भी वर नहीं मिल सकते, जिस दुनिया में साठ बरस के बूढ़े दौलत का लालच और जेल की धमकी देकर गरीब बापों से उनकी लड़कियाँ छीनना चाहते हैं, इस नीच दुनिया में जीकर क्या करोगी। ये मर रही हैं, तू भी मर।

(सावित्री का भी गला दबाता है)

अरे! यह क्या!! —क्या गला घोंटकर मार डालने के लिए मैंने तुम्हें अपने स्नेह की छाया में पाल-पोस कर बड़ा किया था? क्या पैरों से रौंद डालने के लिए, इन कलियों को पिता-प्रेम के अमृत से सींचकर फूल बनाया था? (जमीन पर घुटने टेककर) क्षमा करो, क्षमा करो मेरी बच्चियों, अपने अभागे बाप का अपराध क्षमा करो। मैं दुःख से पागल हो गया हूँ।

दोनों–पिता जी! (हाथ पकड़कर उठाती हैं)

कैलाश–रोती हो? क्यों रोती हो? क्या तुम्हारे रोने से मनुष्य-रूपी राक्षस देवता हो जायेंगे? तुम्हारा रोना देखकर धन की पूजा करने वाले समाज को दया आ जायेगी? अभी तुम्हारे भाग्य में बड़े-बड़े दुःख लिखे हैं और तुम्हें हर दुःख पर रोना होगा, इसलिए इन आँसुओं को रख छोड़ो। तुम गरीब की लड़कियाँ हो, तुम्हें आँसू भी उधार न मिल सकेंगे। क्या विचित्र जीवन है! दुःख का अन्त भी नहीं और मृत्यु भी नहीं!

(चला जाता है)

सावित्री–(जाते-जाते) भगवान, पिता को सुख नहीं देते, तो सहन-शक्ति दो।

(चली जाती है)

गौतमी–हमारे ही विवाह की चिन्ता ने पिता की ये अवस्था कर दी। हमारी ही सूरत देखकर उनकी आँखों से आँसुओं की धाराएँ बहने लगती हैं—हम दोनों बहनें पिता के गले की फाँसियाँ हैं। यदि एक फाँसी भी कम हो जाती, तो वह थोड़ी देर के लिए सुख की साँस ले सकते। पिता, पूज्य पिता, मैं अब तक तुम्हारी कोई सेवा नहीं कर सकी। आज इस अपराध का प्रायश्चित्त करूँगी। तुम्हारे जीवन को थोड़ा-बहुत सुखी करने के लिए अपने जीवन का बलिदान दूँगी। देवताओं, मैं पिता-सेवा-यज्ञ में अपनी आहुति देने जा रही हूँ। इस यज्ञ-पूर्ति में मेरी सहायता करो, मैं अबला दुर्बला हूँ, मेरे हृदय में बल दो।

(प्रस्थान)

रा० कु० दवे

जन-कल्याण के पक्षधर

आगा 'हश्र' मानव-जाति के सर्वतोमुखी विकास एवं जन-कल्याण के पक्षधर थे। 'हश्र' की नारी जहाँ सती-साध्वी, पतिव्रता तथा पुरुष के प्रति क्षमाशील है,

वहीं वह अन्यायी एवं स्वार्थी पुरुष-समाज के प्रति विद्रोहिणी भी है। वे नारी के उत्थान के साथ ही शराबियों के संस्कार के भी हिमायती थे।

नारी की भूमिका

स्त्री-पुरुष की सामाजिक स्थिति के चित्रण में समाज में नारी की महत्त्वपूर्ण भूमिका का प्रदर्शन कितने मार्मिक ढंग से आग़ा साहब ने **सीता बनवास** में धोबिन के संवाद में प्रस्तुत किया है—

·····जगत-रचयिता ब्रह्मा, देख लो तुम्हारी दुनिया, देख लिए तुम्हारे बनाये पुरुष और देख लिया इन पुरुषों का विधान। वो नारी जाति, जो इन पुरुषों की माता बनकर जन्म देती, भगिनी बनकर जान छिड़कती, कन्या बनकर आज्ञा-पालन करती, पत्नी बनकर निःस्वार्थ सेवा करती, वो नारी-जाति, जो ग़रीबी में संतोष सिखाती, निराशा में साहस बढ़ाती, दुःख में ढाँडस बँधाती और बीमारी में अपना सुख और नींद तजकर पलंग के पायताने बैठकर पहाड़ जैसी लम्बी रातें आँखों में काट देती है।

पुरुष अन्यायी, निर्मम और विश्वासघाती हैं, स्त्रियों को भोग-विलास की सामग्री, जी बहलाने का खिलौना, रोटी-कपड़े पर मोल ली हुई लौंडी, कुटुम्ब और बच्चों की सेवा करने वाली दासी के अलावा और कुछ नहीं समझते। स्त्री के दुःख को दुःख न समझना ही इनकी सबसे बड़ी वीरता है। इसलिए इन स्वार्थी पुरुषों से अपनी श्रद्धा वापस ले लो।

एक पतित पुरुष के लिए समस्त पुरुष-जाति को हृदयहीन न समझो। हिन्दू धर्म में स्त्री को देवी की पदवी दी गयी है। लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती, दुर्गा, गंगा यह सब स्त्रियाँ ही हैं, जिनके चरणों में हर रोज़ शीश नवाकर सारा आर्यावर्त नमस्कार करता है। वह हिन्दू ही नहीं, जो स्त्री-जाति का अपमान और तिरस्कार करता है।

मद्यपान के दुष्परिणाम

शराब के दुष्परिणामों से बचने के लिए शासन नशाबन्दी की नीति पर ज़ोर दे रहा है, परन्तु आग़ा साहब ने, जो स्वयं अत्यधिक शराब पीते थे, शराब से किस प्रकार सावधान किया है, **तुर्की हूर** नाटक में दिये इस गीत से प्रकट होता है—

गिलासों में जो डूबे फिर न उभरे ज़िन्दगानी में।
हज़ारों बह गये इन बोतलों के बन्द पानी में॥
न कर बरबाद अपनी ज़िन्दगी बोतल के दीवाने!
वह काटेगा बुढ़ापे में, जो बोयेगा जवानी में॥

यह दारू का प्याला मौत का कड़वा प्याला है।
मिला है ज़हर शर्बत में, छिपी है आग पानी में।।
जलाकर खून दारू जिस्म को बरबाद कर देगी।
चलेगी क्या घड़ी ही, दम न होगी जब कमानी में।।

तुर्की हूर में भी पात्र नाजिम, आरिफ़ और तारिक के संवादों के माध्यम से आगा साहब ने कहा है—

तारिक-लीजिए, नोश कीजिए, यह रंज और फिक्र भुलाने की पेटेण्ट दवा है।

हलक से उतरी कि बस, आराम पाया जान ने।
यह दवा ईजाद की है, डाक्टर लुकमान ने।।

आरिफ़-माफ़ कीजिए।
नाजिम-क्यों, यह तो मुर्दे को ज़िन्दा करने वाली आबे हयात है।
आरिफ़-लेकिन मैं इसे सारी बीमारियों का रास्ता और तमाम खौफ़नाक ज़हरों का निचोड़ समझता हूँ।
नाजिम-अजी इसकी रंगत तो देखिए।
आरिफ़-यह रंगत नहीं, शैतान के चेहरे की दमक है।
नाजिम-इसकी खुशबू तो सूँघिए।
आरिफ़-यह खुशबू नहीं, परनाले की बदबू है।
नाजिम-इसकी लज्जत तो चखिए।
आरिफ़-यह लज्जत नहीं, मौत के प्याले की कड़वाहट है। शराब का नुकसान उन पुलिस के सिपाहियों से पूछिए, जो हर रोज सड़क पर पड़े शराबियों को ले जाकर हवालात में बन्द करते हैं। शराब के नुकसान उन ग़रीबों की बदनसीब औरतों से पूछिए, जिनके शराबी शौहर आधी रात को झूमते हुए घर में आकर बीवी-बच्चों के साथ लातों और गालियों से अपनी मोहब्बत जाहिर करते हैं।

कल की बचत

आग़ा साहब के कुछ संवादों से स्पष्ट होता है कि उनका अध्ययन अनेक छोटे-बड़े ग्रन्थों का निचोड़ था। 'साईं, सब संसार में मतलब को ब्योहार' गिरधर की इस कुण्डलिया पर आधारित विचार तुर्की हूर के इस गीत में देखिए—

दुनिया में जब धन पाना, कल के लिए बचाना।
धन रख जो हो फल खाना, कल के लिए बचाना।।
बुरे दिन में न भाई और न जाया काम आता है।
फ़क़त अपना कमाया और बचाया काम आता है।।

सभी हँसते हुए मिलते हैं, जब तक चार पैसे हैं।
न पूछेगा कोई मुफलिसी में — आप कैसे हैं ।।
मतलब का यार ज़माना, कल के लिए बचाना ।।
नहीं रहती है मछली भी, नदी जब सूख जाती है।
जो दौलत है, तो तुम दूल्हा हो और दुनिया बराती है ।।
जो कल से बेख़बर होकर नहीं है आज आपे में।
वह घर-घर भीख माँगेगा, ग़रीबी और बुढ़ापे में ।।
मत दौलत मुफ्त गमाना, कल के लिए बचाना ।।

(राग भैरवी, मात्रा ८)

आग़ा 'हश्र' ने अपने नाटकों में युगीन समस्याओं का अंकन कर न केवल समाज का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया, उनका समाधान प्रस्तुत कर समाज-सुधारक की भूमिका का भी निर्वाह किया ।

साहित्य-सन्दर्भ
एवं
परिशिष्ट

'हश्र' समालोचन युगे-युगे

☐ हिन्दी-उर्दू ग्रन्थ

१–(डॉ०) अंजुमन आरा 'अंजुम'—आगा 'हश्र' काश्मीरी और उर्दू ड्रामा, प्रकाशक एजुकेशनल बुक हाउस, अलीगढ़, १९७९ ई० (उर्दू)

२–(प्रो०) अब्दुल अलीम नामी—१- उर्दू थिएटर, भाग १, २ और ३, कराची (उर्दू)
२- बिब्लियोग्राफी आफ उर्दू ड्रामा (उर्दू)

३–अब्दुल कुद्दूस 'नैरंग'— १- आगा 'हश्र' और नाटक, प्रका० उ०प्र० संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ, १९७८ ई० (हिन्दी)
२- कलामे 'हश्र' (उर्दू)
३- पयामे 'हश्र' (उर्दू)

४–इशरत रहमानी— १- आगा 'हश्र', लाहौर (उर्दू)
२- उर्दू ड्रामा : तारीख व तनक़ीद, लाहौर (उर्दू)

५–एहतिशाम हुसैन— उर्दू साहित्य का इतिहास (हिन्दी)

६–जमील अहमद कंधापुरी— यादगारे 'हश्र', प्रका० नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्स, ताजिराने कुतुब, लाहौर, १९४२ ई० (उर्दू)

७–तुफैल अहमद 'बदर' अमरोहवी—तज्जलियाते 'हश्र', प्रका० ताज कं०, लाहौर (उर्दू)

८–मोहम्मद उमर एवं नूर इलाही—नाटक सागर (उर्दू)

९–(प्रो०) रामबाबू सक्सेना— तारीख उर्दू अदब (उर्दू)

१०–(डॉ०) विद्यावती लक्ष्मणराव नम्र—हिन्दी रंगमंच और पं० नारायण प्रसाद 'बेताब', प्रका० विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९७२ ई० (हिन्दी)

११–सैयद बादशाह हुसैन हैदराबादी—उर्दू में ड्रामानिगारी, हैदराबाद, १९३५ ई० (उर्दू)

□ लेख पत्र-पत्रिकाओं में

१–(प्रो०) अब्दुल रशीद 'तपिश'–आग़ा 'हश्र' काश्मीरी ('अदब-ए-लतीफ़', सालनामा, १९४१ ई०, उर्दू)

२–इम्तियाज अली 'ताज'— १- उर्दू ड्रामा और आग़ा 'हश्र' ('नैरंगे खयाल', फरवरी, १९६६, उर्दू)
२- उर्दू ड्रामा की मुक़ामतें ('कारवाँ', १९३९ ई० उर्दू)

३–जनार्दन भट्ट— पारसी रंगमंच और हिन्दी नाटक ('माधुरी', लखनऊ, वर्ष ७, खण्ड १, संख्या ४, १९२८ ई०, हिन्दी)

४–जमील जालबी— आग़ा 'हश्र' और ड्रामे की रिवायत ('तहरीक', दिल्ली, जिल्द १३, संख्या ४, जुलाई, १९६५ उर्दू)

५–परिपूर्णानन्द वर्मा— आग़ा मुहम्मद शाह 'हश्र' (दैनिक 'जागरण', कानपुर, साप्ताहिक परिशिष्ट, १५ अक्टूबर १९६७ ई०, पृ० ९, हिन्दी)

६–फ़ज़्ले हक़ कुरैशी देहलवी— आग़ा 'हश्र' से मुलाक़ात ('अदब-ए-लतीफ़', सालनामा, १९३९ ई०, उर्दू)

७–बादशाह हुसैन हैदराबादी— 'हश्र' के मुतल्लिक दो नज़रिये ('अदब-ए-लतीफ़', जुलाई, १९४० ई०, उर्दू)

८–मंसूर अहमद— हिन्दुस्तान के शेक्सपियर आग़ा 'हश्र' काश्मीरी ड्रामा क्यूँकर लिखते थे ? ('अदबी दुनिया', सालनामा, १९३५ ई०, उर्दू)

९–मुज़फ्फर हुसैन शमीम'— ड्रामायी टेकनीक में आग़ा 'हश्र' के तजुर्बे ('मशरब', तारीखे उर्दू अदब नंबर, कराची, जून-जुलाई, १९५६ ई०, उर्दू)

१०–मोहम्मद सईद— हिन्दुस्तानी नाटक और आग़ा 'हश्र' मरहूम ('साकी', अक्टूबर, १९३८ ई०, उर्दू)

११–मोहम्मद हुसैन 'अदीब'— उर्दू ड्रामा ('हुमायूँ', जून–जुलाई, १९३४, उर्दू)

१२–(प्रो०) विकार अज़ीम— ड्रामे की तर्कीब ('साकी', नवम्बर, १९३४, उर्दू)

प्रस्तोता द्वय–डॉ० भानुशंकर मेहता एवं रंगाचार्य

आगा 'हश्र' के नाटक और उनका मंचन

१–उर्दू नाटक

१—**आफ़ताबे मुहब्बत** (१८९७ ई०, र०)–बनारस में उसी वर्ष या उसके कुछ काल बाद अभिनीत।

२—**मुरीदे शक** (शेक्सपियर-ए **विन्टर्स टेल** का उर्दू-रूपान्तर)–सन् १८९९ में पारसी अल्फ्रेड कम्पनी द्वारा मंचित।

३—**मारे आस्तीं**–सन् १९०० में पारसी अल्फ्रेड द्वारा अभिनीत।

४—**असीरे हिर्स** (१९०२ ई०, र०)–शेरिडन-**पिज़ारो** का उर्दू-रूपान्तर। पारसी अल्फ्रेड द्वारा आरंगित।

५—**दोरंगी दुनिया उर्फ़ मीठी छुरी**–सन् १९०४ ई० में नौरोजजी परी की मण्डली द्वारा खेला गया।

६—**दामे हुस्न** (१९०५ ई०, र०)–सर्वप्रथम, नौरोजजी परी की मण्डली द्वारा और बाद में **शहीदे नाज़** के नाम से अल्फ्रेड द्वारा अभिमंचित। शेक्सपियर-**मेजर फार मेजर** का छायानुवाद।

७—**सफेद ख़ून**–दादाभाई ठूंठी की पारसी नाटक मण्डली द्वारा सन् १९०६ में अभिनीत। शेक्सपियर-**किंग लियर** का उर्दू-रूपान्तर।

८—**सैदे हवस** (१९०६ ई०, र०)–ठूंठी की पारसी नाटक मण्डली द्वारा सन् १९०७-८ में मंचित। शेक्सपियर-**किंग जॉन** के दो दृश्यों को लेकर कथानक का गठन।

९—**ख़्वाबे हस्ती** (१९०७ ई०, र०)–न्यू अल्फ्रेड नाटक मण्डली द्वारा अभिमंचित शेक्सपियर-**मैकबेथ** के मु० शाहबुद्दीन-कृत छायानुवाद **दाँव-पेंच** का परिवर्तित रूपान्तर।

१०—**ख़ूबसूरत बला** (१९०७ ई०, र०)–इसी वर्ष और उसके बाद न्यू अल्फ्रेड ने खेला।

११—**सिल्वर किंग उर्फ़ जुर्मे वफ़ा** (१९१० ई०, र०) अपनी दि ग्रेट अल्फ्रेड थिएट्रिकल कम्पनी, हैदराबाद द्वारा मंचित। इसी का काट-छाँट कर संशोधित रूप है : **नेक परवीन उर्फ़ अछूता दामन**।

१२—**यहूदी की लड़की** (१९१३ ई०, र०)–अपनी दूसरी मण्डली इंडियन शेक्सपियर थिएट्रिकल कम्पनी द्वारा अभिनीत ।

१३—**तुर्की हूर** (१९२२ ई०, र०)–किसी मण्डली द्वारा इसी वर्ष आरंगित ।

१४—**रुस्तम सोहराब** (१९२९ ई०, र०)–सम्भवतः फिल्मों के लिए रचित, किन्तु बाद में पारसी इम्पीरियल नाटक मण्डली द्वारा मंचित ।

२–हिन्दी नाटक

१—**बिल्वमंगल उर्फ़ भक्त सूरदास** (१९१५ ई०, र०)–अपनी दूसरी मण्डली के लिए रचित/अभिनीत ।

२—**वनदेवी** (१९१६ ई०, र०)–इसी मण्डली द्वारा मंचित ।

३—**मधुर मुरली** (१९१८-१९ ई०, र०)–मादन थिएटर्स, कलकत्ता द्वारा खेला गया ।

४—**भगीरथ गंगा** (१९२० ई०, र०)–तदैव ।

५—**भारत रमणी** (१९२० ई०)–इस वर्ष **वनदेवी** का पुनर्लेखन **भारत रमणी** के नाम से किया गया ।

६—**हिन्दुस्तान क़दीम व जदीद** (१९२१ ई०, र०) ।

७—**पहला प्यार उर्फ़ संसार-चक्र** (१९२३ ई०, र०)–कोरंथियन थिएटर, कलकत्ता में ११ जुलाई, १९२३ को अभिनीत ।

८—**आँख का नशा** (१९२४ ई०, र०)–कोरंथियन थिएटर में अभिमंचित ।

९—**भीष्म** (या **भीष्म प्रतिज्ञा**, १९२५ ई०, र०)–इस नाटक पर 'हश्र' ने अपनी फिल्म कम्पनी (लाहौर) में फिल्म भी बनायी थी, जो अपूर्ण रह गयी ।

१०—**सीता वनवास** (१९२८ ई०, र०)–चरखारी में रचना तथा दि रायल थिएटर में मचन ।

११—**राम अवतार**–चरखारी में रचना तथा मंचन ।

१२—**धर्मी बालक उर्फ़ ग़रीब की दुनिया** (१९३० ई०)–मादन थिएटर्स के अन्तर्गत एल्फिन्स्टन मण्डली के लिए रचित तथा मंचित ।

१३—**भारतीय बालक उर्फ़ समाज का शिकार** (१९३१ ई०)–तदैव ।

१४—**दिल की प्यास** (१९३२ ई०, र०)–तदैव ।

———

सीता वनवास

अङ्क पहला — दृश्य छठा

[शयनागार]

(श्री राम सोच में बैठे हैं, भरत और शत्रुघ्न सामने खड़े हुए हैं।)

भरत– परन्तु भ्राता, वह बात किसी देवता ने या किसी ऋषि-मुनि ने नहीं कही, किसी ब्राह्मण या क्षत्रिय ने नहीं कही, किसने कही ? हिन्दू-समाज के अशिक्षित प्राणी ने, एक मूर्ख धोबी ने।

राम– तो क्या वह धोबी मेरी प्रजा नहीं है ?

शत्रुघ्न– है, किन्तु·····

राम– किन्तु क्या ?

शत्रुघ्न– वो शूद्र है और जब समाज शूद्र को मनुष्य नहीं समझता, तब उसके बोलने को भी मनुष्य का बोलना न समझना चाहिए।

राम– क्या ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के समान शूद्र पुरुष और स्त्री से जन्म नहीं लेते ? मनुष्य-समाज में पल कर बड़े नहीं होते ? मनुष्यों-जैसा रूप, गुण, स्वभाव, हृदय, बुद्धि, ज्ञान, विवेक नहीं रखते ? अमीरी, गरीबी, मान, अपमान, अमृत, विष, श्राप और आशीर्वाद का भेद नहीं समझते ? फिर शक्ति और शिक्षा के अभाव के सिवा उनमें और दूसरे मनुष्यों में क्या भेद है ? हे शत्रुघ्न, जिसकी जड़ खोखली हो, वह वृक्ष, जिसके स्तम्भ बोदे हों, वह छत, जिसकी नींव हिल रही हो, वह घर, जिसके निचले भाग में आग लगी हो, वह जहाज और जिसमें थोड़े-से आदमी उच्च जाति में जन्म लेने के कारण अपनी मातृ-भूमि के करोड़ों बच्चों को बलहीन, शिक्षाहीन अधिकारहीन दास बना कर सदा अपने पैरों के नीचे रखना चाहते हों, वह देश, कभी दीर्घ समय तक सर ऊंचा किये हुए अपनी जगह पर स्थिर नहीं रह सकता ! इसलिए शूद्रों को भी मनुष्य-समाज का महाप्रयोजनीय अङ्ग जानो, उनके साथ न्याय करो और उनकी पुकार को भी मनुष्य की पुकार समझो।

भरत– पूज्य भ्राता, मैं फिर विनय करता हूँ कि निर्दोष सीता का त्याग न कीजिए । अयोध्या की शोभा राम और राम की जीवन-शोभा सीता हैं। सीता के विदा होते ही राम-नगरी और राम-जीवन दोनों शून्य हो जायेंगे ।

राम– बस भरत, बस ! राम का वर्तमान और भविष्य गाढ़े अन्धकार में ढँक जाये, राम की हँसी सदा की हाय-हाय मे लीन हो जाये, राम का सुख-सन्तोष राम के आँसुओं में बह जाये, मगर राम से प्रजा-इच्छा का निरादर कभी नहीं होगा—

दोनों ही जा रहे हैं जगत के बहाव पर ।
बैठे हैं राजा और प्रजा एक नाव पर ।।
चलता नहीं है राज, प्रजा - सहमति बिना,
बढ़ती नहीं वह नाव, चले जो चढ़ाव पर ।।

(लक्ष्मण का प्रवेश)

लक्ष्मण– दास उपस्थित है, आज्ञा हो, स्वामी ने क्यों याद किया है ?

राम– लक्ष्मण, मेरे दुःख-सुख के साथी·····(दुःख से गला बन्द हो जाता है)

लक्ष्मण– प्रभो, आपकी आवाज़ क्यों काँप रही है, यह क्या ? कमल के फूल में ढल-ढल करती हुई ओस की तरह आपकी आँखों में आँसू क्यों झलक रहे हैं ?

राम– लक्ष्मण, आधी रात के सन्नाटे की तरह स्तब्ध और तूफ़ान में अटल चट्टान की तरह निष्कम्प हो जाओ । उस दिन इन्द्रजीत ने शक्ति-वाण मारा था, आज राम स्वयं अपने भाई के हृदय में वाण मारेगा । देखो, चौंकना नहीं, काँपना नहीं, मूछित होकर गिरना नहीं····मुझे सीता का त्याग करना होगा·····

लक्ष्मण– त्याग ! किसका ? भगवती सीता का ? प्रभो, मैं समझा नहीं, शब्द वाणों की भाँति कान छेदते हुए निकल गये । फिर कहिए, किसका त्याग ?

राम– किस तरह कहूँ ? त्याग शब्द के साथ प्राण भी खिच कर होठों तक आ जाता है। यदि मेरी प्रजा कहती है कि हे राम, मांस से जीता नाख़ून अलग कर दो, अपनी आँखों में आग के अन्दर तपाये हुये सुए भोंक लो, अपनी छाती चीर कर अपना हृदय निकाल दो, तो धरती पर पड़ा हुआ तिनका उठा कर तोड़ देना जितना सहज है, मैं इस बात को भी उतना ही सहज समझता, लेकिन सीता का त्याग सहज नहीं, मेरे जीवन का महाकठिन कर्तव्य है । फिर भी प्राण जाये या रहे, त्यागना ही होगा ।

लक्ष्मण– किन्तु किस दोष पर ? किस अपराध पर ?

राम– प्रजा कहती है कि सीता रावण के घर में रह कर आयी है, इसलिए·····

लक्ष्मण– बस देव, बस ! और नहीं सुन सकता । उसके आगे प्रजा ने जो शब्द कहे, उसे सुनके क्या धरती की छाती फट कर उससे हाय नहीं निकली, आकाश हाथ के छाले की तरह फूट कर बह नहीं गया, सृष्टि चिता की तरह दहक-दहक जलने नहीं लगी !

यूँ ही ये मौन रहे, कान जब भ्रष्ट हुए ।
न उनको नाश किया और न खुद ही नष्ट हुए ।।

राम– प्रियवर, राजा अपने हर काम के लिए ईश्वर और प्रजा के सामने उत्तर-दायी है, उसे न्याय-सिंहासन पर बैठने के बाद बन्धु-बान्धव, पुत्र, पत्नी, सुख, स्वार्थ, मोह, माया सबसे मुँह फेर कर केवल अपने कर्तव्य की तरफ देखना होता है।

अपाहिज और बेबस यूँ ही गयी हैं मेरी तस्वीरें ।
कि जैसे दो तरफ से शेर को जकड़े हों जंजीरें ।।
सुझाई कुछ नहीं देता, बनाये कुछ नहीं बनता ।
इधर प्रेम और उधर कर्तव्य, इधर सीता उधर जनता ।।

लक्ष्मण– प्रभो, यदि कोई पिशाच आर्यों के वेद, धर्म, विद्या, सभ्यता के रक्षकों को, भेड़-बकरियों की तरह हँका कर, आर्य-भूमि से निकाल देना चाहे, यदि एक राक्षस लङ्का-दहन का बदला लेने के लिए समस्त आर्यावर्त में आग लगा कर उस आग से निकलती हुई आँच और धुयें पर एक राक्षसी साम्राज्य स्थापित करना चाहे, तो क्या ऐसी धिक्कार-योग्य इच्छा आपकी सहायता का पात्र बन सकती है ?

इच्छा वही है, जिसमें कपट हो न भूल हो ।
सम्भव हो, न्याययुक्त हो, धर्मानुकूल हो ।।
मत सुनिए उनकी बात, यह झूठा विलाप है ।
जो धर्म के विरुद्ध हो, वह इच्छा ही पाप है ।।

राम– प्रिय लक्ष्मण, यह कर्तव्य-परीक्षा का समय है, इसलिए खुद भी दृढ़ रहो और मुझे भी साहस देकर दृढ़ बनाओ । जाओ, सीता को गंगा पार किसी निर्जन स्थान में सदा के लिए छोड़ आओ ।

लक्ष्मण– क्षमा कीजिए, मैं फिर पूछूँगा– इस कठोरता का कारण ?

राम— शंका ! शंका ! प्रजा सीता के सतीत्व पर विश्वास नहीं रखती ।

लक्ष्मण— प्रभो, यदि जगत-जननी जानकी असती हैं, तब यह समझना चाहिए कि सृष्टि की रचना ब्रह्मा ने नहीं, किसी राक्षस ने की है । अब से कसौटी पर परखे हुए सोने को भी पीतल कहना चाहिए। आज से गुण को अवगुण, सत्य को असत्य, धर्म को अधर्म, पुण्य को पाप के नाम से पुकारना चाहिए ।

सूर्य फ़िर सूर्य नहीं, श्याम वर्ण तारा है ।
मेघ, आकाश में उड़ता हुआ अंगारा है ।।
बर्फ शीतल नहीं, निष्कम्प अनल की धारा है ।
स्वर्ग का फूल भी दुर्गन्ध का फौवारा है ।।
जड़ में, चैतन्य में, नर-देह में, वनिता में नहीं ।
फिर किसी में भी नहीं, सत्य जो सीता में नहीं ।।

राम— लक्ष्मण, मैं जानता हूँ कि निर्दोष सीता को नहीं, अयोध्या की कल्याणमयी लक्ष्मी को, माता कौशल्या के बूढ़े नेत्रों की ज्योति को, तुम भाइयों के सर की छाया को वनवास दे रहा हूँ । मगर क्या करूँ, प्रजा के प्रेम-यज्ञ में इनकी आहुति देनी ही होगी । जाओ, मेरी आज्ञा का पालन करो ।

लक्ष्मण— पूज्य भ्राता, लक्ष्मण ने मन वचन, कर्म से आज तक आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया, किन्तु यह भीषण और पैशाचिक कार्य, क्षमा कीजिए, मुझसे·····

राम— न हो सकेगा ?

लक्ष्मण— हाँ, न हो सकेगा ।

राम— तब मैं यह जान लूँ कि आज लक्ष्मण राम का आज्ञाकारी लक्ष्मण नहीं रहा ?

लक्ष्मण— प्रभो, क्या कहूँगा ? कैसे कहूँगा, जब वे डाली से टूट गये हुए फूल की तरह धरती पर गिर कर और टप-टप आँसू बहाती हुई आँखों से मेरी ओर देख कर कम्पित स्वर से पूछेंगी कि हे वत्स, राघव ने मुझे किस दोष पर त्यागा है, तब मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा ? जब वे हाहाकार करती हुई वन की शून्यता, आँखें फाड़ कर घूरते हुए नीले आकाश और हवा के साथ राक्षसों की तरह युद्ध करते हुए वृक्षों के दृश्य से भयभीत होकर और राम नाम की दुहाई देकर कहेंगी कि हे लक्ष्मण, इस निस्सहाय अबला को कहाँ छोड़े जाते हो, तो क्या सांत्वना दूँगा ?

कलेजा टूट जायेगा सती का मेरी वाणी से ।
बचा लीजे जगत को, हे प्रभो, नाश और हानि से ॥
सृष्टि भस्म हो जायेगी, एक आँसू अगर टपका ।
जो रोयी जानकी, तो आग लग जायेगी पानी से ॥

राम– प्रिय लक्ष्मण, राम की छाती में पत्थर का हृदय नहीं है । वह सीता के दुःख का, अपने दुःख का, तुम्हारे दुःख का पूरी तरह अनुभव कर रहा है । फिर भी यह आशा न रखो कि मैं अपनी स्वार्थ-रक्षा के लिये राजा और प्रजा का सम्बन्ध तोड़ दूँगा । मेरी प्रजा चाहेगी, तो उसकी इच्छा पूरी करने के लिए सीता ही को नहीं, प्राणों से अधिक प्यारे भाइयों को भी छोड़ दूँगा ।

ये आँसू पोंछ डालो, होके रहता है जो होना है ।
अभी तो सारा जीवन मुझको, इनको, तुमको रोना है ॥
मेरी आज्ञा सुनो, गर मेरे भक्त और मेरे भाई हो ।
यही प्रारब्ध में था—राम - सीता में जुदाई हो ॥

लक्ष्मण– आह ! कैसी भीषण आज्ञा ! सर चकराता है, हृदय बैठा जाता है । बढ़ने का विचार करता हूँ, तो रोम-रोम थर्राता है ।

मैं जानता हूँ कि जो हो रहा है – न्याय नहीं ।
मगर है स्वामी की इच्छा, तो कुछ उपाय नहीं ॥

(घोर दुःख के साथ प्रस्थान)

राम– क्या किया, ये मैंने क्या किया ? सीता चली जायेगी, राम की हँसती-खेलती हुई दुनिया श्मशान-भूमि बन जायेगी ? नहीं, नहीं सहन कर सकता– सीता का वियोग नहीं सहन कर सकता । ठहरो, लक्ष्मण, ठहरो·····

भरत– हाँ, प्रभो ! बुला लीजिए, वापस बुला लीजिए । आप वैदेही का नहीं, अपने जीवन के हर एक सुख का त्याग कर रहे हैं । शत्रुघ्न, बन्धु को लौटा लाओ ।

(शत्रुघ्न का प्रस्थान)

राम– नहीं भरत, नहीं ! अयोध्या की प्रजा सिंहवाहिनी दुर्गा के समान प्रेम की छाती पर खड़ी होकर और अपनी रक्तरंजिता जिह्वा होठों पर फिरा कर राम के सुख-शान्ति की राम से भेंट माँग रही है । जाओ, जाओ, शत्रुघ्न को रोक दो । इस प्रजा को शत्रुघ्न की सहानुभूति, तुम्हारी सेवा, लक्ष्मण

का प्रेम, राम का आशीर्वाद कुछ नहीं चाहिए, केवल सीता का त्याग चाहिए । (भरत अथाह शोक के साथ सर झुका कर जाते हैं स्वतः) मैं इतना ही जानता था कि प्रजा के अपराध का दंड राजा देता हैं, किन्तु अब जाना कि राजा होना स्वयं एक अपराध है. जिसका दंड प्रजा देती है । ओह, कैसा भीषण दंड ! बस,बस, हृदय शान्त हो । आँसुओं, सूख जाओ । जाओ दशरथ कुल की लक्ष्मी, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न की पूज्य देवी, अभागे राम की जीवन-संगिनी, जाओ..... प्रजा के इच्छा-पालन और पति की कर्तव्य-रक्षा के लिए फिर वन को जाओ ।

करे प्रकाशमय हर घर को, दीपक बन के कर्म उसका ।
सिखा दे स्त्री-जाति को फिर एक बार धर्म उसका ।।

(दृश्य बदलता है । रथ पर लक्ष्मण के साथ सीता जी तपोवन की ओर जाती हुई दिखायी देती हैं ।) सीता ! सीता ! ! सीता ! ! !

आग़ा 'हश्र' के नाम 'नैरंगे ख़याल' के सम्पादक का पत्र

एडीटर
हकीम मुहम्मद यूसुफ 'हसन' दि नैरंगे ख़याल

बारूदखाना बाजार,
लाहौर
तारीख ३-९-१९२९

मकर्रमी जनाब आग़ा 'हश्र' साहब 'काश्मीरी' मद्दज़िल्लहू

तस्लीम ! नैरंगे खयाल के नाम से आपका आश्ना नहीं–बिरादरम तपिश व इम्तियाज़ की विसाहत से एक मंजर 'नैरंगे खयाल के सालनामा (खास नम्बर) में आँख के नशे से नक्ल हो चुका है, अब फिर सालनामा की तैयारी में मसरूफ हूँ। बम्बई के अखबारात से मालूम हुआ कि आपका ताजा ड्रामा रुस्तम सोहराब खेला जा रहा है। उसका बेहतरीन मंज़र नैरंगे खयाल के सालनामे में छापना चाहता हूँ, लेकिन जब मेरे पास तपिश मौजूद नहीं, वो दूर स्यालकोट के करीब एक कस्बे में प्रोफेसरी कर रहे हैं और सैय्यद इम्तियाज अली साहब 'ताज' काश्मीर की सैर में मसरूफ हैं, इसलिए खुद ही ये खत लिखने बैठा हूँ। शायद आप देरीना निवाज़िशात के सिलसिले में किसी मुंशी को कह दें कि वो एक मंजर नक्ल करके मेरे पास भेज दे।

'ताजियाना' एक हफ्तावार अखबार है, जो मेरी इदारत में शाया होता है। उसमें इस हफ्ते आपकी तस्वीर छाप रहा हूँ। ये मेरा फर्ज है कि अपने वतन के बेहतरीन ड्रामानवीस की तस्वीर शाया करने का फ़ख्र हासिल करूँ।

आपसे इस अलीज़ा के ज़रिये से रुस्तम और सोहराब का एक मंजर माँगता हूँ। क्या मेरी दरख्वास्त सर्फ-ए-कबूलियत हासिल करेगी? और क्या हिन्दुस्तान भर के तमाम अदीब नैरंगे खयाल के खास नम्बर के ज़रिये से आपके क़लम का ताज़ा करिश्मा या उसका एक शिम्मा भी पढ़ने से मुस्तफ़ीक होने का फ़ख्र हासिल करेंगे?

निकज़िशात का मुन्तज़िर
ह०/–हकीम मोहम्मद यूसुफ 'हसन'
एडीटर, नैरंगे खयाल व ताज़ियाना
बारूदखाना, लाहौर

इश्क व फर्ज़

[यह नाटक आग़ा 'हश्र' के अन्य नाटकों से भिन्न है। यद्यपि मूलत: यह **रुस्तम सोहराब**[1] नाटक का एक अंश है, पर इसकी भाषा नाटक के दूसरे अंशों से भिन्न, अधिक साहित्यिक है, कल्पनाओं और उपमाओं में भी नवीनता है। बात कुछ ऐसी है कि सन् १९२९ में बम्बई में जब **रुस्तम सोहराब** खेला जा रहा था, तत्कालीन प्रसिद्ध मासिक पत्रिका **नैरंगे ख़याल** के सम्पादक हकीम मुहम्मद यूसुफ 'हसन' का एक ख़त आया कि **नैरंगे ख़याल** के वार्षिक अंक के लिए इस नाटक का एक अंश भेज दें। उन दिनों लाहौर अदब और संस्कृति का केन्द्र था और **नैरंगे ख़याल** में कोई हलकी चीज़ नहीं छपती थी, अत: आग़ा साहब ने **रुस्तम सोहराब** के पाँच सीन मुन्तख़ब करके एक अंक का एक अलग ही नाटक तैयार कर दिया और इसे नाम दिया **इश्क व फर्ज़**। इस रूप में यह **नैरंगे ख़याल** में छपा। **रुस्तम सोहराब** और एकांकी **इश्क व फर्ज़** का अध्ययन करें, तो साफ समझ में आ जायगा कि **इश्क व फर्ज** एक साहित्यिक कृति है। हिन्दी में इस एकांकी के दो सीन (दृश्य) पहली बार यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।—सम्पादक]

चौथा सीन

क़िले सफेद का अन्दरूनी हिस्सा

(जिला व क़िताल के हंगामों, ज़ख़्मियों की चीखों, हथियारों की झंकारों, नारा हाय जंग का गुल सुनाई दे रहा है। बहराम इन्तेक़ामाना जज्बात, शरीराना मुसर्रत के साथ दाखिल होता है।)

बहराम— गुनाह और सज़ा, दोनों ऐतेक़ाद के फ़रेब हैं। नेकी व बदी की तख़य्युल बुलन्द आवाज़ अक़्ल की तरक्क़ीये माकूस है। आज से पेश्तर अपनी शमसीर से व तदबीर से मुल्क के दुश्मनों की इमदाद करना एक शर्मनाक गुमराही, एक हौलनाक गुनाह, एक परवरदये लअनत जुर्म

---

[1]–रुस्तम-सोहराब–मुरत्तिबा इशरत रहमानी (लाहौर), ताज एकेडमी, मटिया महल, दिल्ली, १९६६।

समझता था। मगर अब ? अब नहीं। मौत, आग, बरबादी ने शहर के हर हिस्से को घेर लिया है। एक दरिन्दा दहन, महरूम क़रास्त छोकरी को 'अक्ल कुल' और उसकी अहमक़ाना राय की दुनिया की दानिशमन्दी का खुलासा समझने वालों की यही सज़ा है। मेरी तरदीद व तौहीन का यही इनाम है। ईरान की तारीख़ में मेरा नाम क़ातिलाने क़ौम में लिखा जायगा, दुनिया मुझे 'दुश्मने वतन' कहेगी, कहने दो, आक़बत खराब होगी, होने दो, मुझे क़ौम, वतन, आक़बत कुछ नहीं चाहिए। बहराम, चल, दस्त-बदस्त जंग में दोबारा सोहराब की रहनुमाई कर, सोहराब की फ़तह तेरे इन्तक़ाम की फ़तह है।

(बहराम की रवानगी, खौनचुकां तलवार लिए गुर्द आफ़रीद का दाखिला)

गुर्द आफ़रीद– मौत एक तगय्युरे हैय्यित है, एक तब्दीले लिबास, एक नक़ले मकानी, एक जदीदे आगाजे अमल के सिवा कुछ नहीं है। सफ़रे हयात में मुसाफिर का पैकर खाकी व मक़सदे सफ़र बदल जाता है, लेकिन मंज़िल नहीं बदलती। मौजूदा जिन्दगी की इन्तहा नई जिन्दगी की इब्तदा है यानी हम मौत के दरवाजे से मालूम दुनिया से नामालूम दुनिया में दाखिल हो रहे हैं। यही ज़िन्दगी का राज़ है और यह राज़ सिर्फ शहीदाने हक़ व हुर्रियत को मालूम है। शाबाश! ईरान के फ़िदाइयों ! शमये मिल्लत के परवानों, शाबाश ! ! तुम्हारी ज़िन्दगी भी मुबारक और मौत भी मुबारक ! तुम्हारे खून का हर कतरा सुबहे इज्ज़त का नव तुलूए-आफ़ताब और हमारी जंगे आज़ादी का हर लमहा सआदते जावेदा का सरमायादार है। सरफ़रोशाना मौत के बाद भी तुम मुस्तकबिल के गैर-फ़ानी हाफिजा और बक़ायेदवाम की लाज़वाल दुनिया में जिन्दा रहोगे। तुम्हारी हैरत आफ़रीन क़ुरबानियों ने मग़रूर सोहराब ··· (सोहराब का नाम ज़बान पर आते ही दिल में मुहब्बत का ख्वाबीदा जज्बा बेदार हो जाता है, मुहब्बत-भरी आवाज़ में आहिस्ता-आहिस्ता कहती है) आह ! कितना शुजा। कैसा शरीफ़ ! ! उसके तजल्लीदार चेहरे को देखने से यह एहसास होता है कि इसी चेहरे के नूर से आफ़ताब महताब की आफ़रीनिश हुई है। सोहराब ! मेरी रूह को मुहब्बत की रोशनी से मुनव्वर

करने वाले सोहराब ! तुम तूरान में क्यों पैदा हुए ? अगर तुम मादरे ईरान के फ़रजन्द होते, तो मैं कनीज़ बन कर तुम्हारी खिदमत को कामरानीये निशात और तुम्हारी परस्तिश को वसीलए-निजात समझती और ......(ख्याल बदलता है। जोर से गरजदार आवाज़ में कहती है) बेवकूफ़ औरत ! क्या इश्क को, बिजलियों की चमक को जज्बये जंग की तड़प बनाकर मुल्क व क़ौम के ऐतबार को धोखा दे रही है ? क्या तू दिल से नहीं, सिर्फ़ ज़बान व तलवार से सोहराब की मुज़ाहिमत कर रही है। होशियार हो ! तेरा गुनहगार ख्याल तुझे जर्म को मुहीब दुनिया मे खींचे लिये जा रहा है। इस दुनिया में, जहाँ लमनत है, रहमत नहीं, सज़ा है, किनारा नहीं। नफरत कर, सोहराब से नफरत कर, दिल से भी, और रूह से भी ....(फिर शोला-ए-मुहब्बत भड़कता है। मजबूर आवाज़ से) लेकिन मैं नफरत नहीं कर सकती, तो बाइसे तअज्जुब क्यों है ? दुनिया में कौन औरत है, जो ऐसे शुजाअत पैकर, वफा-किरदार, शरीफ, रहीम, जमील को अपना दिल और अपना मकद्दर सुपुर्द न कर देगी ? उसे देखने के बाद उसे हुस्न व जाज़बियत से मामूर दुनिया के किसी शय की तरफ देखने की तमन्ना बाकी नहीं रहती ......(दोबारा ख्याल की रौ बदलती है) दूर हो, ऐ औरत की फितरी कमजोरी, दूर हो ! मुहब्बत की बाग़ियाना शोरिश, फ़र्ज़ का आवाज़ और ज़मीर की पुकार को मग़लूब नहीं कर सकती। वतन का दुश्मन, अरज़े वतन की तरह खूबसूरत कुर-ए-आज़ादी की तरह पुरजलाल, मुहब्बते-क़ौमी की तरह क़ाबिले परिस्तिश हो, तब भी वह दुनिया की बदतरीन हस्ती है।

मुहब्बत, पीछे हट, फर्ज़ आगे बढ़ !

(ख़ौफ व इजतराब की हालत में गुस्तहम का दाखिला)

गुस्तहम – ओह ! वहम भी न था कि वह इन्सान, जिसको चमने-कायनात का गल सरे सबुद, कुदरत का नक्शे आखिर, आफ़रीनिश का खुलासा, किताब तख़लीक का तकमिला कहा जाता है, वह भेड़िये से ज्यादा खूँखार और कुत्ते से ज्यादा रज़ील साबित होगा।

गुर्द आफ़रीद– गुस्तहम ! तुम्हारा हर लफ्ज़ खतरे का एलान कर रहा है। क्या हुआ ?

गुस्तहम – दग़ा ! शर्मनाक दगा ! !

गुर्द आफ़रीद– दग़ा दी ! किसने ? ग़ैरत ने ? हिम्मत ने ? किस्मत ने ?

गुस्तहम – ईरानी माँ के दूध से पले हुए साँप ने, कौमकुश, खायने मिल्लत बहराम ने ।

गुर्द आफ़रीद– मलऊन, दोज़खी !

गुस्तहम – रूह फ़रोख्त कर दी । उसकी जफ़ाकुशी व बेहम्मीयती देख कर मुझे ताज्जुब हो रहा है ।

गुर्द आफ़रीद– ताज्जुब क्यों करते हो ? हमेशा मुल्क के नमकहरामों ही ने ग़ैरों की ग़ुलामी के तौक़ से अपने मुल्क की गर्दन की ज़ीनत-अफ़ज़ाई की है । गद्दारी की तारीख़ पढ़ो । बहराम की वतन-दुश्मनी दुनिया का पहला मजीब वाक़िया नहीं है ।

गुस्तहम – उसकी इमदाद व रहनुमाई से सोहराब की फ़ौज ने क़िले के महफ़ूज़ मुकामात और सामाने जंग के ज़खीरों पर कब्जा कर लिया है । अनक़रीब किस्मत जंग की कमान से अपने तरकश का आखिरी तीर चलाना चाहती है । अब हमारे लिये कोई उम्मीद बाकी नहीं रही ।

गुर्द आफ़रीद– (तड़प कर) क्यों बाकी नहीं रही ? जब तक गद्दारी से नफ़रत बाकी है, गै़रत बाकी है, जिस्म में एक भी सांस और क़िले में एक भी जाँबाज बाकी है, उम्मीद भी बाकी रहेगी । हम फ़ानी दुनिया में लाज़वाल जिन्दगी लेकर नहीं आये हैं । जब हुद्दते हयात महदूद, फ़ना लाज़मी अजल यक़ीन है, तो इज्ज़त व शराफ़त के साथ मरो । नाउम्मीदी, सामने से दूर हो ! आओ, बस फ़तह या मौत ! (तस्वीरे गज़ब बनी हुई गुस्तहम के साथ जाती है ।

(बहराम और सिपाहियों के हमराह सोहराब का दाखिला)

सोहराब – गुर्द आफ़रीद मेरी रूह की तमन्ना और मेरे ख्वाबे तमन्ना की ताबीर है । उसे ज़िन्दा गिरफ्तार कर लो । खबरदार, उसके सर के एक बाल और पाँवों के एक नाखून को भी सदमा न पहुँचे ।

बहराम – लेकिन गुर्द आफ़रीद ही ने ईरानियों की मुर्दा-हिम्मतों में दोबारा हरकते हयात और कुव्वते-अमल पैदा की थी ।

सोहराब – इसलिए ?

बहराम – वह रहम की मुस्तहक़ नहीं है ।

सोहराब – इश्क़ की इतनी मज़ाल नहीं है कि हुस्न को उसके जुर्म की सज़ा दे सके । जाओ ! (बहराम और सिपाहियों की रवानगी) नाज़ सरापा ग़रूर और नियाज़ हमा तन शुक्र होता है । मैं उस बेदीद व बेमहर

से सिर्फ यह पूछना चाहता हूँ कि खूबसूरती और बेवफ़ाई का आपस में कौन-सा रिश्ता है ? चेहरा हसीन, दिल बहादुर, आँखें बेमुरव्वत, मैंने दुनिया में ऐसी अजीब खूबसूरती और ऐसी अजीब औरत नहीं देखी। (गुर्द आफ़रीद की तलाश में जाता है)

पांचवां सीन

अन्दरूनी क़िले का दूसरा हिस्सा

(दूर पर कश्त व खून का हंगामा, विगेर व हिजन का शोर. आग और धुएँ से महसूर घरों का नज्जारा. गुर्द आफरीद थकान से निढाल, जख्मों से चूर, लहू में सराबोर, लड़खड़ाती हुई दाखिल होती है।)

गुर्द आफ़रीद-- आजादी का आफ़ताब तलवारों की फिज़ा में खून से रंगीन उफ़क पर आखिरी बार चमक कर ग्रूब हो गया। दग़ा व खयानत ने क़िले सफ़ेद की किस्मत को गद्दार बहराम का तैय्यारकदी सिपाह कफ़न पहना दिया। यतीमों की फरियाद, बेवाओं के रोवन खाक़ और खून में पड़ी हुई लाशों के सिवा कुछ बाकी नहीं रहा। (तलवार को चूम कर) तलवार ! प्यारी तलवार !! मैं गारतशुदा हयात कबी का बक्ययह, आतिश अफ़सुरदह का धुआँ, कारवाने-रफ्ता का पसमान्दह अय्यार, हगामे तबाही की आखिरी गूँज हूँ। इस जिस्म से रूह की अलहदगी का वक्त भी करीब आ पहुँचा है। जब तक मौत इन दोनों दिलों को जुदा न कर दे, मेरी जवानी का सिंगार ! मेरे हाथों का ज़ेवर, !! मेरी ज़िन्दगी की वफ़ादार सहेली !!! तू मुझसे जुदा न होना। एक बार सोहराब के खून में (जज्ब-ए-मुहब्बत से मग़लूब होकर; ताअस्सुफ़ के लहजे में) आह ! कैसा खूबसूरत नाम, कितना शीरीत नाम ! इस नाम को सुनते ही यह मालूम होता है कि दिल की दुनियां में मुहब्बत के जमजमों की बारिश हो रही है। (ख्याल में तब्दीली, लहजा बदल जाता है) मुहब्बत ? किसकी मुहब्बत ? सोहराब (लफ्ज पर ज़ोर देकर) की मुहब्बत ! खबरदार ! दिल, खबरदार !! (तासुफ़ के साथ) आह ! क्या था और क्या हो गया ! इन्सान की उम्मीद और इन्सानी जिन्दगी कितनी बेहकीकत चीजें हैं !

(तूरानी सिपाहियों के साथ बहराम का दाखिला)

बहराम -- तलाश कामयाब हुई, गिरफ्तार कर लो। गुर्द आफ़रीद ! मेरे मशवरे

पर हँसने और मेरी इहानत पर इजहार पसन्दीदगी करने वालों की किस्मत का इन्क़लाब देखा ?

गिर रहे हैं आँख से आँसू तने सदपाश पर।
रो रही है क्यों खड़ी होकर वतन की लाश पर ॥

गुर्द आफ़रीद– क्या तेरी रूह अहिरमन की तारीकी से पैदा हुई है ? क्या तेरी परवरिश ईरानी माँ के दूध के एवज दरिन्दे के खून से की गई है ? मूँजी ! जल्लाद ! अगर तेरे ईमान की तरह तेरी बिसाअत व समाअत भी ग़ारत नहीं हो चुकी, तू दुश्मनों की ठोकरों की ज़र्ब से जख़्मी मुल्क की दर्दनाक हालत देख और डूब मर। बन्दगी व बेचारगी की जंजीरों में जकड़ी हुई मादरे वतन की शरबार फरियाद सुन और शर्म कर। इस खानमाँ वीरानी का बाअस, इस नाक़ाबिले अफ़ू व नाक़ाबिले कुफ्फारह् जु़र्म अज़ीम का मुर्ज़रिम कौन है ? तू ! यह जिगर शिगाफ व मातमी आवाज़ से किसे अज़ली व अब्दी मलऊन कह रहे हैं ? तुझे ! सोख्ता किस्मत क़िले सफेद की ख़ाकसतरे-बरबाद पर आँसू बहाने के एवज दोज़ख के मुअक्कल की तरह बेरहमी से हँस रहा है ?

बहराम – अदावत के बाज़ार का सौदा इतने ही गिराँ दामों पर बिकना है। तूने मुझसे मेरी नफ़रत मोल ली थी, यह वरगशते बख्ती उसी खरीदकरदा नफ़रत की क़ीमत है। यह ज़बून हाली मेरी जिन्से इन्तक़ाम का मुआवज़ा है।

गुर्द आफ़रीद– अगर तेरा दिल मुझसे इन्तक़ाम लेने के लिए बेक़रार था तो शरीफ़ दुश्मन की तरह तलवार से मेरा मुक़ाबिला करता। मुक़ाबिलों की जुरअत न थी, तो खाने में ज़हर मिला देता। यह भी नामुमकिन था, तो सोते में छुरी भोंक देता, लेकिन ग़रीब मुल्क ने तेरा क्या कसूर किया था ? तू सोहराब की नवाजिश के साये में तबाहशुदा बतन की ख़ाक और कौम के ज़ख्मी दिल के खून से अपनी दुनियावी जन्नत बनाना चाहता था। लेकिन इस जन्नत का हर फूल तेरे मुज़रिम ज़मीर को साँप बनकर डँसता रहेगा। याद रख, जु़र्म की ज़िन्दगी, इत्मीनाने-कल्ब की मौत और गुनाह की बहार रूह की खिज़ाँ है।

राहते इसयान से बढ़कर रंज आलम में नहीं।
वह जलन इस ऐश में है, जो जहन्नुम में नहीं ॥

बहराम – (हमराहियों से) क्या देखते हो ? गिरफ्तार कर लो या क़त्ल कर

दो । (सिपाही चारों तरफ से यूरिश करते हैं । गुर्द आफ़रीद सिपाहियों की बरछियों के हलक़े में महसूर शेरनी की तरह हर एक हमले का जवाब देती है) मेरे गुरस्सते इन्तकाम का आख़िरी निवाला !
(पीछे से गुर्द आफ़रीद की पीठ में खंजर भोंक देता है)

गुर्द आफ़रीद– आह, दग़ाबाज़ ! मारे आस्तीन !! (गिरते-गिरते पलट कर दोनों हाथ से बहराम का गला पकड़ लेती है) इतने गुनाह कर चुका था, यह आख़िरी गुनाह न करता, तो क्या दोज़ख के दरवाजे तेरे लिए बन्द हो जाते ? तेरा ईमान मर चुका, इन्सानियत मर चुकी, तू भी मर । (गुस्से में जान लेने के इरादे से गला दबाती है, फिर रुक जाती है) मगर नहीं, तू बदफ़ितरत है, नमकहराम है, संगदिल है, क़ातिल है, दुनिया की बदतरीन मख़लूक है । सब कुछ है, फिर भी मेरा हमवतन है । (गला छोड़ देती है) जा, कौमपरस्तों के मज़हब में बदी का बदला बदी नहीं है । मैं अपने वतन की इज्ज़त की खातिर अपना ख़ून माफ़ करती हूँ ।
(ज़मीन पर गिर पड़ती है । उसी वक्त सोहराब का दाखिला)

सोहराब – या खु़दा ! मैं क्या नज्ज़ारा देख रहा हूँ । क़फ़से खा़की की रंगीन नवा फ़ाख़ता, पैकरे शुजाअत की हसीन रूह शुआत-ए-हुस्न की तजल्ली ख़ून में डूबी हुई है !! अफ़साना-ए-इज्ज़त का उनवान, सहीफ़-ए-हुर्रियत का सरनामा, हरकते निस्वानी की तारीख का वरकेज़रीन खाक पर पड़ा हुआ है !!

(गुर्द आफ़रीद का सर जानों पर रखकर।
आफ़रीद ! प्यारी आफ़रीद !! आँखें खोलो, मैं तुम्हें बेवफ़ाई का इल्ज़ाम देने के लिये नहीं, अपनी वफ़ादारी का यक़ीन दिलाने आया हूँ । तुम्हारा तबस्सुमे नाज़ मेरी परस्तिश का सिला है । क्या नाकाम-ए-मुहब्बत को अपने लबे नाज़ुक से तसकीन न दोगी ? क्या अपनी मुस्कराहट से मेरे दिल की तारीकियों में उम्मीद की सुबह पैदा न करोगी ?

करो कुछ रहम मेरी इल्तिजा पर,मेरी आहों पर ।
उठो, बोलो, हँसो, देखो, मैं सदक़े इन निगाहों पर ।।

गुर्द आफ़रीद– (आँखें बन्द किये नीम बेहोशी हालत में) किसकी आवाज ? सितारों का गाया हुआ नगम-ए-आसमानी ज़मीन पर कौन गा रहा है ?

सोहराब– तुम्हारा शैदायी, तुम्हारा पुरस्तार सोहराब !

गुर्द आफ़रीद– (आँखें खोल कर) तुम····तुम····ओह ! मरना भी मुश्किल हो गया– (जोशे मुहब्बत से उठने की कोशिश करती और गिर पड़ती है) आओ ! प्यारे सोहराब, आओ ! (आहिस्ता आवाज़ में रुक-रुक कर) तुम्हें देख कर ज़िन्दा रहने को तमन्ना पैदा हो गयी, लेकिन अब तमन्ना का वक्त नहीं रहा । अदम के मुसाफिर का सामान बँध चुका है । ज़िन्दगी के नज्जारे उसे हमेशा के लिए रुखसत कर रहे हैं । मेरे दिल के मालिक मेरे फर्ज़ ने मुझे बेमुरव्वत बनने के लिए मजबूर कर दिया था । हक़्के-वतन का मरतबा इश्क़ से बुलन्दतर है, इसलिए मुझे माफ़ करो और जो हुआ, उसे भूल जाओ । मौत के दरवाज़े पर दुनिया की दोस्ती व दुश्मनी खत्म हो जाती है ।

सोहराब – प्यारी आफ़रीद ! तुमने दुनियाए-फर्ज़ की एक जदीद हकीक़त और औरत के दिल की अज़मत का एक अज़ीमुश्शान राज़ जाहिर करके वह बोझ दूर कर दिया, जिससे मेरी रूह पाश-पाश हुई जा रही थी । मेरा ख्याल था कि तुम मुझे अपनी मुहब्बत का मुसतहिक नहीं समझतीं, इसलिए इस क़दर जोशे मुखालिफत के साथ जंग कर रही हो ।

गुर्द आफ़रीद– आह, तुम्हें क्या मालूम, इश्क़ व फर्ज़ की कशमकश में मेरी रूह ने कितने अज़ाब बर्दाश्त किये हैं (कमजोरी बढ़ती जाती हैं , कितने तूफ़ानों, कितने ज़लज़लों से तन्हा बक्फ़ पेकार रही है । सदमा न करो, दोस्त और दुश्मन हमनाम हैं, इसलिए तुम्हें धोखा हुआ । मैंने अपने प्यारे सोहराब से नहीं, अपने मुल्क के मुखालिफ़ सोहराब से जंग की है····(बेहोश हो जाना)

सोहराब – आह, इन लफ्ज़ो में कितना तरन्नुम और कितनी उम्मीदनवाज़ी है ! क़िस्मत की सितम-ज़रीफी देखो । तसकीन के प्यासे को राहत का आबेहयात भी पिला रही है और जुदाई का ज़हर भी ।
(यकायक जोशे ग़ज़ब में उठ कर खड़ा होता है, सिपाहियों से)
क्या मेरी ज़बान के वाज़ह अल्फ़ाज़ मानी व मफ़हूम से तहीदस्त थे ? मेरे हुक्म से बेपरवाह होकर दुनिया की यह सबसे ज्यादा क़ीमती ज़िन्दगी किसने बरबाद की ?

बहराम – (फ़ख्रिया लहजे में) मैंने····

सोहराब – तूने ? एक ईरानी ने ? गुर्द आफ़रीद के हमक़ौम व हमवतन ने ? किसलिए ?

बहराम – इसलिए कि यह मेरा खैरख्वाहाना फर्ज था, इसलिए कि वह तूरानियों की दुश्मन थी और मैं तूरान का दोस्त हूँ ।

सोहराब – तू कितना बेहया, कितना बदअसल, कितना क़ाबिले-नफ़रत है—मुरक्क़े शुजाअत की जिस तस्वीरे-फ़िदायत ने मुल्क और क़ौम की आबरू पर अपनी मुहब्बत, अपनी राहत, उम्मीदे-जिन्दगी की हर बेश-बहा शय कुरबान कर दी, उसके सीने में, उस सीने में जो इश्क़े-वतन से मामूर था, खंजर भोंकते वक़्त तेरे दिल ने तुझे लानत न की, तेरा हाथ कब्ज़े तक पहुँचने से पहले मफ़लूज न हो गया ? संगे-दुनिया, तेरे जिस्म के हर जर्रे ने जिस ईरान के नमक से परवरिश पाई है, जब तूने इस मुहसने-ईरान से वफ़ादारी न की, तो तू तूरान का कब दोस्त हो सकता है ? जिस मुँह से अपने को ईरानियों का दोस्त कहता है, मैं उस ज़लील मुँह पर थूकता हूँ । तेरे रहने की जगह दुनिया नहीं, दोजख है ।

(बहराम को खंजर भोंक देता है)

बहराम – आह, दुनिया के लिए आक़बत ख़राब की, लेकिन गुनाह ने फ़रेब देकर आकबत भी खराब की और दुनिया भी । (मर जाता है)

सोहराब – (गुर्द आफ़रीद को आलमे नज़अ में देख कर) आह ! दुनिया के पलकों पर जिन्दगी आमादये-तराविश आँसू के क़तरे की तरह थरथरा रही है । शुअल-ए-हयात आँधी मे रखे हुए चिराग़ की लौ की तरह काँप रहा है । मौत ! मौत ! ! तू इश्क़ पर तमन्ना, हुस्ने-रूह अफ़रोज़, शबाबे मासूम पर क्या जुल्म कर रही है ? तू बेमहर व संगदिल है । लेकिन बागे-हस्ती का इतना हसीन फूल तोड़ कर आख़िरकार तू भी अपनी बेदरदी पर नादिम होगी । रहम कर ! रहम कर ! !

गुर्द आफ़रीद– (कमज़ोर आवाज़ से रुक-रुक कर) फरिश्ते रोशनी की चादर में लिपटे, फूल और नगमे बिखेरते हुए आहिस्ता ज़मीन पर उतर रहे हैं । दुनिया आलमे-नूर से बदल रही है । मरकज़े-असली की तरफ मायले परवाज रूह का दरवाज़ा खुल गया है ? किसने पुकारा ? ज़िन्दगी के दरवाज़े पर कौन दस्तक दे रहा है ? मौत, तू है ? मैं नहीं समझती थी कि तू इतनी खूबसूरत होगी । अलविदा ! प्यारे वतन, अलविदा ! प्यारे सोहराब अलविदा !

नहीं मालूम राज़े-मर्ग दुनिया के तबीबों को ।
अगर फ़ुर्सत मिले तो याद करना बदनसीबों को ।।

(आख़िरी हिचकी लेकर दुनिया से रुखसत हो जाती है)

सोहराब — (घबरा कर) ठहर, ऐ हसीन मुसाफिर, ठहर ! तू कारगाहे तमन्ना को खराबये यास ऐवाने निशात को मातम-सरा, जलवह ज़ारे-हस्ती को मसकने-ज़ुल्मत बनाकर कहाँ जा रही है ? वापस आ, ऐ नामालूम ज़िन्दगी की रहरो, वापस आ, तेरे जाने के बाद दुनिया में सिर्फ़ फ़रियाद और आँसुओं की आबादी रह जायगी, आफ़ताब व महताब आसमान के दिल के दाग़, तारे रात के जिगर के आबले और रंगीन फूल ज़मीन के जिस्म के ख़ून मालूम होंगे । (दीवानावार पुकारता है) आफ़रीद ! आफ़रीद ! ! आफ़रीद ! ! !
ऐ जमाले नातिक़ ! एक हुस्ने गोया ! तू क्यों खामोश हो गया, तू क्यों बेकसी की पुकार का जवाब नहीं देता ? क्या मेरे लिए अब तेरे पास मुहब्बत की एक मुस्कराहट, तसकीन का एक हरफ़ भी नहीं है ? हाय ! कौन जवाब दे ? फूल है, खुशबू नहीं, मकान है, मकीन नहीं, सल्तनत है, मल्का नहीं !

(गुर्द आफ़रीद की लाश से मुखातिब होकर)

अतियाए—कुदरत ने कायनात से अपना अतियाए-अज़मत वापस ले लिया !दुनिया का हुस्न बहिश्त के इज़ाफ़ये-जमाल के लिए बुला लिया गया । ज़मीन के चेहरए-फ़ख़्र का जलाल, तारीकी अदम को मतल-ए-नूर बनाने के लिए चला गया । ऐ मलकये-जमाल, तूने फ़र्ज़ पर इश्क़ को और मुल्क पर ज़िन्दगी को कुरबान करके अबदी-हयात हासिल कर ली । ईरान की आइन्दा नस्लें तेरे सिबात व इस्तक़लात के हैरत आफ़रीन कारनामों पर फ़ख़्र करेंगी । ईरान की लड़कियाँ तेरी बहादुरी के गीतों से अपनी ज़िन्दगियों को मुबारक बनायेंगी । ईरान की तारीख ईसार के हरफ़ तेरे पुरजबरूत नाम की तजल्लियात से सफ़हे दुनिया पर आफ़ताब-माहताब बन कर चमकते रहेंगे ।
ऐ पजमुरदए बहारे आफ़रीनिश ! ऐ अफ़सुरद शुअल-ए-वतनपरस्ती, ऐ ख़ुवाबीदा तूफ़ाने शुजाअत, मैं तेरे कदमों को अलविदायी बोसा देता हूँ । यही अव्वलीन और यही आखिरी बोसए-मुहब्बत है ।

(रोता हुआ गुर्द आफ़रीद के पैरों पर गिर पड़ता है ।। परदा)

(हिन्दी लिप्यंतर : श्रीमती एस० बानो)

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति / फुटनोट	अशुद्ध	शुद्ध
९३	फुटनोट : पंक्ति १	१. 'हश्र' सीता वनवास, पृष्ठ ३	१. 'हश्र' सीता वनवास, पृष्ठ १
	तदैव	२. 'हश्र'—सीता वनवास, पृष्ठ ४	२. 'हश्र' सीता वनवास, पृष्ठ ४१